नई तालीम और समाज का नवनिर्माण

नई तालीम की भूमिका, ध्येय, स्वरूप, कार्य और आवश्यकता
की सम्यक् विवेचना

धीरेन्द्र मजुमदार

अ० भा० सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन, वर्धा

प्रकाशक
आ० भ० सहस्रबुद्धे
संघ मंत्री, अखिल भा० सर्व-सेवा-संघ,
सेवाग्राम

प्रस्तावना

नई तालीम के बिना सर्व-सेवा और सर्व-सेवा के बिना नई तालीम, और मूल्य-परिवर्तन के बिना दोनो निर्वीर्य तथा निरर्थक हैं, इस आशय का एक छोटा-सा लेख मैंने 'सर्वोदय' मे दिया था। विचार तो वैसे मन मे कई दिनों से चल रहे थे, पर लिखने का टालता था। आखिर लिखे बिना नहीं रहा गया।

उस लेख को निमित्त करके श्री धीरेन भाई ने नई तालीम की मीमांसा करनेवाले कुछ लेख लिखे, जो पाठकों के लिए पुस्तकाकार प्रगट किये जा रहे हैं। हरेक सर्वोदय-प्रेमी समाज-सेवक के लिए उसमे चिन्तन-मनन की बहुत सामग्री मिलने-वाली है।

भूदान-यज्ञ आन्दोलन ने देश मे जो आशाएँ निर्माण की हैं वे तभी सफल होंगी, जब हमारे जीवन मे नई तालीम और सर्व-सेवा का अभेद सधेगा और हमारी सब संस्थाएँ अलग-अलग न रहकर समरस तथा एकरस होंगी।

आगामी सर्वोदय-सम्मेलन मे इस पर कुछ निर्णय हो जाना चाहिए। उसमे धीरेन भाई का यह समीक्षण मददगार होगा, ऐसी मुझे उम्मीद है।

अहू (गया)
ता. ५-४-५४

विनोबा

विषय सूची

नई तालीम से वर्गविषमता का निराकरण

गांधीजी ने संसार को अहिंसा का संदेश सुनाया। इसी हेतु उन्हें वर्त्तमान युग का युग-पुरुष माना जाता है। लेकिन अहिंसा की बात कह कर गांधीजी ने क्या कोई नया संदेश सुनाया? महावीर, बुद्ध, ईसा तथा अनेक सन्त युग-युग से मानव-समाज को अहिंसा की वाणी सुनाते आ रहे हैं। तो गांधीजी ने कौनसी नई बात बतायी?

गांधी : धर्म-चक्र-प्रवर्तक

कारण विज्ञान की प्रगति एवं इस प्रगति के साथ साथ फिर युद्ध-वृत्ति के पुनर्विकास रूपी विष-चक्र ने संसार को घेर लिया। मनुष्य की जैसी वृत्ति होती है, उसे ही चरितार्थ करने के लिये वह अपनी सारी शक्ति और बुद्धि लगाता है। अतएव इस वैज्ञानिक युग में यह लाजिमी था। मानव-समाज अपनी हिंसा-वृत्ति चरितार्थ करने में विज्ञान की नयी-नयी खोज करने लगा। नतीजा यह हुआ कि वैज्ञानिक आविष्कार की पराकाष्ठा ही ने मनुष्य-समाज के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया। नित-नूतन ध्वंसात्मक शस्त्रों के आविष्कार ने मनुष्य को भयभीत कर दिया और फलस्वरूप उसके सामने आत्मरक्षा की एक महान् समस्या खड़ी हो गयी।

आज की हिंसा का सर्वग्राही स्वरूप

आत्मरक्षा सृष्टि की मूल वृत्ति है। अत. जब कभी समाज में इस पर खतरा आ पड़ता है, तो इन्सान व्याकुल होकर इससे अपनी मुक्ति की बात ढूँढ़ने लगता है। मनुष्य-समाज ने यह देखा कि अब समय आ गया है कि यह विज्ञान और हिंसा साथ-साथ नहीं चल सकती। पुराने जमाने में 'अहिंसा परमो धर्म' के प्रचार के साथ-साथ धर्म-युद्ध में प्राण-त्याग करने पर स्वर्ग प्राप्ति की बात भी कही जा सकती थी, क्योंकि उन दिनों युद्ध मानव-समाज के अस्तित्व के लिए उतना खतरनाक नहीं था। वैज्ञानिक आविष्कार के स्तर निम्न होने के कारण युद्ध सैनिकों तक ही सीमित रहता था। समस्त समाज के आबाल-वृद्ध-वनिता तक उसका असर नहीं फैलता था। तब ऐसा हिसाब करना संभव था कि थोड़ी सी हिंसा से अगर सारे समाज के अन्याय का प्रतिकार किया जाय, तो वह ग्राह्य हो सकता है। अत वे सोच सकते थे कि 'अहिंसा परमो धर्म' होने पर भी सामाजिक अन्याय के प्रतिकार रूपी धर्म कार्य में हिंसा भी एक पुण्य-कार्य के रूप में ग्रहण की जा सकती है। उससे वे घबराते

नहीं थे, क्योंकि इस प्रकार की हिंसा से सारे समाज के अस्तित्व पर खतरा नहीं पहुँचता था। लेकिन आज ऐसी परिस्थिति नहीं है। आज सामाजिक अन्याय के प्रतिकार के लिये ही सही, अगर हिंसा को ग्राह्य माना जाय, तो विज्ञान रूपी वाहन पर बैठ कर हिंसा की प्रचंड मूर्ति अन्याय के प्रतिकार से पहले ही मनुष्य-समाज का नाश कर उस प्रतिकार को भोगने के लिये किसीको शेष नहीं रखेगी।

अब प्रश्न यह है कि वर्तमान युग में मानव-समाज के अस्तित्व के लिये अहिंसा की अनिवार्य आवश्यकता होने पर भी, क्या वह आसानी से प्राप्त हो सकेगी? मनुष्य साधारणतया रूढिग्रस्त होता है। आधुनिक इतिहास के प्रारंभ से ही वह हिंसात्मक प्रतिकार के यशगान का आदी रहा है। अत. उसके स्वभाव में यह वृत्ति बद्धमूल हो गयी है। अब उसे निकाला कैसे जाय? आज समस्त मानव-समाज बुद्धिपूर्वक हिंसा से मुक्ति पाना चाहता है, लेकिन उसका संस्कार उसे इस चक्र से बाहर जाने नहीं देता है। अत यह आवश्यक है कि बुद्धि की मदद के लिये समाज की परिस्थिति में भी आमूल परिवर्तन किया जाय। संसार में प्रकृति और पुरुष मिलकर ही कुछ प्रगति कर सकते हैं। मनुष्य के विचार तथा बुद्धि रूपी पुरुष को जब परिस्थिति तथा सामाजिक वातावरण का सहारा मिलता है तथा परिस्थिति को जब विचार मिल जाता है, तभी प्रगति की ओर सामूहिक आचार की सृष्टि होती है। अतएव अगर मानव-समाज आज यह महसूस कर रहा है कि उसे जिंदा रहने के लिये यह आवश्यक है कि दुनिया में अहिंसक समाज की स्थापना हो, तो उसे सामाजिक परिस्थिति का इस ढंग से निर्माण करना होगा कि जिसके सहारे हिंसा-वृत्ति को पोषण न मिल सके।

हिंसा का मूल

आज समाज-शास्त्र के सामान्य विद्यार्थी को यह अनुभव हो चुका है कि हिंसा की उत्पत्ति शासन और शोषण की वृत्ति से ही होती है।

अत जबतक समाज में शासन-व्यवस्था तथा शोषण-संस्थाओं का अवशेष बचा रहेगा, तबतक व्यक्ति और समाज हिंसा से मुक्त नहीं हो सकते। इसलिए अहिंसक समाज-रचना के लिये यह जरूरी है कि दुनिया शासन-हीन और शोषण-हीन अर्थात् वर्गहीन हो जाय।

लेकिन यदि समाज शासन-हीन होता है, तो शासन-संस्था के अभाव में क्या दुनिया में एक अव्यवस्थित समाज की स्थापना इष्ट होगी? यदि ऐसा हुआ तो फिर वही समस्या खड़ी हो जायगी, जिसके समाधान में हम दुनिया में शासन-हीन समाज कायम करना चाहते हैं। अर्थात् हिंसा से मानव के अस्तित्व पर ही जो खतरा आ पहुँचा है, उससे निकलने की चेष्टा में अव्यवस्था के कारण समाज के नाश की ओर जाना पड़ेगा। अतएव हमें ऐसा समाज बनाना है, जो शासन-हीन होते हुए भी पूर्ण रूप से व्यवस्थित हो।

दंड-शक्ति की वास्तविक जननी कौन?

समाज की सुव्यवस्था के लिए किसी न किसी शक्ति की आवश्यकता है ही। आज यह व्यवस्था दंड-शक्ति के सहारे चलती है। लेकिन इस दंड-शक्ति की पैदाइश कहाँ से हुई? दंड-शक्ति कोई स्वयंभू वस्तु नहीं है। मूल में जन-शक्ति है और फिर उसी शक्ति ने दंड-शक्ति को पैदा किया है, अपने सामूहिक सामर्थ्य के रूप में। यद्यपि जन-शक्ति दंड-शक्ति की जननी है, तथापि आज के जमाने में वह अपनी जननी को ही निर्बल कर खुद उसकी प्रभु बन बैठी है।

मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समाज की सुव्यवस्था और संचालन के लिए, पूर्ण रूप से जन-शक्ति संगठित हो कर दंड-शक्ति को अनावश्यक बना दे।

इसके लिए आवश्यक है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण विकसित हो, ताकि सभी लोग एक ही वर्ग के होने के कारण वे सहकारिता के आधार पर अपनी सारी व्यवस्था चला सकें।

आज तो समाज निश्चित रूप से दो वर्गों मे विभाजित हो गया है। व्यवस्था के नाम पर एक छोटा-सा बौद्धिक वर्ग तथा दूसरा उत्पादन-कार्य के लिये विशाल श्रमिक वर्ग। मुट्ठी भर बौद्धिक वर्ग समाज की व्यवस्था तथा वितरण रूपी सेवा देने के बहाने निरंतर उसका शोषण करता रहता है। समाज की आबादी शोषक और शोषित रूपी दो श्रेणियों में विभाजित रहते हुए सहकारी समाज की कल्पना करना निरा स्वप्नलोक में विचरने जैसा होगा। भक्षक और भक्षितों में सहकार कैसा?

हमारा लक्ष्य

अतएव पत्येक व्यक्ति के पूर्ण विकास द्वारा सहकारी समाज कायम करने के लिये यह आवश्यक है कि शोषण के आधार-स्तंभ रूपी वर्ग-विषमता को जड़ से समाप्त कर दिया जाय। इस तरह हम देखते हैं कि शासन और शोषण की संस्थाओं का अंत किये बिना हम अपने उद्देश्य तक पहुँच नहीं सकते। लेकिन आज समाज में शासन तथा शोषण की संस्थाएँ एक दूसरी से इस तरह जुडी हुई हैं कि बिना आमूलाग्र क्रांति के, मानवता का उद्धार तो दूर की बात है, समाज की सामान्य प्रगति भी असंभव दीखती है। अर्थात् हमें नया समाज तथा नया मनुष्य बनाने की दिशा में एक महान् क्रांतिकारी कदम उठाना होगा।

इसी उद्देश्य को सामने रख कर गाधीजी आखिरी दिनों में नया समाज बनाने की बात जोरों से करने लगे थे और इसके लिए उन्होंने शिक्षा में अहिंसक क्राति की बात कही। मानव के विकास में शिक्षा ही एकमात्र बुनियाद होती है। यही कारण है कि युग-युग के महापुरुष अपनी कल्पना के समाज-निर्माण के हेतु शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन करते रहे हैं।

सहकारी समाज की दिशा में

पहले ही कहा गया है कि शासन-हीन और वर्ग-हीन समाज-रचना के लिये आवश्यक है कि संसार में दड-निरपेक्ष तथा जनशक्ति-सापेक्ष सहकारी समाज कायम हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि समाज की मूल इकाई में ही मनुष्य हरेक दिशा में स्वावलबी हो। यह कैसे हो सकता है? आज तो जनता की मूल इकाई अशिक्षित तथा अकिंचन है। उसे तो किसी विशिष्ट वर्ग के भरोसे ही चलना पड़ता है। इसलिये हमें प्रत्येक व्यक्ति को इस तरह शिक्षित करना होगा, जिससे उसमें आत्म-व्यवस्था की शक्ति का विकास हो। यही कारण है कि गाधीजी ने अपनी नई तालीम-पद्धति में शिक्षा के माध्यम में ही आमूल परिवर्तन किया। उन्होंने उत्पादन की प्रक्रिया तथा सामाजिक वातावरण को शिक्षा का माध्यम बनाया। उत्पादन की प्रक्रिया को माध्यम मानने के कारण ही यह सभव हो सकेगा कि प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित हो सके, क्योंकि ऐसा न करने से आज जो विशाल जन-सख्या प्रत्यक्ष उत्पादक श्रम में लगी हुई है, वह शिक्षा से वंचित हो जायगी, क्योंकि उत्पादन-कार्य से निकाल कर उसे शिक्षा देने की चेष्टा में समाज का उत्पादन-कार्य ही बद हो जायगा। जब किसी विशिष्ट वर्ग को व्यवस्थापक के नाम पर रखना ही नहीं है, तब यह आवश्यक है कि आज जो अनुत्पादक शिक्षित वर्ग है, उसे भी उत्पादन की प्रक्रिया का अभ्यास हो। तभी प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित हो

कर समाज में शिक्षित तथा वैज्ञानिक उत्पादकों का एक ही वर्ग रह जायगा।

लेकिन इतने मात्र से ही उनमें स्वावलम्बी व्यवस्था की शक्ति नहीं आयेगी। छुटपन से ही अगर समाज की समस्याओं की जानकारी तथा उसके समाधान का अभ्यास नहीं रहेगा, तो वे सब आपस में मिलकर समाज की सुव्यवस्था कायम नहीं रख सकेंगे। इसलिए यह भी आवश्यक है कि सामाजिक समस्याओं का अध्ययन तथा उसके समाधान की चेष्टा शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम हो।

नई तालीम की यह पद्धति चलाते हुए हम किस तरह निश्चित कदम से दंड-निरपेक्ष समाज निर्माण कर सकेंगे, इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

सरकारें और नई तालीम

हमने देखा कि मानव-समाज को जीवित रहने के लिए आज यह आवश्यक हो गया है कि संसार की समस्याओं को सुलझाने में हिंसा का परित्याग किया जाय और यह तभी हो सकता है, जब मनुष्य-समाज की प्रवृत्तियों में से हिंसा को निर्मूल कर दिया जाय।

अहिंसक समाज के लिए नई तालीम

पिछले लेख में हमने कहा है कि हिंसा-रहित यानी अहिंसक समाज-रचना के लिए यह आवश्यक है कि दुनिया में एक शासनहीन और शोषणहीन यानी वर्गविहीन समाज कायम हो। इसलिए जरूरी है कि समाज का संगठन इस ढंग से हो कि शासन की आवश्यकता न रहे, अर्थात् समाज की सारी व्यवस्था तथा संगठन जनता के सहयोग के आधार पर हो। यानी आज की संचालित समाज की जगह पर स्वावलम्बी समाज स्थापित हो जाय। ऐसे समाज की स्थापना के लिए नई तालीम ही एकमात्र रचनात्मक-प्रवृत्ति हो सकती है। इसका विवेचन हम पहले कर चुके हैं।

नई तालीम की दो दृष्टियाँ

लेकिन प्रश्न यह है कि यह नई तालीम की प्रवृत्ति चले कैसे? उसका स्वरूप क्या हो? और किस दृष्टि से उसका संगठन किया जाय? शिक्षा-पद्धति कैसी हो? इसका निर्णय करने की दो दृष्टियाँ होती हैं। एक दृष्टि यह है कि किस तरीके से तालीम दी जाय, जिससे बच्चों के दिमाग पर कम-से-कम बोझ डालते हुए, उन्हें आसानी से विषयों की जानकारी करायी जा सके। दूसरी दृष्टि यह है कि बचपन से ही ऐसे तरीके से तालीम दी जाय कि बालकों का मानस सामाजिक

तांति की दिशा में सहज ही बढ़ता रहे। तालीम के तरीके में वे लोग भी हेरफेर करते रहते हैं, जिनके मन में समाज-व्यवस्था में हेरफेर करने का कतई विचार नहीं रहता। उनकी दृष्टि पहले प्रकार की है। वे केवल शिक्षा की सहूलियत का विचार करते हैं। इस दृष्टिकोण के स्वरूप किंडरगार्टन, मौंटेसरी, डाल्टन तथा प्रोजेक्ट-पद्धति का आविष्कार हुआ। इन शिक्षा-पद्धतियों के आविष्कारकों के विचार में समाज के आमूल परिवर्तन का कोई प्रश्न नहीं था। वे इतना ही सोचते थे कि किस तरह बच्चों को आसानी से दुनिया के ज्ञान-भण्डार से अवगत कराया जाय।

तालीम के विविध तरीके

प्राचीन काल में ऋषि-वाक्यों की आवृत्ति तथा उन्हें कण्ठस्थ करने से तालीम की शुरुआत होती थी। यहाँतक कि कहा जाता था कि शास्त्रों की आवृत्ति उनके समझने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। जैसे-जैसे आत्म-रक्षा की प्रक्रिया जटिल से जटिलतर होती गयी वैसे-वैसे मनुष्य प्रकृति के रहस्यों के उद्घाटन की ओर बढ़ता गया। इस आगे बढ़ने की होड़ के कारण ज्ञान को कण्ठस्थ करके तालीम हासिल करने का प्रयत्न जाता रहा।

से नयी-नयी शिक्षा पद्धतियों पर विचार कर रहे थे, और दूसरी ओर गांधीजी तालीम के ममले पर दूसरे दृष्टिकोण से अपने ढंग से सो रहे थे। गांधीजी के सामने शिक्षार्थियों के लिए वास्तविक मनोविज्ञा के आधार पर तालीम का सहज तरीका ढूंढना मात्र ही काम नहीं था। इस बात का चिंतन तो उन्हें था ही। लेकिन उनके लिए उसमें ज्यादा महत्त्व की बात यह थी कि किस तरह नये समाज के लिये न मानव का निर्माण हो। अहिंसक समाज के लिये शासनहीन तथ वर्गहीन समाज कायम करना जरूरी है, इस सिद्धांत को सामने रख क ही उन्हें तालीम का तरीका ढूंढना था। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए ही उन्होंने देश के सामने नयी तालीम की योजना रखी।

गांधीजी का प्रयोग

गांधीजी ने तालीम का नया प्रयोग दक्षिण अफ्रिका से शुरू कर साबरमती आश्रम में भी जारी रखा। लेकिन उसे सुव्यवस्थित शिक्ष पद्धति के रूप में उन्होंने सन् १६३८ में, जब कांग्रेस के हाथों में प्रांती सरकार की बागडोर आयी, तभी रखा, क्योंकि उस समय राष्ट्रिय नेतृ को, सर्वप्रथम राष्ट्रनिर्माण के लिए व्यापक प्रयोग का यत्किंचि अवसर मिला। स्वाभाविकतया गांधीजी मानते थे कि उनके साथी त अनुयायी उनके क्रांतिकारी विचार के अनुसार ही राष्ट्र का पुनर्निर्मा करेंगे। इस प्रकार की सामाजिक क्रांति का सृजनात्मक पहलू शिक्षा बुनियादी क्रांति से ही शुरू हो सकता था। यही कारण था कि गांधी ने समाज निर्माण की नयी धारणा बताने के साथ-साथ ही शिक्षा अहिंसक क्रांति की बात बतायी।

लोगों में शंका

गांधीजी ने तो नई तालीम को सामाजिक क्रांति की बुनिय माना। और उसी रूप में उसे देश के सामने रखा। लेकिन स्वभावि

से देश के लोग गांधीजी की धारणा के अनुसार सामाजिक तथा राज-नीतिक क्रान्ति के कायल नहीं थे। उन्होंने महज आजादी हासिल करने के अनिवार्य नेतृत्व के रूप में गांधीजी को माना था। यही कारण है कि गांधीजी के कथनानुसार क्रांति के केन्द्र-बिन्दु चरखे को मुल्क अपना नहीं सका। यहाँतक कि आजीवन गांधीजी के साथ रहनेवाले तथा उनकी रहनुमायी में स्वातन्त्र्य-संग्राम चलाने वाले नेताओं के मन में आजतक चरखे की आवश्यकता पर शंका कायम है।

नई तालीम के दृष्टिकोण

अतएव जिस तरह १९२१ में गांधीजी के साथियों ने चरखे को विविध दृष्टि से अपनाया था उसी तरह वे १९३८ में भी नयी तालीम को अपने अपने दृष्टिकोण से देखने लगे। किसी ने उसे शिक्षण-कला को वास्तविकता के साथ जोड़ने का जो विचार चलता आ रहा था, उसी के एक आगे कदम मात्र के रूप में सोचा। (वस्तुतः सारे संसार के शिक्षा-शास्त्रियों ने इसे इसी दृष्टि से देखा।) किसी ने इसे देश की आजादी के संग्राम की दिशा में आगे बढ़ने के लिये जन-सम्पर्क स्थापित करने का एक विस्तृत साधन समझा। कुछ लोगों ने तो इसे चरखा चलाने का एक नया बहाना माना। थोड़े ऐसे लोग भी जरूर थे जो इसे नई क्रांति के वाहन के रूप में देख सके थे। लेकिन उनकी संख्या नगण्य थी।

क्रमश शिक्षा-शास्त्रियों ने भी महसूस किया कि शिक्षा को वास्तविक रूप देने की दिशा में यह एक बडा कदम है और इसके पक्ष में अपनी राय जाहिर करने लगे। देश के नेताओं ने गाधीजी को भले ही पागल समझा, परन्तु शास्त्रियों की बात वे नहीं टाल सके। अस्तु वे नई तालीम के प्रचार पर विचार करने लगे। कई प्रांतों में कांग्रेस का मन्त्रिमण्डल होने के कारण, सरकारी तौर पर भी जगह-जगह बुनियादी शिक्षा का प्रयोग होने लगा और आखिर में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद इसके प्रसार की प्रगति कुछ बढी।

नई तालीम व्यापक क्यों न हो सकी

यह सब हुआ। लेकिन शिक्षण-कला का प्रयोग मात्र मानने के कारण, किसी सरकार का इसके व्यापक प्रसार के हेतु जोश नहीं रहा। उन्होंने इसे कहीं-कहीं चलाकर पुराने तरीके से इस तरीके का तुलनात्मक अध्ययन मात्र करना चाहा। नई तालीम के पीछे नव-समाज निर्माण की जो निश्चित धारणा थी, उस पर आस्था न होने के कारण, वे इससे अधिक और कुछ नहीं सोच सके। यही कारण है कि अंग्रेजी-राज के समय देश के जिन नेताओं ने उसकी चलायी हुई पद्धति को मुल्क के लिए घातक माना था, उन्हे आजादी हासिल करने के बाद, इस घातक पद्धति को रद्द करना तो अलग रहा, उसके अत्यधिक प्रसार की प्रगति को रोकने की भी हिम्मत नहीं हुई, हालांकि वे आज भी उस तालीम की बुराई की गाथा गाने का कोई मौका नहीं छोड़ते। पुरानी तालीम मे सन्तोष नहीं, नई तालीम पर आस्था नहीं, किसी तीसरे तरीके की कल्पना नहीं, ऐसी हालत मे वे लाचार रहे। और "जैसा चलता था वैसा चलता रहे," के सुगम रास्ते पर पुराने रूढिग्रस्त शिक्षा-शास्त्रियों के हाथों में तालीम को छोड़कर निश्चिन्त रहे।

नई तालीम के वेश में पुरानी तालीम

नई तालीम के लिए लोगों पर गाधीजी के व्यक्तित्व का असर है

हैं, उन सबमें शायद बिहार के प्रयोग अधिक इमानदार होंगे। लेकिन उनकी भी जो दशा मैंने देखी, उससे भय हो रहा है कि शायद नई तालीम के लिये कबरिस्तान खोदा जा रहा है।"

बिहार में नई तालीम का नतीजा

फलत देश में व्यापक रूप से जो बुनियादी शिक्षा चल रही है, वह जनता की दृष्टि आकर्षित नहीं कर सकी, बल्कि आकांक्षित नतीजे की ओर न चल सकने के कारण वह निश्चित रूप से बदनाम हो रही है। शुरू में ऐसी बात नहीं थी। जिस समय गांधीजी द्वारा नई तालीम के सिद्धांत तथा जीवन-दर्शन की बात की गई थी, उस समय जनता ने उसका बड़े प्रेम से स्वागत किया था। यही कारण था कि बिहार की राज्य-सरकार ने जब यह ऐलान किया कि जिस गाँव के लोग बुनियादी-शाला के लिए आवश्यक भूमि का दान देंगे, उसी गाँव में वह खोली जायेगी, तब राज्य के देहातों से इतने अधिक दान-पत्र आने लगे कि उतनी संख्या में शालायें खोलना राज्य-सरकार की शक्ति के करीब-करीब बाहर की बात हो गई। लेकिन कुछ दिन चलने के बाद लोग निराश होने लगे। उन्होंने देखा कि पुरानी तालीम के अनुसार किताबी पढ़ाई बन्द हुई, लेकिन बच्चों में किसी प्रकार के नवीन जीवन की उमंग दृष्टिगोचर नहीं हुई। किसी उत्पादक उद्योग में वे कुशल नहीं हुए और न पुस्तक ज्ञान ही प्राप्त कर सके। नतीजा यह हुआ कि वे किसी काम के नहीं हुए। ऐसा क्यों हुआ, इस पर गम्भीर विचार करना चाहिए।

एकांगी गुण-ग्रहण

हमने पहले ही कहा है कि नई तालीम के बुनियादी तत्त्व को छोड़ कर सरकार तथा देश के शिक्षा-जगत ने उसके बाह्य रूप को ही अपनाया है। यानी लोगों ने शिक्षण-कला की सहूलियत की दृष्टि से ही इस पद्धति को ग्रहण किया है। किसी वस्तु की चेतन आत्मा को छोड़

कर जड़-देह को अपनाने से जो दशा होती है, देश में नई तालीम की भी वही दशा हुई। वास्तविकता के साथ ज्ञान-प्राप्ति को जोड़ने की चेष्टा में पहले जिन पद्धतियों का आविष्कार हुआ था, उनमें प्रत्यक्ष वास्तविक जीवन के अनुभव-प्राप्ति के माध्यम की कल्पना न हो कर, वास्तविक वस्तुओं के उदाहरण से समझाने की कल्पना थी। यह बात शिक्षण-मनोविज्ञान की दृष्टि से अधूरी थी। आज जगह-जगह जिस ढंग से नई तालीम चलायी जा रही है, उसे देखने से यही प्रतीत होता है कि इसी मनोवैज्ञानिक पूर्णता को देख कर ही शिक्षा-शास्त्री तथा सरकारी विभाग इसकी ओर आकृष्ट हुए हैं। लेकिन केवल इतने से ही नई तालीम की उद्देश्य-पूर्ति नहीं होती है, बल्कि एकांगी स्वरूप के कारण वह विकलांग हो कर समाज-जीवन को पंगु कर दे सकती है। यही कारण है कि विनोबाजी ने नई तालीम पर अपना विचार प्रकट करते हुए कहा है।

"आज नई तालीम का जो गुण-ग्रहण हुआ है और हो रहा है वह इतना एकांगी है कि उसे उस आधार पर स्वीकार किया जाना खतरे से खाली नहीं है।"

वस्तुतः नई तालीम को ग्रहण करने में जहाँ वास्तविक जीवन के अनुभव के लाभ की बात सोची गयी, वहाँ उसके अमल में मुल्क की वास्तविक परिस्थिति के साथ कोई सामंजस्य नहीं रखा गया। अर्थात् उसे वास्तविकता से ही दूर रखा गया। इसलिए सामान्य शिक्षण कला की दृष्टि से भी वह अव्यावहारिक हो गया।

नई तालीम खिलौना बन कर रह गई

शिक्षा-मनोविज्ञान की दृष्टि से वास्तविक क्रम-प्रक्रिया को केन्द्र मान कर, ज्ञान प्राप्ति के तरीके को उत्तम माना गया है। इस सिद्धांत को नजर में रखकर जब गांधीजी की बुनियादी शिक्षा को देश के कर्णधार अपनाने लगे, तो उस समय वे भूल गये कि जिस क्रम-प्रक्रिया को

गाधीजी ने शिक्षा के माध्यम के रूप में रखा था, उस क्रम को ही उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

गाधीजी ने दस्तकारी को शिक्षा की बुनियाद माना था। लेकिन देश के नेताओं ने राष्ट्रिय जीवन मे दस्तकारी का कोई स्थान नहीं रखा। अगर कुछ माना भी तो, उसे आर्थिक जिन्दगी का केन्द्र न मान कर एक खिलौने के रूप में ग्रहण किया। यही कारण है कि नई तालीम राष्ट्रिय-जीवन की बुनियाद न बनकर महज एक तमाशे की चीज रह गयी।

राष्ट्रीय अर्थ नीति का अभाव

आखिर शिक्षा-केन्द्र में जो विद्यार्थी तालीम पावेंगे, वे अपने भविष्य की चिन्ता तो करेंगे ही। वे देखते है कि बारह वर्ष तक जिन दस्तकारियों का अभ्यास कराया जाता है, राष्ट्रिय अर्थनीति मे उसका कोई स्थान नहीं है। जहाँ दस्तकारी का ही स्थान नहीं है, वहाँ दस्तकार की जगह कहाँ? यह उनकी समझ में नही आता है। इसलिए वे मानते है कि इस प्रकार के दस्तकारी के अभ्यास से उनके जीवन का भविष्य अन्धकारमय है। ऐसे अन्धकारमय भविष्य की ओर बढने में भला, किसको दिलचस्पी हो सकती है? नतीजा यह होता है कि बुनियादी शाला के अभ्यास क्रम के अनुसार उत्पादन की प्रक्रिया सीखने में किसी विद्यार्थी का दिल नही लगता और न शिक्षक को ही उसमें रस मिलता है। समाज मे जिस वस्तु का स्थान ही नहीं है उसके लिए दिलचस्पी नही होना स्वाभाविक है।

सरकारी आर्थिक ढाँचा और नई तालीम

ज्ञान-प्राप्ति के माध्यम रूपी क्रम-प्रणाली को ही अस्वीकार कर उसमे दिलचस्पी न लेने के कारण, उस क्रम में से निकले इस ज्ञान की आशा करना दुराशा मात्र है। यही कारण है कि आज की बुनियादीशाला के उत्तीर्ण छात्र न सफल कारीगर ही बनते हैं और न किसी विषय का ज्ञान ही प्राप्त कर पाते है, क्योंकि जब बुनियादी तालीम की बुनियाद में ही कोई तथ्य नहीं रह गया, तो आगे के ज्ञान की गुंजाइश ही कहाँ! वस्तुत.

सरकारी शिक्षा-योजना ने बुनियादी शिक्षा पद्धति से जिस लाभ को अपनाने की कोशिश की गयी है आज राजनीतिक तथा आर्थिक ढांचे के अन्दर मेल न बैठने के कारण वह लाभदायक न होकर हानिकारक हो रही है। शिक्षा-प्राप्ति का उद्देश्य तो सफल होता ही नहीं। उल्टे राष्ट्र का श्रम तथा सम्पत्ति का अपव्यय होता है। शिक्षा के माध्यम के रूप में दस्तकारी का इस्तमाल सरकार की ओर से शालाओं में किया जाता है, इस आशा से कि उत्पादन के द्वारा आमदनी से सरकार पर शिक्षा का बोझ कम होगा। लेकिन नतीजा उलटा होता है। उत्पादन की आमदनी तो दूर रही अनिच्छापूर्वक कर्म करने के कारण उत्पादन के साधन में जो पूँजी लगायी जाती है वह भी बरबाद हो कर खतम होजाती है। फलतः यह शिक्षास्वावलम्बी न हो कर पुरानी तालीम से भी अधिक खर्चीली हो जाती है। यही कारण है कि देश के प्रधान मन्त्री. पंडित जवाहरलाल नेहरू जब कभी-कभी नई तालीम की बात सोचने लगते हैं, तो उसके व्यय को देख कर घबरा जाते हैं। क्योंकि जब वे हिसाब लगाने लगते हैं,तो उनको दीखता है कि देश भर में नई तालीम चलाने के लिए भारतीय सरकार की आमदनी अपर्याप्त होगी।

समाज-जीवन का गलत धारणा

तरीके से नहीं रहेंगे तबतक मुल्क की प्रतिष्ठा कायम नहीं रह सकती। प्रतिष्ठा की इस धारणा की मान्यता रहते हुए देश का एक भी बच्चा स्वावलंबी जीवन बिताने का इच्छुक नहीं हो सकता है। जब वह तालीम लेने जाता है, तब उसके दिल में इसी बात की उमग होती है कि तालीम पाने के बाद उसे प्रतिष्ठा मिलेगी। स्वभावतः उसे प्रतिष्ठा की धारणा उन्हीं लोगों से मिलेगी, जिन्हे मुल्क प्रतिष्ठित मानता है। यही कारण है कि आज न बच्चों का पालक और न बच्चे खुद नई तालीम के प्रति आकर्षित होते है, क्योंकि देश का नेतृत्व, नई तालीम के पीछे रहे हुए मूल्याकन को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा नहीं करता, बल्कि, उलटे उसे हेय दृष्टि से देखता है, जैसा कि उनके समय-समय के ऐलानों से हमें मालूम होता रहता है। यही कारण है कि जब इधर कुछ दिनों से मुल्क के बड़े लोग देश की बेकारी तथा अनुशासन हीनता से परेशान होकर जोरों से नई तालीम की ओर झुकने लगे हैं, तो विनोबाजी को उन्हे सामयिक चेतावनी देने के उद्देश्य से कहना पड़ा है

"अब जब कि बेकारी बढती हुई दीख रही है और उसी के परिणाम स्वरूप विद्यार्थी अनुशासनहीन हो रहे है, तब नेताओं का मन नई तालीम की ओर झुका है। लेकिन बेकारी हटाना और अनुशासन स्थापित करना नई तालीम का कम-से-कम लाभ है। उसका मुख्य लाभ तो यह है कि वह नये मूल्य स्थापित करना चाहती है। जब इन नए मूल्यों का आकर्षण होगा तभी नई तालीम का सच्चा गुण-ग्रहण होगा।"

अतएव अगर सरकारी नेताओं को नई तालीम के मुख्तलिफ लाभ के लिए उसे चलाना मान्य है, तो उन्हे साथ-साथ देश की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में तथा मुल्क के जीवन दर्शन की धारणाओं में भी नई तालीम के मूल तत्त्वों के अनुसार क्रांतिकारी परिवर्तन करना होगा। अगर वे ऐसा नहीं कर सकते है, तो उनके लिए नई तालीम चलाने की निष्फल चेष्टा में गरीब मुल्क के सार्वजनिक कोष का अपव्यय

नवमानव का निर्माण

नई तालीम का व्यापक प्रचार विभिन्न राज्यों की सरकारों द्वारा ही हुआ है। इस प्रकार प्रसार की चेष्टा किस तरह और क्यों निष्फल हुई; इस पर पिछले लेख में विचार किया गया है। इस असफलता के कारण आज देश की जनता नई तालीम से निराश हो रही है। ऐसा होना स्वाभाविक है। आशातीत आशा से सहज ही निराशा का जन्म होता है। शायद इस क्षेत्र में भी ऐसा ही हुआ।

निराशा का कारण

नई तालीम एक निश्चित मूल्य के आधार पर नवसमाज-निर्माण के हेतु एक क्रान्ति का वाहन है। अतएव वह क्रान्ति को अपनी पीठ पर लेकर ही आगे बढ सकती है। अर्थात् क्रांतिकारी आंदोलन के साथ ही नई तालीम की प्रगति हो सकती है। क्रांतिकारी आंदोलन भी अपने वाहन के बिना आगे नहीं बढ सकता। मतलब यह कि गांधीजी के विचारानुसार सामाजिक क्रांति तथा नई तालीम, एक-दूसरे के सहारे ही आगे बढ सकते हैं। ऐसी क्रांति की आशा किसी सरकार से नहीं की जा सकती। वस्तुतः सरकारें क्रांति नहीं कर सकतीं। वह तो जन-शक्ति के सहारे ही हो सकती है। अगर नई तालीम क्रांति का वाहन है, तो सरकार के भरोसे उसको सम्पादन करने की आशा के कारण ही जनता में आज निराशा बनी हुई है।

प्रयोग की शुरूआत

यही कारण है कि सन् '३८ में गांधीजी ने कांग्रेस के मंत्रियों को अपनी तालीम की कल्पना बताने के साथ-साथ ही हिंदुस्तानी-तालीमी-संघ

की स्थापना की। क्योंकि गांधीजी के सामने यह स्पष्ट था कि क्रान्तिकारी आंदोलन के लिए स्वतंत्र क्रांतिकारी नेतृत्व की आवश्यकता है। गांधीजी के निर्देशानुसार देश में जगह-जगह रचनात्मक संस्थाओं तथा कार्यकर्ताओं द्वारा नई तालीम का प्रयोग भी शुरू हुआ। स्वतंत्र रचनात्मक संस्था द्वारा अति सामान्य शुरुआत ही हो पायी थी कि इतने में मुल्क का अंतिम स्वातंत्र्य-संग्राम छिड़ गया और इस कार्य की प्रगति रुक गयी।

समग्र ग्राम-सेवा की भूमिका

सन् १९४४ के अंत में गांधीजी जब जेल से बाहर आये, तो उन्होंने समझ लिया था कि देश में अंग्रेजी राज्य अब नहीं रह सकता। उन्होंने रचनात्मक कार्यकर्ताओं से कहा कि अब अंग्रेज जा रहे हैं। शायद हम जितना जल्दी समझते हैं, उससे भी जल्दी जायें। हमें अब शोषण-हीन समाज कायम करना है। इसी समय उन्होंने चरखा-संघ तथा तालीमी-संघ के सामने अपनी क्रांतिकारी योजना पेश की। चरखा-संघ में उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि अब चरखा द्वारा राहत का युग समाप्त हो गया है। अब हमें यह बात सिद्ध करनी है कि चरखा अहिंसा का प्रतीक है। इस उद्देश्य से उन्होंने चरखा-संघ के कार्यक्रम में आमूल परिवर्तन करने को कहा। उन्होंने कहा कि अब चरखा आदि के एकांगी कार्यक्रम से काम नहीं चलेगा। अब रचनात्मक कार्यक्रम के हर अंगों को समग्र ग्राम-सेवा के रूप में संगठित करना होगा। इस हेतु उन्होंने देश के सात लाख गाँवों के लिये सात लाख नवजवानों की सेवा माँगी, जो शरीर-श्रम से अपना गुजारा कर के समग्र ग्राम-सेवा का काम कर सकें।

शोषणहीन समाज-निर्माण की क्रांति

ग्राम-सेवा की क्रांतिकारी योजना से वर्गों के ऐसे भेद मिटा कर उत्पादकों का एकवर्गीय समाज स्थापित करना अभीप्सित था। ऐसा वर्ग-हीन समाज स्थापित करने का क्रांतिकारी आंदोलन क्रांतिकारी सेवकों द्वारा ही चलाया जा सकता है। अबतक देश में स्वतंत्रता-प्राप्ति का आंदोलन ही चलता था। स्वतंत्रता-प्राप्ति का काम सामान्य युद्ध का होता है। समाज-व्यवस्था में किसी तरह के परिवर्तन की कल्पना न करते हुए भी दुनिया के इतिहास में आजादी की लड़ाई लड़ी गयी है। और आज भी ऐसा संग्राम किया जाता है। अतः अंग्रेजी राज्य हटाने का काम ऐसे सेवकों द्वारा भी हो सकता था, जो जीवन में क्रांति किये बिना ही केवल त्याग और बहादुरी के बल पर संग्राम की योग्यता रखते थे। लेकिन शोषण-हीन समाज स्थापित करने की क्रांति ऐसे ही सेवक कर सकते हैं, जिन्होंने अपने जीवन में क्रांति की हो। अर्थात् जो अपना वर्ग-परिवर्तन कर उत्पादक वर्ग में विलीन हो गये हों।

स्तर घटाने में त्याग और तर्ज बदलने में क्रांति

किसी आदर्श के लिये त्याग करना एक बात है और जीवन में क्रांति करना दूसरी बात। एक अनुत्पादक उपभोक्ता अपने को उसी हालत में रखते हुए भी त्याग कर सकता है। लेकिन क्रांति करने के लिए उसे अपने को उत्पादक ही बनाना पड़ेगा। एक कालेज का प्रोफेसर पांच सौ रुपया मासिक वेतन पाता है। अगर वह नौकरी छोड़कर किसी राष्ट्रीय विद्यालय में या किसी रचनात्मक संस्था में ५० रु० मासिक वेतन पर सेवा करने लगा और उसने शरीर-श्रम से कुछ भी उत्पादन नहीं किया, तो उस प्रोफेसर ने अपने जीवन में केवल त्याग किया।

चढा दिया है। संक्षेप में किसी अच्छे काम के लिए जीवन का स्तर घटा देने में त्याग है। लेकिन साथ-साथ जिंदगी का तर्ज बदल देने में क्रांति है।

अबतक राष्ट्रीय आंदोलन का स्वरूप स्वतंत्रता के लिए लड़ाई का था। रचनात्मक कार्यक्रम एक राहत के रूप में था। ऐसी आजादी की लड़ाई लड़ने और परोपकारी काम करने के लिये त्याग काफी था। लेकिन गांधीजी जो समाज-क्रांति का आंदोलन चलाना चाहते थे, उसके लिए सेवकों को और आगे बढ़ने की आवश्यकता थी। इस काम को करने के लिए जरूरी था कि सेवक अपने जीवन में पूर्ण रूप से क्रांति लावें। यही कारण है कि गांधीजी ने सबसे पहले सेवकों का ध्यान शरीर-श्रम से गुजारा करने की ओर खींचा।

नव-मानव रूपी शिव की प्रतिष्ठा

इस प्रकार क्रांतिकारी सेवकों द्वारा समग्र ग्राम-सेवा का आंदोलन चलाने के लिए उन्होंने चरखा-संघ से कहा, क्योंकि चर्खा-संघ ही ऐसी व्यापक संस्था थी, जो इसे शुरू कर सकती थी। साथ ही गांधीजी यह भी समझते थे कि केवल सामाजिक क्रांति के आंदोलन से ही क्रांति संगठित नहीं हो सकेगी। जहाँ एक ओर यह आवश्यक है कि उत्पादक वर्ग आवश्यकताओं की पूर्ति तथा आंतरिक व्यवस्था के लिए स्वावलंबी होकर, व्यवस्था और वितरण के नाम पर जो वर्ग उसका शोषण करता है, उसे अनावश्यक बनाने की चेष्टा करे, वहाँ यह भी अत्यंत आवश्यक है कि नये स्वावलंबी समाज की स्थापना एवं रक्षा के अनुरूप नया मानव बने। समाज-क्रांति के गंगावतरण के साथ-साथ उसे धारण करने वाले नव-मानव रूपी शिव की प्रतिष्ठा न हुई, तो क्रांति की गंगा अवश्य ही प्रतिक्रांति के पाताल में तिरोहित हो जायेगी, इस सनातन तथ्य को गांधीजी जानते थे। वस्तुतः गांधीजी के क्रांतिकारी दर्शन की यही विशेषता है। इतिहास में पहले क्रांतियों की जो कल्पना की गयी थी, वह सब एकांगी

थी। कुछ व्यक्तियों ने केवल समाज-क्रांति की बात सोची और कुछ ने अपने विचार को व्यक्ति के विकास पर ही केन्द्रित किया।

गांधीजी का ऐलान

उपर्युक्त कारणों से ही गाधीजी ने एक ओर चरखा-सघ को चरखा द्वारा राहत पहुँचाने के मर्यादित काम को छोड़कर समग्र-ग्राम-सेवा द्वारा जन-शक्ति-उद्बोधन के विशाल कार्यक्रम को अपनाने को कहा और दूसरी ओर हिन्दुस्तानी-तालीमी-संघ से कहा कि नई तालीम को अब बुनियादी शिक्षा के जलाशय से निकाल कर महा-समुद्र में ले जाना है। अब शिक्षा की अवधि जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त होनी चाहिये। इस तरह गाधीजी समग्र-ग्राम-आन्दोलन और नई तालीम को समान रूप से साथ-साथ चला कर आन्दोलन तथा निर्माण-कार्य को एक-दूसरे के सहारे आगे बढाना चाहते थे, जिससे क्राति की प्रगति के साथ-साथ उसका संगठन भी स्थापित होता चले, ताकि प्रतिक्रातिकारी शक्तियों को सिर उठाने का मौका न मिल सके और शातिमय तथा व्यवस्थित कदम से क्राति अपने लक्ष्य की ओर निरंतर अग्रसर होती रहे।

रचनात्मक कार्यक्रम जड़वत् कैसे बना

गाधीजी के इस ऐलान ने रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं तथा संस्थाओं के विचारों को बहुत बडा धक्का दिया। राष्ट्रीय स्वतंत्रता-आन्दोलन की भूमिका में वे एक अलग दृष्टि से काम कर रहे थे। जिस तरह शोषण-हीन समाज-स्थापना की क्राति में गाधीजी समग्र ग्राम-आन्दोलन तथा नई तालीम को साथ-साथ चलाना चाहते थे, ताकि वे एक-दूसरे के पूरक हो सकें, इसी तरह स्वतन्त्रता- प्राप्ति के युद्ध की भूमिका में वे असहयोग-आदोलन तथा रचनात्मक कार्य को एक दूसरे के पूरक के रूप में चला रहे थे। यह बात गाधीजी ने पहले से ही मुल्क को बतायी थी। लेकिन देशवासी इसे समझ नहीं सके और वे हरएक को अलग-अलग दृष्टि से देखने

लगे। नतीजा यह हुआ कि असहयोग-आन्दोलन को रचनात्मक कार्यक्रम से अभीष्ट पुष्टि नहीं मिली और न आन्दोलन का स्रोत ही रचनात्मक कार्य को सम्यग् रीति से सींच सका। अतः दोनों धाराएँ एक-दूसरे से पृथक होती गयी। फलस्वरूप राष्ट्रीय आजादी प्रतिक्रियावादी शक्तियों के दल-दल में फँस गई और रचनात्मक कार्य अचेतन होकर जड़वत् बन गया।

संस्थाओं और कार्यकर्त्ताओं की परेशानी

अतएव गांधीजी ने जब नई समाज-क्रांति की आवश्यकता के अनुसार चरखा-संघ तथा उसके द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम का नव-संस्करण संपादन करना चाहा, तो देश की रचनात्मक संस्थाओं तथा कार्यकर्ताओं के लिये यह एक परेशानी की बात हो गयी। गांधीजी पर विश्वास और भक्ति थी, इसलिये उससे वे इन्कार नहीं कर सकते थे। साथ ही बीस-पचीस साल तक दूसरी भूमिका तथा दृष्टि से काम करने के अभ्यास के कारण नव-संस्करण के भविष्य पर उन्हें भरोसा भी नहीं हो पाता था। ऐसी परिस्थिति में परेशान होना स्वाभाविक था। कुछ लोग तो इस नई योजना की व्यावहारिकता तथा संभावना पर संदेहात्मक दलील भी पेश करने लगे।

बीस-पचीस साल तक महान् त्याग तथा अथक परिश्रम से रचनात्मक कार्य की विभिन्न मूर्तियाँ बनायी गयी थीं। अतः उन मूर्तियों के लिये सभी मोह पैदा होना स्वाभाविक था। गांधीजी ने जब उन मूर्तियों का विसर्जन कर फिर से नवीन मूर्तियों के निर्माण के हेतु आवाहन किया, तो, स्वभावतः लोग घबरा गये। लेकिन ऐसा करना आवश्यक था।

नवनिर्माण के लिये विसर्जन

किया जाता है। दूसरे देवता की पूजा के लिये वही प्रतिमा सुरक्षित नहीं रखी जाती। अगर रखी गई, तो वह आंगन के कोने में पड़ी-पड़ी सारे परिवार तथा समाज की अवहेलना के कारण अनादृत हो जाती है। यही कारण है कि स्वतन्त्रता-देवी की पूजा के लिये जिन प्रतिमाओं का निर्माण किया गया था पूजा-समाप्ति पर गांधीजी उन्हें विसर्जित कर, समाज-क्रांति की देवी के अनुरूप नयी प्रतिमा का निर्माण करना चाहते थे। अतः उन्होंने चरखा-संघ को शून्य बना देने तक को कहा और बाद में कांग्रेस को भी विसर्जित करने के लिये सिफारिश की।

लेकिन मोह बहुत कठिन था। कार्य की धारणाएं भी कुछ अलग थीं। अधिकांश कार्यकर्त्ता उनका मूलभूत क्रांतिकारी संदेश ग्रहण न कर सके। उन्होंने समझा कि वह केवल संस्थाओं आदि में सुधार लाना चाहते हैं।

फलतः चर्खा-संघ तथा अन्य खादी संस्थाएँ खादी द्वारा राहत के कार्य को बन्द करके, ग्राम-स्वावलम्बन के आधार पर कोई निश्चित कदम नहीं उठा सकीं। जिस तरह आज की सरकार मुख्यतः केन्द्रित औद्योगीकरण का कार्यक्रम चलाती हुई जहाँतहाँ खादी और ग्रामोद्योग को कुछ प्रोत्साहन देती है उसी तरह उन दिनों खादी संस्थाएं मुख्यतः उत्पादन-बिक्री के कार्यक्रम द्वारा राहत की खादी ही चलाती रहीं। साथ-साथ गांधीजी की नई योजना के नाम पर जहाँतहाँ थोड़ा बहुत वस्त्र-स्वावलम्बन तथा समग्र ग्राम-सेवा का भी कार्य करती रहीं। नतीजा यह हुआ कि खादी तथा ग्रामोद्योग के कार्य के लिए देश में कोई उत्साह नहीं रह गया। फलस्वरूप संस्थाओं में जड़ता और कार्यकर्त्ताओं में निराशा दिखाई देने लगी।

एकांगी उत्साह

दूसरी ओर गांधीजी द्वारा नई तालीम के व्यापक अर्थ बताने पर देश भर में काफी उत्साह दिखाई पड़ा। बहुत से पढ़े-लिखे नवजवान नई तालीम की ओर आकृष्ट हुए। देश के विभिन्न प्रांतों में ऐसे नवजवानों ने जगह-जगह नई तालीम-केन्द्रों का संगठन किया और अधिक उत्साह

से अपने-अपने केन्द्र को जमाया। लेकिन इस क्षेत्र में भी हमारा कार्य एकांगी होकर अधिक आगे नहीं बढ सका। गाधीजी नई तालीम को विस्तृत स्वरूप देकर उसे नवीन समाज-क्राति का वाहन बनाना चाहते थे। अत यह आन्दोलन भी समाज-क्राति की व्यापक पृष्ठभूमि पर ही प्रगति कर सकता था। वस्तुत गाधीजी की कल्पना के अनुसार समग्र ग्राम-आन्दोलन के पूरक के रूप में ही नई तालीम की प्रगति हो सकती थी। लेकिन रचनात्मक प्रवृत्ति मे कोई सपूर्ण क्रातिकारी योजना बनाकर काम करने की चेष्टा नही की गई। गाँधीजी द्वारा परिकल्पित सृजनात्मक काम के लिये विभिन्न अगों को लेकर विभिन्न संस्थाएँ तथा कार्यकर्त्ता बैठ गये और उनकी देह की सेवा करने लगे। मृण्मय मूर्ति के पीछे चिन्मय स्वरूप का दर्शन न होने के कारण ऐसा होना स्वाभाविक था।

स्वभावत देश भर में द्रुत गति से नई तालीम के जो केन्द्र बने, वे भी एकागी हो गये और उनकी भी प्रगति रुक गयी। शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति से गाधीजी समाज मे जो कायापलट करना चाहते थे, उस दिशा में कोई सयोजित चेष्टा नहीं हुई, बल्कि विभिन्न बुनियादी शालाओं की चहारदीवारी के अन्दर शिक्षण-कला की नई प्रणाली के प्रयोग मात्र मे उनकी शक्ति केन्द्रित हो गयी। यहाँतक कि इस शिक्षा के माध्यम के रूप में सामाजिक वातावरण का इस्तेमाल भी व्यापक न होकर संस्थाओं के आतरिक समाज तक ही सीमित रह गया। नई तालीम की शालाओं को व्यापक समाज-क्रान्ति का केन्द्र-बिंदु नहीं बनाया गया। फलत इस क्षेत्र के कार्यकर्त्ता उदास होते गये।

रचनात्मक कार्य की क्रान्तिकारी दिशा मे अपना रूप-परिवर्तन न कर सकने के कारण नई तालीमी सस्थाएँ भी आम जनता की दृष्टि नहीं आकर्षित कर सकीं। नतीजा यह हुआ कि उनमें से अधिकाश धीरे-धीरे सरकार "एज्युकेशन" के शिक्षक तैयार करने के केन्द्र बन गयीं।

ग्रामोद्योग और नई तालीम, दोनों पंगु

इस प्रकार नई तालीम सामान्य शिक्षण-कला के क्षेत्र में अवरुद्ध हो कर गतिहीन हो गयी। सरकार द्वारा जो काम चलाया जाता है, उसकी व्यर्थता तो स्पष्ट है ही। लेकिन हम रचनात्मक कार्यकर्त्ता भी, जो कुछ करते रहे, वह यद्यपि निष्ठायुक्त रहा, तथापि चेतन आत्मा के बिना निष्प्राण हो गया। इतना ही नहीं, एकांगी कार्यक्रम में लगे रहने के कारण हमारा विचार तथा आचार भी एकांगी हो गया। ग्रामोद्योगी संस्था तथा उसके कार्यकर्त्ता के लिये नई तालीम का आग्रह नहीं और न नई तालीमी संस्था तथा उसके कार्यकर्त्ताओं के लिए ग्रामोद्योग का ही आग्रह दिखाई देता है। फलत दोनों ही पंगु हो रहे हैं।

नई तालीम का संगठन

वस्तुत क्रान्ति के मूलतत्वों को समझ कर न अपना सकने के कारण, हम हर दिशा में असफल रहे। अतएव अब समय आ गया है कि रचनात्मक संस्थाएँ तथा उनके कार्यकर्त्ता एक बार फिर से विचार करें और फिर से एक बार हिम्मत के साथ पुराने दृष्टिकोण को तिलाञ्जलि देकर, गांधीजी ने चलते समय जो महान् क्रान्ति का स्वप्न हमें दिया था, उसको ध्रुव तारा मान कर अपने सारे कार्यक्रम को समग्र-क्रान्ति के आधार पर आयोजित तथा संगठित करें। ग्राम-राज्य स्थापित करने की दिशा में समग्र ग्राम-आन्दोलन के साथ-साथ नवसमाज-निर्माण के उद्देश्य से नई तालीम का संगठन करना होगा। यह काम अलग-अलग प्रवृत्तियों को लेकर अलग-अलग बैठने से नहीं चलेगा। बल्कि सृजनात्मक क्रान्ति के संपूर्ण स्वरूप को एक साथ अपनाना होगा। सौभाग्य से संत विनोबा ने हमारे सामने क्रांति का एक नवीन अवसर उपस्थित किया है। इस अवसर पर देश भर में भूमिदान-यज्ञ तथा केन्द्रित उद्योग-बहिष्कार-आंदोलन के साथ नई तालीम के गठन-मूलक कार्य को अभिन्न रूप से चलाना होगा।

गांधीजी के प्रयत्नों की परम्परा

गांधीजी के प्रयत्न

गाधीजी ने सन '२१ मे ही रचनात्मक कार्य को आन्दोलन की बुनियाद माना था। स्वराज्य आन्दोलन का प्रथम व्यापक तथा सक्रिय कार्य-क्रम "बेजवाडा प्रोग्राम" के नाम से मशहूर है। उस प्रोग्राम में देश में एक करोड़ कॉंग्रेस सदस्य बनाना और एक करोड रुपया एकत्रित करने के साथ-साथ पच्चीस लाख चर्खे चलवाने की बात थी। इसी समय गाधीजी ने चर्खे को अपनी सारी क्रान्ति का मध्य-बिन्दु माना था। जैसे-जैसे आन्दोलन आगे बढा और देश में जन-शक्ति की वृद्धि होती गई, वैसे-वैसे वे चर्खे के इर्द-गिर्द ग्राम-उद्योग आदि अन्य रचनात्मक कार्य-क्रमों को जोड़ते गये और अन्त मे उन्होंने देश के सामने नई तालीम की व्यापक योजना रखी। इस प्रकार गाधीजी ने अपने जीवन-काल मे ही चर्खे को केन्द्र बना कर नई-तालीम की परिधि के अन्दर अपनी धारणानुसार सृजनात्मक क्रान्ति की सारी प्रवृत्तियों को घेर लिया। इसी सिलसिले में सन् १६४८ में वह चर्खा-सघ तथा तालीमी-संघ को व्यापक बनाकर समग्रता के आधार पर सभी रचनात्मक संस्थाओं को एक सूत्र में बाँधना चाहते थे। सम्मिलित-समिति आदि बनाकर इसका एक निश्चित स्वरूप निर्माण करने की ओर उन्होंने प्रारम्भिक कदम भी उठा लिया था। यह सब प्रारम्भ मात्र ही था। इसी बीच गाधीजी का ध्यान तेजी से आगे आने वाली राजनीतिक परिस्थितियों की ओर पूर्ण रूप से खिंच गया।

देश में आजादी कायम करने के लिये अंगरेजों से बात-चीत चलती रही। गाधीजी का सारा ध्यान उधर जाना उस समय आवश्यक था।

आजादी प्राप्ति के साथ-साथ देश का विभाजन तथा उसकी भयंकर प्रतिक्रिया ने गांधीजी के ध्यान को उस ओर पूर्ण रूप से आकृष्ट कर लिया। फलस्वरूप रचनात्मक कार्य-क्रम के नव-संस्करण को आगे बढ़ाने को उन्हें फुर्सत नहीं मिली।

उधर जिन बड़े-बड़े नेताओं ने भारतीय स्वराज्य की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली, वे अंग्रेजों के छोड़े हुए राजनीतिक तथा आर्थिक ढाँचे को ही बदस्तूर कायम रखने के काम में लग गये। गांधीजी के बताये हुए परिवर्तन में उन्हें आस्था नहीं थी। अनास्था होते हुए भी बापू की खातिर जो कुछ सहानुभूति भी रही, उसको कार्यरूप में परिणत करने की हिम्मत उन्हें नहीं थी। फलत वे इस ओर से पूर्ण उदासीन हो गये।

रचनात्मक कार्य में शिथिलता

दूसरी ओर यद्यपि गांधीजी काफी व्यापकता तथा गहराई के साथ अपनी नई योजना के विभिन्न पहलुओं पर यथेष्ट प्रकाश डाल चुके थे तथापि रचनात्मक कार्यकर्ता इस क्रान्ति-कारी दृष्टि को भली-भाँति अपना नहीं सके और वे इसको अव्यवहार्य मान कर इसकी ओर पूर्णरूपेण नहीं झुक सके। यहाँ तक कि रचनात्मक कार्यक्रम में निष्ठा रखनेवाले गांधीजी के कुछ विशिष्ट अनुयायी भी यह मानने लगे कि बापू नव-संस्करण की बात करके अपने कार्य को अपने हाथों ही नष्ट करना चाहते हैं। परिस्थिति परिवर्तित होने के कारण रचनात्मक कार्य का पुराना स्वरूप समय की आवश्यकता पूरा नहीं कर सकता था। नई योजना की व्यवहारिकता पर भरोसा न होने कारण कार्य-कर्ता परिस्थिति के अनुकूल अपने कार्यक्रम को बदलने में असमर्थ रहे। अत स्वतन्त्रता-संग्राम के दिनों में रचनात्मक संस्थाओं तथा कार्यकर्त्ताओं में जो तेजी थी, वह समय के साथ न चल सकने के कारण मन्द पड़ गई। फलस्वरूप वे खुद जमाने की दृष्टि आकर्षित नहीं कर सकते थे।

उपर्युक्त कारणों से रचनात्मक संस्थाओं तथा उनके कार्यकर्त्ताओं में मायूसी आने लगी। स्वदेशी सरकार के खिलाफ असन्तोष भी पैदा होने लगा। उन्होंने (कार्यकर्त्ताओं ने) सोचा था कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सारा रचनात्मक कार्यक्रम सरकार की ओर से चलेगा और रचनात्मक कार्यकर्त्ता जिस तरह आजादी की लड़ाई के जमाने में देहातों में बैठकर बुनियादी कार्य को सँभालते हुए नेताओं को आन्दोलन चलाने में बल-प्रदान करते रहे, उसी तरह स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वे राष्ट्रिय सरकार के निर्माण-कार्य में मदद पहुँचाने का कार्य करते रहेंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

राज्य-सत्ता या जन-सत्ता

इस प्रकार की उदासीनता में दिसम्बर, सन् १६४४ ई० में रचनात्मक कार्यकर्त्ता गाधीजी से दिल्ली में मिले। उन्होंने उनसे अपनी स्थिति स्पष्ट की। कुछ लोगों ने उनके सामने यह प्रस्ताव भी रक्खा कि अब समय आ गया है, जब अपनी कल्पना के अनुसार आर्थिक तथा सामाजिक जीवन का संगठन करने में वर्तमान सरकार का भरोसा नहीं किया जा सकता। अतएव यह आवश्यक हो गया है कि सर्वोदय-विचार के अनुसार सामाजिक क्रान्ति में विश्वास करनेवाले लोग सत्ता के क्षेत्र में जाकर क्रान्ति को मूर्त रूप दें। उत्तर में गाधीजी ने इस बारे में अपनी मान्यता बताई। उन्होंने कहा, "आपको शक्ति पर कब्जा नहीं करना है, बल्कि उसका निर्माण करना है"। उन्होंने आगे बताया की राज्य-शक्ति कुछ नहीं है। जन-शक्ति ही वास्तविक शक्ति है। अतएव आप लोगों को जनता में जाना है और उनके मानस परिवर्तन द्वारा जन-शक्ति का स्फुरण करके ही अपनी क्रान्ति की प्रतिष्ठापना करनी है।

वस्तुत गाधीजी के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। वे आरम्भ से ही इस दिशा में आगे बढ़ना चाहते थे। यही कारण है कि सन '४४ में जेल से लौटकर जब उन्होंने देख लिया था कि अंग्रेज शीघ्र

ही जानेवाले हैं तो वह यह समझ कर नहीं बैठे रहे कि राष्ट्रिय सरकार के आने पर उसके द्वारा क्रान्ति का संगठन होगा। बल्कि उन्होंने विभिन्न रचनात्मक संस्थाओं का नई आवश्यकताओं के अनुसार पुनर्गठन करने की बात चलाई और उनके द्वारा देश भर में नवीन क्रान्ति के वाहक स्वरूप मुल्क से सात लाख नवजवानों की मांग की।

रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं का इस दिशा में मार्ग-दर्शन करने के लिए गाधीजी निकट भविष्य में सेवाग्राम में ही बैठने वाले थे। दिल्ली का काम एक तरह से समाप्त हो गया था। राष्ट्रिय सरकार स्थापित हो चुकी थी। साम्प्रदायिकता की अग्नि शनै शनै प्रशान्त हो चली थी। अत गांधीजी के लिए बुनियादी जनक्रान्ति के संगठन की ओर ध्यान देना सम्भव था। इस उद्देश्य से ही फरवरी, सन् १९४८ ई० को रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं का सम्मेलन बुलाया गया। उसी सम्मेलन में गांधीजी अपनी योजना पेश करने वाले थे। उसकी तैयारी में उन्होंने दिल्ली से ही विचार करना शुरू कर दिया था। उनके विचार से मुल्क की आजादी मिलने के बाद देश के सात करोड़ देहातों में स्वराज्य कायम करने का काम शुरू करने की आवश्यकता थी। कांग्रेस ने राजनीतिक आजादी हासिल करने का अपना उद्देश्य सिद्धकर लिया था। उद्देश्य-सिद्धि के बाद गाधीजी की राय में उसके पुराने स्वरूप के अस्तित्व की कोई आवश्यकता नहीं थी। गाधीजी की रहनुमाई में कांग्रेस समय-समय पर यह ऐलान भी करती रही कि उसे अपने लिये सत्ता नहीं चाहिये। वह तो देश भर की आजादी की लड़ाई लड़ रही है। इस विचार से गांधीजी ने कांग्रेस के लिये भी यही सुझाव रक्खा कि वह अपने मौजूदा स्वरूप का विसर्जन करके लोक-सेवक-संघ के रूप में गांव गांव में फैल जाय और जनता के आर्थिक तथा सामाजिक स्वराज की लड़ाई लड़े। इस सुझाव के साथ कांग्रेस का भविष्यत् स्वरूप क्या होगा उसका मसविदा तैयार करके ही वह वर्धा जाना चाहते थे।

३१ जनवरी को दिल्ली से प्रस्थान करने के पहले, उसे समाप्त कर कांग्रेस के नेताओं के हाथ में उसे देना भी चाहते थे। लेकिन दुर्भाग्य ने उस मसविदे को अधूरा ही छोड़ कर, वह इहलोक से चल बसे।

गांधीजी के निधन के पश्चात् रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं पर एक महान उत्तरदायित्व आगया। अब उन्हें मार्ग-प्रदर्शन के लिये बापू न रहे। उनको अब स्वतंत्र विचार से काम करना था। बापू के अभाव में वे किंकर्तव्यविमूढ़ थे। गांधीजी ने जिस महान् क्रान्ति के आयोजन की शुरुआत मात्र की थी, उसे उन्हें पूरा करना था। लेकिन नेतृत्त्व के अभाव में वे इसे कैसे करते? आजादी की लड़ाई के दिनों में गांधीजी के बाद मार्ग-दर्शन के लिये उन्हें जिन नेताओं का भरोसा था, वे सब दूसरी दिशाओं में प्रयाण कर चुके थे। अतएव उन्हें निराशा होना स्वाभाविक था। ऐसी परिस्थिति में देश भर के रचनात्मक कार्यकर्त्ता सेवाग्राम में एकत्रित हुए।

विनोबाजी की प्रेरणा

लिए यह सहज सुझाव पेश किया कि इसका स्वरूप संघ का न होकर भाई-चारे का ही होना चाहिये। संघों में अनुशासन अनिवार्य होता है। शासन-हीन समाज में ऊपर से अनुशासन की गुंजाइश कहाँ? सर्वोदय के आदर्श समाज में तो मनुष्य स्वयं प्रेरित विचार-शासन से ही काम करेगा। इसलिये सर्वोदय समाज की कल्पना में आत्मानुशासित भाई-चारे का होना स्वाभाविक है।

सर्व-सेवा-संघ का जन्म

लेकिन आज की परिस्थिति में ऐसे समाज की स्थापना के उद्देश्य से एक नवीन क्रान्ति को सुसंगठित तथा सुसंचालित करने के लिये एक व्यवस्थित संघ-शक्ति की भी आवश्यकता होती है। इसकी पूर्ति के लिये कार्यकर्त्ताओं ने उसी बात को सोचा, जिसे गांधीजी ने सन् '४५ में सोचा था। उन्होंने गाँधी जी द्वारा स्थापित सभी अखिल भारतीय संस्थाओं के सम्मिलित संगठन की कल्पना की। इस कल्पना के फल-स्वरूप सारी संस्थाओं के संघ-रूप में अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का जन्म हुआ।

यद्यपि विनोबाजी किसी संघ के सदस्य नहीं होते। तथापि सर्व-सेवा-संघ को उनका नेतृत्व सर्वदा उपलब्ध रहा। शुरू में सर्व-सेवा-संघ का स्वरूप स्पष्ट रूप से नहीं बन पाया। इस प्रकार के संघों का स्वरूप स्वभावतः कुछ बन नहीं पाता है। जुड़ी हुई संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं के पास अपनी संस्था की अलग कार्य-सूची इतनी लम्बी रहती है कि वे उसमें से समय निकाल कर सम्मिलित संघ के लिए कुछ समय दे सकें, यह सम्भव नहीं होता। गांधीजी होते तो शायद नये व्यक्तियों को आकर्षित कर सकते थे। लेकिन जिस निराशा के वातावरण में सर्वोदय समाज की स्थापना तथा सर्व-सेवा-संघ का संगठन हुआ उसमें नये व्यक्तियों का आना सम्भव नहीं था। अतएव विनोबाजी का मार्ग-दर्शन प्राप्त होने के बावजूद सर्व-सेवा-संघ की कोई प्रगति नहीं हो सकी।

विचार के साथ आचार

जैसा कि हमने पहले कहा है, सर्वोदय समाज सेवकों का एक भाई-चारा मात्र है। इसलिए उसका कोई विधान, संगठन या अनुशासन नहीं हो सकता था। न वह अपनी ओर से कोई कार्यक्रम चला सकता था। लेकिन ऐसे समाज की भी एक जिम्मेदारी होती है, और वह है सिद्धान्त पर चलनेवाले व्यक्तियों तथा संस्थाओं को प्रेरणा देना और उनका मार्ग-दर्शन करना। इस उद्देश्य से सर्वोदय समाज के सेवक साल मे एक बार एक सम्मेलन में मिलने लगे। दो साल तक इन चर्चाओं का कोई नतीजा नहीं निकल सका। वस्तुत केवल विचार मात्र फलोत्पादक नहीं हो सकता। विचार का फल आचार द्वारा ही मिल सकता है। आचार और विचार कोई दो वस्तुएँ नहीं। जैसे बिना विचार के आचार जड़ हो जाता है वैसे ही बिना आचार के विचार शून्य हो जाता है। दरअसल जिस विचार का सहज नतीजा आचार नहीं होता, वह विचार ही नही है। वह एक दिमागी कसरत मात्र है। सर्वोदय समाज की देह, सर्व-सेवा-संघ के नि:स्तेज होने के कारण सम्मेलन का विचार विचार मात्र ही रह जाता था। आचार मे उतर नहीं पाता था। इस कारण विनोबाजी के मार्ग-दर्शन में सर्वोदय समाज की स्थापना से शुरू मे एक बार आशा का संचार होकर जल्दी ही पहले से अधिक निराशा छाने लगी।

देह और प्राण

विनोबाजी इस स्थिति को गम्भीरता से देख रहे थे। उन्होने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से यह समझ लिया था कि देह और आत्मा की समान प्रगति के बिना सर्वोदय-विचार-धारा का विकास नहीं हो सकता। वह यह देखते थे कि विशिष्ट दृष्टि से विशिष्ट कर्म करनेवाली संस्थाओं के अलग रहते सर्वोदय समाज का देह रूपी सर्व-सेवा-संघ पनप नहीं सकता।

अत उन्होंने विभिन्न संस्थाओं को यह सलाह दी कि वे सब सर्व-सेवा संघ में विलीन होकर समग्र दृष्टि से एकता के साथ मिलकर काम करें। ऐसा करने से ही सर्वोदय विचार पुष्पित एवं पल्लवित हो सकता है। विनोबाजी की इस सलाह ने कार्यकर्त्ताओं को इस ओर सोचने को प्रेरित अवश्य किया। लेकिन वे तत्काल कुछ निर्णय नहीं कर सके। वर्षों से विभिन्न भूमिका तथा दृष्टि से काम करते-करते प्रत्येक संस्था में एक विशिष्ट संस्कार और परम्परा उत्पन्न हो गई थी। इन सब को तोड़ कर एक साथ मेल कैसे बैठेगा सब के सामने यह प्रश्न था। देश में कोई प्रेरणात्मक आन्दोलन भी नहीं था, जिसकी आँच में पिघल कर वे एक साथ घुल सकती थीं। इसलिए विलीनीकरण की इस कल्पना की शुरु में कोई प्रगति नहीं हुई। क्रमश. एक दो संस्थायें विलीन जरुर हुई। लेकिन उपर्युक्त भूमिका के कारण उनका वास्तविक विलीनीकरण न होकर वैधानिक एकीकरण मात्र ही रह गया। प्रत्यक्ष रुप में पूर्ववत् वे अलग-अलग भूमिका, संस्कार तथा परम्परागत दृष्टि से काम करती रहीं।

लेकिन सर्व-सेवा-संघ की बैठकों में तथा विभिन्न संस्थाओं के कार्य-कर्त्ताओं में विलीनीकरण की चर्चा हमेशा जारी रही। विनोबाजी भी समय-समय पर इन चर्चाओं में योग देते रहे। परन्तु चर्चा चर्चा तक ही सीमित रहती थी। कोई सक्रिय कदम उठाने की ओर विशेष प्रगति नहीं हुई। इसी बीच विनोबाजी ने तेलगाना की यात्रा की, और भूमिदान-यज्ञ के रुप में एक महान् आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। ज्यों-ज्यों विनोबाजी के कदम की प्रगति के साथ-साथ आन्दोलन का वेग बढ़ता गया त्यों-त्यों रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं की जड़ता छूटती गई और उनमें नव-चेतना का संचार होता गया। स्वभावत प्रत्येक संस्था तथा उसके कार्यकर्त्ताओं में पुरानी परम्पराओं को छोड़ कर नई परम्परा कायम करने की दिशा में चेतना अंगड़ाई लेने लगी। भूमिदान आन्दोलन जल्दी ही देश भर में फैल गया। अतएव संस्थाओं को सर्व-सेवा संघ

में विलीन होने की अनिवार्य आवश्यकता महसूस हुई। समय के इस तकाजे ने सन् १९५३ के चाँडिल सम्मेलन के अवसर पर अखिल भारत चर्खा संघ को भी सर्व-सेवा-संघ में विलीन कर दिया। चांडिल सम्मेलन में केवल चर्खा-संघ के ही विलीनीकरण की बात नहीं थी। आन्दोलन की तेजी ने कार्यकर्त्ता में जो आग पैदा की उसने विलीन हुई संस्थाओं की पुरानी परम्पराओं को मिटा कर उन्हें एक नयी समन्वयकारी परम्परा की प्रतिष्ठा की ओर अग्रसर किया।

युग का आवाहन

इस प्रकार भूमिदान-आन्दोलन के साथ-साथ रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं में आज इस नवयुग की आवश्यकता के अनुकूल नव-चेतना जागृत होती दिखाई पड़ती है। सर्व-सेवा-संघ का स्वरूप भी गांधीजी के स्वप्नानुसार समग्र निर्माण की योग्यता हासिल करता प्रतीत होता है। अब समय आ गया है कि सर्व सेवा-संघ युग क्रांति को आगे बढ़ाने की जिम्मेवारी अपने कन्धों पर ले। जिस प्रकार गुलामी की जंजीर तोड़ने के लिए आतुर जमाने ने कांग्रेस पर बन्धन-मुक्ति का भार सौंप रखा था, उसी प्रकार आज वर्ग-विषमता के ज्वालामुखी पर बैठी हुई शोषित तथा निर्दलित मानवता सर्व सेवा-संघ को अपनी मुक्ति के लिए पुकार रही है।

अतएव आज सर्व-सेवा-संघ को जमाने की माँग के अनुसार नव-समाज निर्माण के लिए सक्रिय क्रांतिकारी कदम उठाने के बारे में गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा। जैसा कि हमने पहले कहा है, यह कदम समान रूप से दोनों दिशाओं में उठाना चाहिए। एक आन्दोलनमूलक तथा दूसरा संगठनमूलक। भूमिदान-यज्ञ तथा उसका सहचर केन्द्रित उद्योग बहिष्कार-आन्दोलन का काम संघ ने दो साल पहले सेवापुरी सम्मेलन में ही शुरू कर दिया है और विनोबाजी की द्रुत

गति के साथ कदम मिलाकर प्रगति भी कर रहा है। अब समय आ गया है कि संघ गठनमूलक कार्य पर भी समान रूप से जोर दे।

स्पष्ट है कि इस कार्यक्रम का स्वरूप समग्र-निर्माण का ही हो सकता है और यह निर्माण कार्य भी नव मानव की सृष्टि की दिशा में होना चाहिए। जाहिर है कि नई तालीम ही एक मात्र ऐसा कार्यक्रम है जिसके द्वारा यह सध सकता है। यही कारण है कि गांधीजी ने हमें बताया था कि अन्ततोगत्वा विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्ति की नदियों को नई तालीम के सागर में जाकर मिलना होगा।

तालीमी संघ और विलीनीकरण

लेकिन प्रश्न है कि सर्व सेवा-संघ इस जिम्मेवारी को आगे कैसे बढ़ाये? नई तालीम की विशिष्ट संस्था हिन्दुस्तानी तालीमी संघ का सर्व-सेवा-संघ में अभीतक विलीनीकरण न होने के कारण समग्र क्रान्ति की आत्मा और देह अभी भी अलग-अलग रह गई हैं। नतीजा यह हो रहा है कि क्रान्ति सम्पूर्ण रूप से मूर्तिमान नहीं हो पाती। वस्तुत नई तालीम की प्रगति न होने का यह भी एक मुख्य कारण है। सरकारी बुनियादी शिक्षा की निस्सारता की बात बताते हुए विनोबाजी ने भी हमारा ध्यान इस मौलिक प्रश्न की ओर आकर्षित किया है। उनका कहना है

लिए राह खुल गई है। नई तालीम को यदि अपना तेजस्वी और परिशुद्ध रूप दिखाना है, तो तालीमी-संघ और सर्व-सेवा-संघ को एक रूप होना पड़ेगा। यह जबतक नहीं होता है, तबतक सर्व-सेवा-संघ और तालीमी संघ दोनों निर्जीव रहेंगे। धड़ और शिर अलग रहने से जो दशा शरीर की होगी, वही यह है।"

अब समय आ गया है कि जब गांधीजी के अनुयायी रचनात्मक कार्यकर्ता इस गम्भीर प्रश्न पर निश्चित निर्णय की अवहेलना नहीं कर सकते।

निर्णय और जिम्मेवारी की बेला



नई तालीम के माध्यम

उत्पादन की प्रक्रिया, सामाजिक वातावरण तथा प्राकृतिक वातावरण, ये तीनों नई तालीम के माध्यम माने गये हैं। जब वर्ग-विषमता को दूर कर एक वर्गीय समाज की स्थापना करना है यानी जब सामाजिक अद्वैतवाद को प्रस्थापित करना है और उस हेतु राज्य द्वारा संचालित व्यवस्था के बदले सहकारी 'नैराज्यवादी' व्यवस्था कायम करना है, तो ऐसे समाज के नागरिक को उपर्युक्त तीनों माध्यम से शिक्षित होना लाजिमी है। क्योंकि इन तीनों के सम्यक् ज्ञान बिना सामूहिक रूप से स्वावलंबी व्यवस्था सम्भव नहीं। मनुष्य को जिन्दा रहने के लिये श्रम द्वारा उत्पादन करना तो है ही। अपने को मानव कहलाने के लिये उसे सामाजिक जिन्दगी को सुसंगठित भी करना है। फिर प्रकृति का अंग होने के नाते मनुष्य का सहज एवं स्वाभाविक विकास उसकी (प्रकृति की) गोद में ही सम्भव है। अप्राकृतिक वातावरण से आत्मा का स्वतंत्र विकास अवरुद्ध हो जाता है। फलतः मानव आत्म निर्भर समाज बनाने में असफल हो जाता है।

देश की सर्व प्रथम जरूरत

उपर्युक्त तीनों माध्यम को सही तरीके से व्यवस्थित कर तथा सामाजिक लक्ष्य को सामने रख कर अगर राष्ट्रीय शिक्षा-योजना बनाई जाय, तो राष्ट्र निर्माण की अलग योजना बनाने की आवश्यकता ही नहीं होगी। सही नई-तालीम के नतीजे से सहज ही जो नव-समाज का निर्माण होगा वही अपने आप सामाजिक मकसद पर पहुँच सकता है। आज राष्ट्रनिर्माण के लिये जो योजनायें बनती हैं वे सर्वांगीण नहीं होतीं। अलग-अलग ही उसका आयोजन तथा संगठन किया जाता है। नतीजा यह होता है कि राष्ट्र रूपी शरीर का विभिन्न अंग टुकड़ों में बिखरे रहने के कारण एक पूर्ण देह भी नहीं धारण कर पाता, प्राण-

कर भी केवल व्यवहार की बात पर ही विचार किया जाय तो भी किसी सरकार द्वारा नई तालीम का संगठन सम्भव नहीं हो सकता है।

यहीं पर गांधीजी के साध्य तथा साधन की बात आ जाती है। अगर साधन साध्य के अनुरूप तथा अनुकूल नहीं होगा तो सिद्धि असम्भव है। यह बात गांधीजी हमें हमेशा बताते रहे हैं। और गांधीजी के जीवन-काल में जो लोग इस बात की अनिवार्यता के कायल नहीं थे वे भी जमाने के अनुभव से अब इस मूल तत्व को समझने लगे हैं। तो जिस तालीम का ध्येय दंड निरपेक्ष समाज-रचना है उसके संगठन का साधन दंड-शक्ति कैसे हो सकती है? दूसरी बात यह है कि जो तालीम सरकार द्वारा चलाई जायेगी वह सही तालीम नहीं होगी। आखिर शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का विकास है। व्यक्ति का विकास व्यक्तित्व के सहारे ही सम्भव है। सरकारी नियन्त्रण में संचालित व्यवस्था की चाहारदीवारी के अन्दर व्यक्तित्व जिन्दा नहीं रह सकता। क्योंकि सरकार व्यक्ति नहीं, वह तो एक मशीन है। आखिर अगर सरकार कोई चीज चलायेगी और उसके लिये साधन मुहैय्या करेगी तो उसपर नियन्त्रण रखना उसके लिये आवश्यक होगा। इसलिये स्वतंत्र व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द और स्वतंत्र जन-शक्ति के सहारे ही तालीम का संगठन फलदायक हो सकता है।

सर्व-सेवा-संघ की जिम्मेवारी

अतएव देश में नई-तालीम के प्रसार का काम किसी सार्वजनिक संस्था को ही उठाना होगा। और ऐसी संस्था को दंड-निरपेक्ष शक्ति पर ही भरोसा रखना होगा। अत ऐसी सार्वजनिक संस्था भी जिसका स्वरूप सत्ता-निष्ठ है नई तालीम संगठन का उपक्रम नहीं कर सकती। आज देश में सर्व-सेवा-संघ ही एक ऐसी अखिल भारतीय संस्था है जो अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिये दंड-निरपेक्ष स्वतंत्र जन-शक्ति पर ही आस्था रखती है। इसलिये सर्व-सेवा-संघ को ही नई तालीम के

प्रचार की जिम्मेदारी उठानी पड़ेगी। सर्व-सेवा-संघ जैसी संस्था द्वारा जिम्मेदारी उठाने के बाद दूसरी सत्ता-निष्ठ संस्थायें तथा सरकार भी सर्व-सेवा-संघ की मदद कर सकती हैं। ऐसी मदद सर्व-सेवा-संघ के लिये पूरक का काम करेगी। क्योंकि सरकार तथा दूसरी संस्थाओं की शक्ति जन-शक्ति का अंश ही है।

उत्पादन की प्रक्रिया अर्थात् कृषि, गो-पालन तथा ग्राम-उद्योग का कार्यक्रम नई तालीम के प्रथम माध्यम माने गये हैं। सर्व-सेवा-संघ की ओर से ये तमाम कार्यक्रम देश में कई जगह चल रहे हैं। लेकिन आज जो चल रहा है वह तालीम के माध्यम के रूप में नहीं। बल्कि बेकारी समस्या के हल की चेष्टा में, वस्तुओं के उत्पादन के रूप में है। अब सर्व सेवा-संघ का पहला काम होना चाहिये कि तत्काल जहाँ कहीं भी ऐसा काम हो रहा है उसे तालीम के माध्यम के रूप में चलाया जाय। वस्तुत गांधीजी प्रारम्भ से ही यह बात बताते रहे हैं। सन् १९२६ में गांधीजी जब काशी गये थे तो उन्होंने उत्तर प्रदेश के खादी कार्यकर्त्ताओं से खादी के लक्ष्य के बारे में चर्चा किया था। उन्होंने जब हर कत्तिन का रजिस्टर रखकर उससे प्रत्यक्ष सम्पर्क रखने की बात की थी तो एक कार्यकर्त्ता के पूछने पर कि "इसमें तो बहुत सेवक लग जायेंगे" उन्होंने हँस कर उत्तर में कहा था, "तो क्या तुम्हें केवल सूत कतवाना है? तुम्हें तो उन्हें देश-भक्ति की तालीम देनी है। उन्हें स्वराज्यवादिनी बनाना है।" इस दृष्टि से शुरू में वही करना है जो गांधीजी ने हमें अट्ठाइस साल पहले कहा था। कृषि, गो-पालन, खादी तथा ग्राम-उद्योग के सिलसिले में हम जितने व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं उन्हें स्वराज्यवादी बनाने की योजना चलानी होगी। अर्थात् अपने कार्यक्रम को इस ढंग से संयोजित करना होगा कि जिससे व्यवस्थित तथा नियन्त्रित रूप से सर्वोदय की विचार-क्रांति को समझाने का सिलसिला रहे। इससे नई तालीम की तैयारी में एक महत्त्व भूमिका बनेगी। लेकिन यह भी नई तालीम की बुनियाद का

काम नहीं होगा। बुनियादी काम तो बच्चों को लेकर ही हो सकता है। लेकिन बच्चों को हाथ में लेने से पहले उपर्युक्त कार्यक्रम चला कर आवश्यक सामाजिक वातावरण पैदा करना होगा, जिसे शिक्षा के माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया जा सके। केवल शिक्षा के माध्यम के रूप मे वातावरण दुरुस्त करने की गरज से ही यह प्रोग्राम चलाना है, ऐसी बात नहीं। बल्कि जनता नई तालीम को स्वीकार करे इसकी पृष्ठभूमि बनाने के उद्देश्य से भी उपर्युक्त सामाजिक तथा आर्थिक कार्यक्रम से प्रारम्भ करना होगा।

त्वरित आवश्यकता

अब प्रश्न यह है कि क्या सर्व-सेवा-संघ तत्काल बच्चों की नई तालीमशाला चलावे। संघ को अवश्य ही ऐसा करना होगा। लेकिन जैसे कि प्रारम्भ में मौजूदा केन्द्रो को तालीम की दृष्टि से रूपान्तरित करने की चेष्टा करनी है उसी तरह शुरू में बच्चों के लिये कोई भी कार्यक्रम बनाकर हमारे विचार के असर के घेरे में लाना है। इसका स्वरूप बाल-सभा, रात्रि पाठशाला, तथा रविशाला (Sunday Schools) का हो सकता है। जहाँ जहाँ अनुकूल वातावरण तथा स्थानीय नेतृत्व और साधन उपलब्ध हो सका, वहाँ बाकायदा बुनियादी शाला का भी संगठन किया जा सकता है। ऐसे कार्यक्रम का मार्ग-दर्शन करने के लिये भारत में दो चार स्थानों में सम्पूर्ण नई तालीम का चित्र खींचने के उद्देश्य से कुछ केन्द्रीय प्रयोगशाला के रूप में पूर्व बुनियादी से लेकर उत्तम बुनियादी तक के विश्वविद्यालयों का संगठन करना चाहिये जहाँ से सभी नई तालीम के केन्द्रों को प्रेरणा तथा मार्ग-दर्शन प्राप्त हो सके।

सर्वोदय-समाज के सेवक कहेंगे कि आज तो सब भूमिदान के काम में लगे हैं। इसलिये इतना व्यापक कार्यक्रम तत्काल कैसे हाथ में लिया जा सकता है। लेकिन यह सब कार्यक्रम तो भूमिदान-यज्ञ का अंग ही है। वस्तुतः भूमिदान-यज्ञ के साथ-साथ और उसके सिलसिले से ही इस समग्र मूलक काम को शुरू नहीं कर देंगे तो 'भूमिदान-यज्ञ' 'भूमिदान-यज्ञ'

न होकर भूमि-वितरण का एक सामयिक कार्यक्रम मात्र रह जायेगा। यह क्रान्तिकारी काम न होकर राहत का काम हो जायेगा और उसके गर्भ मे नव समाज का जन्म नहीं हो सकेगा।

जैसा कि हमने पहले कहा है कि आन्दोलनमूलक एवं संगठनमूलक दो धाराओं को एक साथ और अन्योन्याश्रित होकर आगे बढ़ना होगा। एक दूसरे से विलग होकर किसी को भी सिद्धि नहीं हो सकती। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की भूमिका में हमें इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका है। अतएव हम यह नहीं कह सकते हैं कि चूँकि हम एक काम में लगे हैं इसलिये फिलहाल दूसरा स्थगित रहे। हमें तो इसे उठाना ही है।

गंभीर प्रश्न

भूमिदान-यज्ञ के काम को भी तो संगठित करना होगा। लाखों एकड़ जमीन मिल रही है। कुछ पूरे-पूरे गाँव भी मिल रहे हैं। जमीन का बँटवारा, उससे उत्पन्न समस्याओं का समाधान, भूमि पर मजदूरों का पुनर्वासन तथा उनका संगठन तो भूमिदान-यज्ञ के सिलसिले से ही करना होगा और यह काम बिना तालीम के आप-से-आप हो जायेगा क्या? इनके लिये सुव्यवस्थित संगठन की व्यवस्था करनी होगी। अगर ऐसा करना है तो क्या हम कार्यक्रम के अलग-अलग मदों को लेकर फिर अलग-अलग चलने की कोशिश करेंगे। या समग्र दृष्टि से पूर्ण ग्रामराज की स्थापना की कोशिश करेंगे? अगर ऐसा करना है तो पहले से ही नई तालीम का कार्यक्रम लेकर आगे बढ़ना होगा। दान-प्राप्ति तो हृदय परिवर्तन की एक प्रक्रिया मात्र है। क्या परिवर्तित हृदयों को हम बेकार पड़े रहने देंगे? या उन हृदयों के अन्तस्तल से करुणा का जो स्रोत फूट पड़ा है उससे भारत के मृत्योन्मुख समाज-वृक्ष को सींचकर अनुप्राणित करेंगे?

सर्वोदय-समाज के सेवक तथा सर्व-सेवा-संघ के सदस्य इस अत्यन्त आवश्यक तथा गम्भीर प्रश्न पर विचार करें।



अ० भा० सर्व-सेवा संघ के नये प्रकाशन

१.	सर्वोदय के सेवकों से	विनोबा	।)
२.	मानवीय-क्रांति	दादा धर्माधिकारी	।)
३.	संपत्ति दान यज्ञ	श्री कृष्णदास जाजू	।)
४	धर्म-चक्र-प्रवर्तन	विनोबा	।)
५.	नई क्रांति	विविध विचारक	।)
६.	वर्ग-परिवर्तन की क्रांति	धीरेन्द्र मजूमदार	।)
७.	हमारी भूमि समस्या का हल	जयप्रकाशनारायण	।)
८.	भूदान दीपिका	विमला बहन ठकार	=)
९	नई तालीम और समाज का नवनिर्माण	धीरेन्द्र मजूमदार	≡)
१०	नई क्रांति के गीत	संग्रह	।)
११	विनोबा ऐण्ड हिज मिशन	सुरेशराम भाई	

विस्तृत सूचीपत्र मंगायें

प्रकाशन-बिक्री-विभाग
अ० भा० सर्व-सेवा-संघ
मगनवाड़ी :: वर्धा

व्यवहार शुद्धि

श्रीकृष्णदास जाजू

अ. भा. सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

व्यवहार-शुद्धि

वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन में शुद्ध व्यवहार
के लिए प्रेरक विचार

श्रीकृष्णदास जाजू

•

•

१९५४

अ० भा० सर्व सेवा-संघ वर्धा का प्रकाशन

प्रकाशकीय

दुर्भाग्य मे हमारे निजी सामाजिक एव राष्ट्रीय जीवन मे वडी गदगी आगई है, जिमसे देग की उन्नति में वडी वाधा पड रही है। आज की सवने वडी आवश्यकता इस गदगी को दूर करने की है। हम जानते है कि सचाई और ईमानदारी का राजमार्ग सरल नहीं होता, पर इसमें भी कोई सदेह नही कि विना उसपर चले देश की स्थिति में वास्तविक सुधार नही हो सकता।

जीवन के सभी व्यवहारो को शुद्ध वनाने पर ज़ोर तो हमेशा से दिया जाता रहा है लेकिन उसे आदोलन का रूप मिला राऊ-सर्वोदय-सम्मेलन के बाद। तबसे उस दिशा में प्रयत्न जारी है।

इस पुस्तक में व्यवहार-शुद्धि की पृष्ठ-भूमि तथा विचार-धारा को स्पष्ट किया गया है। साथ ही उसके आदोलन की भी जानकारी दी गई है।

आशा है पाठको को यह पुस्तक वहुत ही लाभदायक सिद्ध होगी।

विषय-सूची



व्यवहार-शुद्धि

१

व्यवहार-शुद्धि आंदोलन

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के वाद, सुराज्यावस्था की आशा का लोगो में जागना स्वाभाविक था परन्तु ज्यो-ज्यो समय वीतता गया, त्यो-त्यो परिणाम विपरीत दिखाई देने लगा, जिसने जनता में व्याकुलता वढने लगी, अनेक प्रकार के दोष उभरते-से दीखने लगे, जिनमें सवसे प्रमुख था भ्रष्टाचार, जो सव क्षेत्रो में फैला हुआ था। स्वराज्य के पहले भी भ्रष्टाचार था, परन्तु वाद मे तो वह तेजी से वढने लगा। सज्जनो को वह ज्यादा खटकने भी लगा स्वराज्य तो केवल राजनीतिक ही मिला था केवल उतने से देश की दशा थोडे ही वदलनेवाली थी। धन-सम्पत्ति के वढनेमात्र से भी सुराज्य नही आ सकता था। जवतक मनुष्य नही सुधरता, तवतक सुराज्य कहा और कैसा? लम्वे अर्से से हममें सामाजिक और नैतिक दोषो का प्रवेश कैसे हुआ और स्वराज्य मिलने के वाद भी वे कैसे वढते गए? इसके कारण की मीमासा में जाने की जरूरत नही है, और यह मेरे अधिकार का विषय भी नही है। हमारे लिए इतना समझना ही काफी है कि वस्तु-स्थिति वडी चिन्ताजनक हो गई। मेरे मन मे एक विचार चल रहा है कि वढती हुई अनीति और भ्रष्टाचार को घटाने तथा देश को सदा के लिए एक सन्मार्ग दिखाने का जो एक रास्ता था उसे अपनाया जाता तो अच्छा होता। अपने उस विचार का यहा उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है।

स्वराज्य-प्राप्ति के प्रयत्न में जितने त्याग की आवश्यकता थी

उससे कई गुने अधिक त्याग की आवश्यकता देश के पुनरुत्थान की थी। त्याग के बिना नैतिक स्तर ऊंचा नहीं उठ सकता और जीवन-व्यवहार में भी शुद्धि नहीं आ सकती, जो कि समाज-कल्याण के लिए जरूरी है। पर स्वराज्य मिल जाने के बाद ऐसा कुछ दीख पड़ा कि बहुत से लोग, विशेषकर कांग्रेसवाले भी, यह समझने लगे कि अब त्याग की वैसी जरूरत नहीं रही। भोग का मौका है, इसलिए स्वराज्य के फलस्वरूप जो कुछ शक्ति या अधिकार मिल रहा है, उसे अपनी-अपनी ओर खींचने में बाधा नहीं है। इसका परिणाम पतन ही हो सकता था। प्रश्न यह है कि ऐसी दशा में आम जनता में त्याग की मात्रा कैसे बढ़े? सद्ग्रंथों में हम पढ़ते रहे हैं तथा साधु-सन्तों के द्वारा त्याग की महिमा सुनते ही रहते हैं, परन्तु आम जनता तो उसे अपनी शक्ति या बूते के बाहर की बात समझती रही है, और वह समाज के झंझट से दूर रहनेवाले थोड़े से लोगों की ही चीज है। हम उनका आदर करें, परन्तु हमारे जीवन में उसका विशेष सम्बन्ध जोड़ने की जरूरत नहीं है, यह मानती रही है।

डालकर अपना राज्य कायम रखना था। वे अपना प्रभाव सामान्य जनता पर शान-शौकत, ठाट-बाट, दरबार-प्रदर्शन आदि से डालने का प्रयत्न करते रहे। अब स्वराज्य के बाद उस पद्धति की आवश्यकता नही रही। भारतीय संस्कृति में तो भोग की अपेक्षा त्याग को तथा अपरिग्रह को अधिक महत्व दिया गया है। वर्तमान आर्थिक-विषमता का मुकाबला भी अपरिग्रह से किया जा सकता है। इसलिए स्वराज्य मिलने पर अगर हमारे सत्ताधीश, विशेषकर ऊंचे पदो पर गये हुए देश भर के हजार-पांच सौ महानुभाव पुरानी पद्धति बदलकर अपरिग्रह वृत्ति पर चलते तो राजनैतिक परिवर्तन के साथ-साथ नैतिक परिवर्तन का दृष्टिकोण भी जनता के सामने आता। उसके सामने त्याग का उदाहरण रहने पर वह उन बडो का अनुकरण करती और समझ लेती कि हमारे स्वराज्य में भी त्याग की आवश्यकता है ही। 'राजा कालस्य कारणम्' यह बात पुराने जमाने की अपेक्षा आज सहस्रगुना अधिक सार्थ है। अब हमारी सरकारो की सत्ता हमारे चूल्हे तक पहुचती है, परन्तु देश की बढती हुई विपन्नावस्था में भी दिल्ली की तथा प्रांतो की राजधानियो की शान-शौकत और अमीरी रहन-सहन अंग्रेजी सत्ताधीशो का-सा ही है। जनता के सामने वह त्याग का आदर्श नही रहा, जिसकी हमारे बदले हुए काल में बहुत कुछ आवश्यकता थी। राजनैतिक परिवर्तन हुआ, परन्तु देश के कारोबारो में अनेक अंशो में पुरानी परम्परा ही चल रही है, लोग भोग की तथा धन-संग्रह की तरफ ही झुके हुए है, वस्तुएँ अत्यन्त महंगी होने के कारण, ऊँचे आदर्श के अभाव में, भ्रष्टाचार की ओर जाने में किसी को संकोच नही है।

लड़ाई के समय से ही अनेक वस्तुओं पर कन्ट्रोल लगे हुए आ रहे थे। बाद में भी न्यूनाधिक परिमाण में उनकी आवश्यकता मानी गई। अन्न का प्रश्न हल करने के प्रयत्न में कन्ट्रोल कुछ ज्यादा कडे भी किये गए। सर्व-सामान्य भ्रष्टाचार के उपरान्त, कन्ट्रोलो के कारण भी वह

बेशुमार बना। पाश्चात्य देशो में भी लडाई के समय तथा बाद में कन्ट्रोल थे, परन्तु वहा नागरिक कर्त्तव्य-बुद्धि जागृत रहने के कारण कन्ट्रोल तोडने की अपेक्षा उनके पालन करने की ओर ही जनता का अधिक झुकाव रहा। भारत मे उससे उलटा हुआ। यहा व्यापारी तथा सामान्य जनता प्राय इसी कोशिश मे रही कि कन्ट्रोल के नियम कैसे तोडे जाय। अपवाद जरूर थे, परन्तु यहा विचार बहुसख्यक लोगो का ही हो रहा है। जब भ्रष्टाचार का इतना बोलबाला है, तब स्वराज्य होते हुए भी समाज का कल्याण कैसे हो सकता है? इस विचार ने सज्जनो को चिन्तित कर दिया। जहा कही खानगी या सार्वजनिक रूप से, मुसाफिरी में या सभा आदि में थोडे से भी व्यक्ति इकट्ठे होते तो भ्रष्टाचार की चर्चा चलती और उसकी निंदा की जाती और दूसरो को दोष दिया जाता। जिस दोष की व्यापक निंदा हो, वह वास्तव में समाज में इतने बडे पैमाने पर टिक नही सकता। परन्तु निंदा करनेवाले भी उन दोषो मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अछूते थोडे ही रहते थे। बहुतेरे विवश या जानबूझकर भ्रष्टाचार के सहायक बनते थे।

व्यक्तियो से प्रतिज्ञा-पत्रक भरवाये जाय कि हम अमुक-अमुक प्रकार का भ्रष्टाचार नही करेंगे। जब सन् १९४९ में राऊ में सर्वोदय-समाज का सम्मेलन हुआ था तब उन्होने अपना यह विचार सम्मेलन के सामने रखा और चाहा कि सम्मेलन ऐसा आन्दोलन चलाये। उनका विचार पसन्द तो आया, परन्तु सर्वोदय-समाज कोई सगठित मडल नही था कि वह खुद इस काम को उठाता और आज जैसा 'सर्व-सेवा-सघ' भी उस समय नही बना था। फिर भी बम्बई के श्रीनाथजी महाराज के दिल में आया कि ऐसा कुछ काम होना चाहिए। राऊ-सम्मेलन के थोडे ही समय बाद उन्होने बम्बई में 'व्यवहार-शुद्धि-मडल' की स्थापना की।

श्रीनाथजी महाराज के शब्दो में 'व्यवहार-शुद्धि-मडल' का उद्देश्य और प्रवृत्तिया इस प्रकार है

"मानव-समाज का स्वास्थ्य, उत्कर्ष और उन्नति मनुष्यो के सद्गुणो पर अवलम्बित है। सत्य, प्रामाणिकता, उदारता, प्रेम, मित्रता परस्पर योग्य सहयोग और सहानुभूति के बिना मानवीय-व्यवहार का चलना और समाज का ठीक से टिकना सम्भव नही है। अगर मनुष्य को मनुष्य के नाते जीना है, तो उसे मानव-धर्म को स्वीकार करना ही चाहिए। यह सब बातें सही और स्पष्ट होते हुए भी हम आज उन्हे भूल गए है। आज समाज में अनेक प्रकार के असत्य और दुर्व्यवहार खुल्लमखुल्ला चल रहे है। केवल धन ही सबकी आराध्य वस्तु बन गई है। धन प्राप्त करने में न्याय-अन्याय, नीति-अनीति आदि का विचार नही किया जाता। मानवीय जीवन की दृष्टि से यह दशा अत्यन्त शोचनीय है।

किसी भी देश की या समाज की श्रेष्ठता उस देश या समाज के लोगो की सस्कारिता से जानी जाती है। उच्च और उदात्त नैतिक निष्ठा के बिना इस तरह की सस्कारिता और सभ्यता प्राप्त नही हो सकती। जिस देश के लोग एक-दूसरे के लिए, स्वार्थ-रहित बुद्धि से

कष्ट सहन करना चाहिए, ऐसा समझकर तदनुसार आचरण करते है, उन समाज की नैतिकता सदा उज्ज्वल रहती है। पर हम लोग तो आज अपने देश के भाइयो का शोषण कर समाज-द्रोह कर रहे है। कोई धन-तृष्णा से, तो कोई मोह से, कोई सत्ता के मद से, तो कोई जीविका चलाने की अडचन से, वैसा कर रहे है। हमारा कदम विनाश की दिशा में बढ रहा है।

"हम सब जानते है कि आज सर्व-साधारण जनता कितनी तकलीफ में और कितनी आपत्ति मे अपने दिन बिता रही है। जीवन की आवश्यक वस्तुओ की महँगाई मध्यम-वर्ग से लेकर गरीब तक सबको बहुत तग कर रही है। अनेक सासारिक सकट, व्याधि, आपसी कलह और द्वेष, आज की और भविष्य की चिता आदि सब दुखो से जनता त्रस्त है। समाज की सस्कारिता, सभ्यता और नैतिकता धोखे में है। इस परिस्थिति के अनेक कारण होगे तो भी हमें यह खेदपूर्वक कबूल करना होगा कि इसमें हमारी दुष्ट-बुद्धि भी एक बडा कारण है। जब-तक वह नही बदलेगी तबतक केवल सरकारी आर्डिनेन्स, नियन्त्रण या दण्ड-नीति विशेष परिवर्तन नही कर सकती। ऐसी दशा में भी मेरी और मेरे मित्रो की मनुष्य-मात्र में रहनेवाले दैवी अश पर श्रद्धा है। अगर वह अश जागृत हो, हम समझ ले कि मानवी-जीवन स्वार्थ के लिए नही, धर्म के लिए है और एक-दूसरे के लिए कष्ट सहन करना भी धर्म का एक अग है, और इस प्रकार हमारा व्यवहार होने लगेगा, तो अपना जीवन शुद्ध होगा और हम आज के पाप-चक्र में से बच सकेंगे। इस श्रद्धा से हमने खुद की और दूसरो की जीवन-शुद्धि के हेतु से ता० २९-५-१९४९ से 'व्यवहार-शुद्धि-मडल' की स्थापना की है।

इन चलते हुए व्यावसायिक पाप-चक्र को नष्ट करना चाहिए। इसका एक उपाय यह है कि हरएक व्यक्ति को अपने-अपने व्यवहार में शुद्धि लानी चाहिए। यही व्यवहार शुद्धि-मण्डल का प्रमुख हेतु है। इसीसे पाप-चक्र की गति धीमी होते-होते हम सबके सामुदायिक प्रयत्न से एक दिन नष्ट हो जायगी। हमारा हेतु केवल व्यापारिक व्यवहार में ही शुद्धि लाने का न होकर जीवन के हरएक क्षेत्र में शरीर, बुद्धि और मन के द्वारा होनेवाली प्रत्येक क्रिया में, वैयक्तिक कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि बातो के विचारो में, भावनाओ में और कर्मो में शुद्धि लाना है। सयम, विवेक और पुरुषार्थ की वृद्धि करते रहकर अपना जीवन सम्पूर्ण निर्मल, निर्दोष और व्यवस्थित हो और सब परमात्मा द्वारा मानव के लिए नियोजित किये हुए शुभ और मगल आदर्श की ओर सदा बढते रहे, यह उच्च हेतु व्यवहार-शुद्धि के प्रयत्न के पीछे है। इसी को हम जीवन-शुद्धि कहते है। इसीके लिए व्यवहार-शुद्धि की आवश्यकता है।

'ऊपर के वक्तव्य से, मण्डल स्थापित करने के पीछे की मनोभूमिका समझ में आ सकेगी। इस विचार के अनुरूप सजग होकर प्रयत्नशील होने के लिए हमने दो प्रकार के प्रतिज्ञा-पत्रक बनाये है। नम्बर १ का प्रतिज्ञापत्र सब प्रकार का दुर्व्यवहार छोड देनेवालो के लिए है। नम्बर २ क्रमश एक-एक, दो-दो दुर्व्यवहार छोडते हुए अन्त में नम्बर १ के पत्रक का पात्र होने की इच्छा रखनेवाले प्रयत्नशील सदस्य के लिए है। नं० १ वाले को सदस्य और नम्बर २ वाले को सहायक सदस्य नाम दिया गया है। पत्रक भरने के लिए कोई आग्रह नही किया जाता, अथवा कोई लालच नही दिखाया जाता।

वापिस ले लेनी चाहिए, क्योंकि एकाध सदस्य के असत्य से भी पूरे मण्डल के बारे में शंका खड़ी हो सकती है, समाज में एक-दूसरे के प्रति विश्वास घटने लगता है और कुल मिलाकर सामुदायिक-कार्य की हानि होती है। इसलिए कोई भी दम्भ का आश्रय न ले, इस दृष्टि से प्रतिज्ञापत्रक के बारे में यह सावधानी और नीति रखी गई है। इसी कारण मण्डल के सदस्यों की संख्या विशेष रूप से बढ़ नहीं पाई। सदस्य न बनते हुए भी जो सज्जन मंडल से सहानुभूति-पूर्वक सम्बन्ध रखते हैं, वे मण्डल के हितैषी समझे जाते हैं।"

श्रीनाथजी महाराज के वक्तव्य का ऊपर का कुछ लम्बा-सा अंश यहां इसलिए उद्धृत किया गया है कि इस समय की दशा और शुद्धि का आन्दोलन चलाने का उद्देश्य तथा देश का कल्याण करने के लिए कौन-कौन से सद्गुणों के विकास की आवश्यकता है और उसके आगे आनेवाले कौन से दोष हममें हैं, इसका ठीक भान हो जाय।

इसी सम्बन्ध में दूसरा प्रयत्न श्री किशोरलालभाई मशरूवाला की प्रेरणा से वर्धा में हुआ। उनका भी जोर इस बात पर रहा कि इस व्यापक रूप में फैले हुए भ्रष्टाचार की दशा में अकेला आदमी अपने को उससे बचाने में या उसको रोकने में असमर्थ पाता है, तो समान उद्देश रखनेवाले सज्जन इकट्ठे होकर एक-दूसरे की मदद करें और संगठित शक्ति से उसका मुकाबला करने का प्रयत्न करें। इस हेतु से वर्धा में एक 'शुद्ध व्यवहार-समिति' की स्थापना सन् १९५० में हुई। उसके कार्यक्रम का स्वरूप इस प्रकार रहा

शामिल होनेवालो की नई समिति वनाई जाय। वे इकट्ठे होकर सोचें कि कौन-सी प्रतिज्ञा उनके सदस्यो के लिए उपयुक्त हो सकती है। प्रतिज्ञाओ में भिन्नता रह सकती है, पर वह इतनी कमजोर न हो कि आखिर वेकार हो जाय। प्रतिज्ञा लेनेवाले अपना व्यवहार भरसक शुद्धि से करने लगे। जहा अडचन खडी हो वहा वे इकट्ठा होकर सोचें कि कठिनाई में से रास्ता कैसे निकाला जाय। इस काम में पडनेवालो को खुद सोच-विचार कर आगे वढना चाहिए। किसी दूर से या दूसरो से पूछना मिलने के लिए रुकना नही चाहिए। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि इस काम का सगठन स्थानीय ही हो सकता है, ताकि एक-दूसरे की मदद का सवको लाभ मिले। दूर-दूर के सदस्यो का सगठन करने से कोई विशेष लाभ नही होगा।

प्रतिज्ञा के नमूने

व्यवहार-'शुद्धि मडल' वम्बई

सदस्य

आज चालू व्यापारी-व्यवहार में रिश्वत, कालावाजार, टैक्स की चोरी, मिलावट वगैरह वुराइया वडे पैमाने पर फैली हुई है। उन्हे दूर करने के लिए मैं व्यवहार-शुद्धि-मडल का सदस्य होता हू। मै जो कुछ व्यवहार करूगा उसमें ऊप

सहायक सदस्य

आज चालू व्यापारी-व्यवहार में रिश्वत, कालावाजार, मिलावट वगैरह अनेक प्रकार की वुराइया वडे पैमाने पर फैली हुई है। उन्हे दूर करने के वास्ते मैं व्यवहार-शुद्धि-मडल का सहायक सदस्य वनता हू। नीचे लिखे जिन दुर्व्य-

शुद्ध 'व्यवहार समिति' वर्धा।

मैं

(१) जिस चीज की वाजार में कमी हो, उसे जरूरत से ज्यादा नही खरीदूगा और कृत्रिम कमी पैदा करनेवाली प्रवृत्तियो में शामिल नहीं होऊगा। (२) जिन चीजो के भाव सरकार द्वारा नियत किये गए हो, वे चीजें नियत भाव से ही खरीदने

बताई हुई किसी भी बुराई में भाग नही लूंगा। ऐसा आचरण करने में जो कोई कठिनाई आयगी उसे दूर करने के लिए मुझे यदि कोई उपाय न सूझे तो मैं अपनी असुविधा मण्डल के समक्ष रक्खूगा। मंडल जो सलाह या आज्ञा देगा उसे व्यवहार में लाने के लिए मैं बधा हू।

सही
पूरा नाम-पेशा-स्थान-तारीख

वहार के सामने मेरी सही है, वह दुर्व्यवहार मैं नही करूगा। और बाकी के सब दुर्व्यवहारो से बचने का मैं सतत प्रयत्न करता रहूगा। इस प्रयत्न में मैं व्यवहार-शुद्धि-मंडल की सलाह और आज्ञा के अनुसार चलने के लिए बधा हू।

रिश्वत
कालाबाजार
मिलावट
अनाज का कालाबाजार
कपडे का कालाबाजार
खोटे माप-तौल
टैक्स की चोरी

ता० सही——
पूरा नाम, पेशा, स्थान

की कोशिश रहेगी, अर्थात् कालेबाजार मे नही खरीदूंगा। (३) सुविधा, आराम या सामाजिक कार्यो के लिए कानून को टाल कर या गुप्त रीति से चीजें नही खरीदूगा। (४) मैं किसी को रिश्वत नही दूंगा। (५) मैं अपना जीवन-शुद्धता से और न्याय-नीति से बिताने की कोशिश करता रहूगा और ज्यादा-से-ज्यादा लोगो को शुद्ध व्यवहारी बनाने की कोशिश करूगा।

ता सही——

आन्दोलनों का महत्व कम नही होगा। जो यह काम करना चाहे, उनको इस तफसील से कुछ मदद और मार्ग-दर्शन मिलेगा। वैसा काम करने की पेरणा भी मिलेगी, ऐसी आशा है।

वम्बई-मडल के सदस्य करीव १०० तक वने और सहायक-सदस्य उनसे आधे। वर्धा समिति के करीव एक सौ सदस्य वने। वर्धा में एक सुविधा यह रही कि यहा के कट्रोल उतने कडे नही थे तथा कुछ रचनात्मक सस्थाओ के कार्यकर्ता भी सदस्य वने, जिन्हे प्रतिज्ञा निभाने में विशेष कठिनाई नही थी। वम्बई का काम कठिन था। वहा कट्रोल के नियम वहुत कडे थे और व्यापारी-वर्ग से भी सवध आया। वम्वई-मडल का काम चल तो रहा है, पर अव उसमें पहले जैसी गति नही रही। सन् १९५१ में वम्वई-मण्डल ने वहा एक व्यवहार-शुद्धि-सप्ताह मनाया जिसमें वम्वई के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो में तथा भिन्न-भिन्न स्तरो के लोगो में प्रचार किया गया। वर्धा में गत दो वर्षो में अधिक काम नही हो पाया। अधिकतर कार्यकर्ता भूदान-यज्ञ के काम में लगे रहे। निकट-भविष्य में शुद्ध-व्यवहार समिति के काम के लिए विशेष प्रयास करने की परिस्थिति न देख कर अभी उस समिति का विसर्जन कर दिया गया है। वम्वई और वर्धा के अलावा वाहर भी ऐसा सगठन करने का कुछ थोडा-सा प्रयत्न जरूर हुआ, परन्तु वह उल्लेख योग्य नही है। वाहर के कुछ व्यक्तियो ने अपने फार्म वर्धा-समिति को भेजे। परन्तु उन्हे लिखा गया कि वाहर के व्यक्ति सदस्य नही वनाए जा सकते, वे स्थानिक संस्था खडी करने का प्रयत्न करें। स्थानिक या वाहर के जो भाई प्रश्न या शका करते, उनका उत्तर दिया जाता रहा और महत्वपूर्ण वातें "हरिजन" पत्रिका में प्रकाशित होती रही। इनमें से भी कुछ अश इस पुस्तिका में अन्यत्र यथास्थान दिया गया है। 'हरिजन' के ये लेख कुछ दूसरे अखवार भी उद्धृत करते रहे। इस सारे आन्दोलन में श्रीनाथजी महाराज तथा श्री किशोरलालभाई ने वहुत स्फूर्ति दिी। श्रीनाथजी महाराज ने वम्वई के वाहर भी व्यवहार-शुद्धि

का प्रचार किया। इस आन्दोलन से प्रेम रखनेवाले अनेक भाई-बहनों ने प्रचार में मदद की।

इस आन्दोलन का परिणाम कैसा क्या हुआ, इसका अंदाज लगाना कठिन है। इतना जरूर कहा जा सकता है कि उन दो-तीन वर्षों में यह विषय देश के सामने जोरों से आया और अनेक व्यक्तियों के जीवन पर उसका असर पड़ा। जो पहले शुद्धाशुद्ध व्यवहार के बारे में सोचते ही नहीं थे वे सोचने लगे और जिन अशुद्ध बातों में वे दोष नहीं देखते थे वह बातें वास्तव में दोषास्पद हैं, यह उनके ख्याल में आया। हम बहुत-सी बातें बिना सोचे-समझे प्रवाह-पतित या लोगों की देखा-देखी करते रहते हैं। जब विचार करने लगते हैं तब उसमें रहे हुए दोष का स्वरूप जानने लगते हैं और उसे हटाने की कोशिश करते हैं। इस आन्दोलन ने कई व्यक्तियों को इस तरह विचार-प्रवण किया है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि जिन्होंने खुद शोधन कर अपनी शुद्धि करने की कोशिश की है। ऐसे अनेक पत्र दफ्तर में आते रहे। उदाहरण के तौर पर नीचे एक पत्र का सारांश दिया जाता है जो हमारे लिए प्रेरणादायी है। अगर हम इस प्रकार का विचार करते रहें तो अनेक अशुद्धियों से बच सकते हैं।

अब मुझे दीख गया है कि यह गैरवाजिब है। अब मैंने वह बन्द कर दिया है। दफ्तर के समय के बाद भी मैं अपने पढ़ने-लिखने के लिए दफ्तर की बिजली की रोशनी का उपयोग करता था। वह भी मुझे गैरवाजिब मालूम हुआ। तब से मैंने अपने लिए अलग बत्ती न लगा कर, जहां दूसरे काम के लिए बत्ती जलती रहती है वहां जाकर मैं अपने पढ़ने-लिखने का काम कर लिया करता हूं। इसके पहले छुट्टी मांगने के लिए सच्चे कारण देने से छुट्टी मिलने की संभावना न समझ कर रिश्तेदारों की बीमारी आदि झूठे कारण बताकर छुट्टी लिया करता था। दफ्तर के बहुत से लोग प्राय ऐसा ही किया करते हैं और अधिकारी लोग भी जान-बूझकर वैसे ही चलने देते हैं और उसमें दोष नहीं मानते। अगर सच्चा कारण बताया जाय तो छुट्टी मिलती भी नहीं। मेरे दिल में जागृति होने के बाद जब एक बार छुट्टी की आवश्यकता हुई तो मैंने सच्चा-सच्चा कारण लिख दिया, जिससे छुट्टी की दरख्वास्त नामंजूर हो गई। फिर भी मेरा विचार तो यही है कि भविष्य में सच्चा कारण बता कर ही छुट्टी मांगता रहूंगा। सचाई के मार्ग में ऐसी अड़चनें काफी आती हैं और कभी-कभी जी घबड़ाता भी है। इस भरोसे पर हूं कि ईश्वर बल देगा।"

अब बहुत से कण्ट्रोल हट गए हैं। कुछ ढीले भी पड़ गए हैं। कण्ट्रोलों को लेकर जो कुछ अशुद्धि थी, उसके लिए अब विशेष कारण नहीं रहा और वैसी शिकायत भी अब कम है। तथापि सर्वसाधारण-जीवन की जो अशुद्धि थी, वह तो ज्यों-की-त्यों बनी है। इस व्यापक अशुद्धि को हटाए बिना समाज का कल्याण संभव नहीं है। सु-राज्य का होना मनुष्य के नैतिक सुधार पर ही अवलम्बित है। व्यवहार-शुद्धि का लगातार प्रयत्न होते रहने की आवश्यकता अब भी उतनी ही है। इसलिए व्यवहार-शुद्धि का आन्दोलन चलाने में जो प्रश्न खड़े हुए और जो अनुभव में आये, वे सक्षेप में इस पुस्तिका में प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया है। हमारे सत्ताधीश तथा सब दलवाले लोग शुद्ध-व्यवहार पर जोर दे रहे हैं। आशा की जा सकती है कि इस पुस्तिका द्वारा भी यह विषय जनता के सामने रहने से शुद्धि के प्रयत्न में मदद मिलेगी। इस पुस्तिका में सिद्धान्त-निरूपण की अपेक्षा व्यावहारिक दृष्टिकोण पर ज्यादा जोर दिया गया है।

"सर्व-सेवा संघ यह भी महसूस करता है कि इस काम में सरकारी कर्मचारियो के सहयोग के बिना सफलता मिलना संभव नही है। सामान्य जनता की शुद्धि बहुत कुछ अंश में सरकारी कर्मचारियो की शुद्धि पर अवलंबित है। आज की विषम परिस्थिति में तो सरकारी कर्मचारियो का शुद्धिकरण अपना खास महत्व रखता है। इसलिए राज्यो के मंत्रि-मंडलो का फर्ज है कि वे अपने कर्मचारियो के शुद्धिकरण की ओर विशेष ध्यान दें।"

२

अशुद्ध-व्यवहार की जड़

एक हिन्दी कहावत का आशय यह है कि केवल चोर को मारने से क्या होगा? चोर की नानी को ही मार दें तो चोर का जन्म ही न हो। अशुद्ध व्यवहार की नानी कौन और उसे कैसे मारा जाय? इन प्रश्नो का उत्तर देना बहुत कठिन है। शायद अपनी-अपनी समझ के अनुसार अलग-अलग उत्तर मिलें। यहा हम दो-तीन मोटी बातो का ही विचार करेंगे। उनमें भी व्यावहारिक पहलू पर ही जोर देना उचित होगा।

अगर मनुष्य-स्वभाव के अन्तर्गत ऐसी कोई चीज है कि जिससे अशुद्ध का रहना अवश्यंभावी है, तो उसका सम्पूर्ण नाश करना असंभव है। अशुद्धि की व्यापकता को देखते हुए इतना स्वीकार करना ही होगा कि मनुष्य-स्वभाव में ही ऐसा कुछ अंश है जो अशुद्धि को जन्म देता है। परन्तु चूंकि मनुष्य शुद्धि की ओर भी बढता है, इसलिए यह भी मानना होगा कि शुद्धि का बीज भी उसमें है।

संत सहजोबाई का नीचे लिखा भजन मनन करने लायक है:
हरि ने जन्म दियो जगमाही। गुरु ने आवागवन छुटाही॥
हरि ने पांच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा॥

हरि ने कुटुम्ब जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता-बेरी ॥
हरि ने रोग भोग उरझायो। गुरु जोगी कर सबै छुटायो ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायो। गुरु ने आतमरूप लखायो ॥
हरि ने मोसूं आप छिपायो। गुरु दीपक दै ताहि दिखायो ॥

यह नहीं कि इस भजन का अर्थ अक्षरशः लिया जाय। भक्त ने इस भजन में हरि की तुलना से गुरु की महिमा अधिक बताई है। हरि से आशय कुदरत, मनुष्य-स्वभाव से लिया जा सकता है। सद्ग्रंथ, संत के साथ मनुष्य खुद भी बहुत-कुछ अंश में अपना गुरु है। आखिर गुरु के बताए हुए मार्ग में खुद को ही चलना पड़ता है। इसलिए हमारे मन की कमजोरियां, कितनी भी हों, हम उन सन्त-जनों का उपदेश ग्रहण कर अपने पुरुषार्थ से उन्हें हटा सकते हैं।

मोक्ष माना गया है। संभव है कि इनके कारण सामुदायिक उत्कर्ष के लिए जिन गुणों की विशेष जरूरत है, वे उचित मात्रा में नहीं बढ़ पाए। व्यक्ति और समाज के संबंध की विचारधारा में कुछ परिवर्तन होने की आवश्यकता दीखती है। व्यक्ति समाज का अंग है, समाज की भलाई में ही उसकी भलाई है। अगर सारे समाज को कष्ट भोगना पड़े तो व्यक्ति भी कष्ट से नहीं बच सकता। इस प्रकार की भावनाएं हममें दृढ़ होनी चाहिए।

यह तो स्पष्ट है कि अशुद्धि का मूल-कारण धन का लोभ है। परन्तु धन का लोभ इतना क्यों बढ़ा? यह दृश्य व्यापक पैमाने पर हरएक क्षेत्र में दीख पड़ेगा कि करोड़ों आदमियों के कष्ट-यातनाएं भोगते हुए भी बहुत से सम्पन्न लोग उसी संकट में से अपना स्वार्थ साधने में नहीं हिचकिचाते। सन् १९४२ में बंगाल में जो अकाल पड़ा, उसकी घटनाएं बड़ी हृदय-विदारक हैं। उसके बाद के चार-पांच वर्षों में अनाज की जितनी कमी थी उतनी उस अकाल में नहीं थी। लड़ाई चल रही थी, यह एक विशेष बात थी, फिर भी उस अकाल की जांच करने के लिए जो समिति मुकर्रर की गई थी, उसने लिखा था कि ग्राहक, व्यापारी किसान जो समर्थ थे, और जिनके हाथ आया उन्होंने अनाज का खूब संग्रह कर लिया। अनाज के भाव इतने बढ़ गए कि गरीब जनता में अनाज खरीदने की शक्ति ही नहीं रही। उस अकाल में करीब तीन लाख स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चे मरे होंगे। अनाज के मुनाफे और मरनेवालों की संख्या का परिमाण देखने पर पाया गया कि मरे हुए एक व्यक्ति के पीछे व्यापारी को एक हजार रुपये का मुनाफा रहा। खाने को न मिलने के कारण रोज-रोज यातना भोगते हुए प्राण कैसे जाते होंगे, इसकी कल्पना, जिनको खाने को मिलता है वे कर ही नहीं सकते।

यथासंभव अनाज उपलब्ध करा देती है। फिर भी यह बात तो रह ही जाती है कि ऐसे संकटकाल में भी धनिक लोग चीजों के भाव बढ़ाकर मुनाफा कमाने में संकोच नहीं करते। कुछ दानी लोग मदद के लिए जरूर आगे बढ़ते हैं, परन्तु उसका महत्व भी इससे अधिक नहीं कि संकट में से धन कमाकर उसमें से थोड़ा दान कर दिया जाता है।

पैसे के लोभ के लिए हमारी प्रचलित आर्थिक-व्यवस्था भी जिम्मेदार है। अंग्रेजी राज्य के काल में पाश्चात्य अर्थशास्त्र का बोलबाला रहा। अब भी प्राय वैसा ही चल रहा है। अंग्रेजों को इंग्लैंड के हित में भारत से धन ढोकर इंग्लैंड में ले जाना था। जब खुद के लिए इतना लाभ उठाना था तो भारत में भी यहां के कुछ लोगों को लाभ उठाने देना जरूरी था। देश के कुछ लोगों का मध्यस्थ बने बिना परदेशवालों का अपना काम संपन्न नहीं हो सकता था। परिणामस्वरूप देश में आर्थिक-विषमता बढ़ी।

समाज और राजसत्ता दोनो मिल कर इस काम को कर सकते हैं। गरीब जनता तो आर्थिक-विषमता घटाने की बात कर रही है। परतु वर्तमान खर्चीला शासन चलाने के लिए उसे जो धन चाहिए वह धनिको को कायम रख कर उनमे टैक्सो द्वारा प्राप्त करने की नीति, विषमता को कहा तक घटने देगी, यह एक विचारणीय प्रश्न है। फिर भी समता तो जमाने की माग है। उसे टाला नही जा सकेगा।

ता० ६ जनवरी १९५२ के 'हरिजन सेवक' में श्री मायकल फम के भ्रष्टाचार और पैसे सबधी अग्रेजी लेख का हिन्दी अनुवाद छपा है। उपयोगी होने के कारण वह यहा उद्धृत किया जाता है

"भ्रष्टाचार का और कालाबाजार, सग्रहबाजी, सट्टा आदि समाज के लिए हानिकर प्रवृत्तियो का कारण क्या है? बेशक, ऊपर से तो यही प्रतीत होता है कि यह सारा पाप पैसे के लिए हो रहा है। लेकिन सोचने की बात है कि आखिर लोग पैसा चाहते किसलिए है? यह प्रश्न सुनने में हास्यास्पद मालूम हो सकता है, पर उसमें अर्थ है। गुनाह अगर ज्यादातर गरीब लोग ही करें, तो उसमे सूचित होगा कि वे अपनी जरूरत से लाचार होकर ही कानून का उल्लघन करते है। कोई गरीब सरकारी कर्मचारी इनाम या रिश्वत ही ले सकता है, क्योकि उसका वेतन जीवन की जरूरतो के लिए पर्याप्त नही है। इसलिए गरीब व्यापारी भी अपनी चीज का दाम एक-दो आना महगा ले सकता है। अगर ऐसा हो, तो इस आचरण की हम निन्दा तो करेंगे, लेकिन शायद उसके कारणो को दूर करने की कोशिश भी करेंगे। उस सरकारी नौकर की तनख्वाह और व्यापारी का मुनाफा बढा दें। लेकिन हम देखते हैं कि इन गुनाहो के लिए बडे-बडे मिल-मालिक और लखपति, करोडपति और उच्च पदाधिकारी सरकारी नौकर भी पकडे जाते है। इनके बारे में तो ऐसा नही कह सकते कि वे अपनी जरूरत से लाचार होकर ही ऐसा करते हैं। वे तो पैसा कमाने की उसका ढेर लगाने की गरज से ही ऐसा करते है।

"अक्सर यह माना जाता है कि धनोपार्जन की प्रवृत्ति उन परिस्थितियों से उत्पन्न होती है, जिन्हें जीवन-संघर्ष का नाम दिया जाता है और जीवन के साधनों की प्राप्ति के बाद भी या तो इस बीच में उत्पन्न हो गई संग्रह की आदत के कारण चलती रहती है, या इसलिए कि व्यक्ति और भी ज्यादा सुरक्षा की इच्छा करने लगता है। लेकिन इस विषय पर अधिक बारीकी से विचार करें तो यह नतीजा प्रगट होता है कि इस प्रवृत्ति को न तो यह कहकर समझाया जा सकता है कि वह सिर्फ एक आदत है जो उत्पन्न हो गई है और न इस तरह कि संग्रह का काम अतिरिक्त सुरक्षा के लिए ही किया जाता है।

असाधारण घटना हो गई है। अपराधी के कठघरे में खडा होने पर या अदालत की न्याय-विधि के दरमियान, या न्यायाधीश के निर्णय में उनका सम्बोधन और उल्लेख एक साधारण अपराधी से अलग तरह का होता है। सजा होने पर और भोग चुकने पर भी अमीर आदमी, जबतक उसके पास पैसा है, समाज में अपना पुराना दर्जा फिर पा लेता है।

"अमीरो के लडके-लडकियो की शादी होती है, तो अखबारो में उनकी तसवीरें छपती है और उनका निरर्थक रूप में विस्तृत वर्णन प्रकाशित होता है, मेहमानो का, उनकी पोशाक का, यहा तक कि भोजन का भी वर्णन आता है। सार्वजनिक प्रार्थना हो, या धार्मिक समारम्भ हो, किसी भी आयोजन में वह पहली पक्ति में बैठता है। चुनाव के दिन आते है, तो लोग उसी के पास पैसा मागने जाते है।

"कोई उत्तम महात्मा ही क्यो न हो, यदि वह गरीब है, तो उसकी पूछ नही होती। लेकिन अमीर आदमी, फिर चाहे वह बेईमान हो, आदर पाता है। ऐसी हालत में किसी व्यापारी से यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि वह सीधी राह पर चलकर ऐसा नगण्य हो जाय, कि उसके साथ कोई भी गण्यमान व्यक्ति सरोकार न रक्खे ? ऐसी स्थिति में अमीर आदमी को मन-चाहे साधनो से पैसा कमाने की इच्छा और कोशिशो से रोकने का क्या उपाय हो सकता है ? फिर, चूकि ऊपरी वर्ग का अर्थ, अमीर-वर्ग ही होता है, सामान्य जन भी अमीरी को अभीष्ट मानते है और उसके लिए प्रयत्न करते है। तब इस वातावरण में समाज-विरोधी प्रवृत्तिया बढती है।

"यदि हमें यह सारा भ्रष्टाचार मिटाना है, तो हमें समाज की रचना में बुनियादी परिवर्तन करना पडेगा। समाज की रचना ऐसी होनी चाहिए कि किसी व्यक्ति को उसके पैसे के कारण कोई सम्मान न दिया जाय। समाज पर इस फर्क का ठीक क्रान्तिकारी परिणाम हो, इसलिए कुछ समय तक ऐसा करना होगा कि हम आज कोई व्यक्ति

अमीर है तो उसे सम्मान दें ही नही। जिसमें यह भी होगा कि वह व्यक्ति दूसरी तरह से योग्य और प्रतिष्ठा का सही पात्र होगा, फिर भी उसका सम्मान, सिर्फ इसलिए कि वह अमीर है, नहीं किया जायगा। इसमें कोई चिन्ता की बात नही है, ऐसे अमीर, अगर वे सचमुच *सज्जन हैं, तो वे प्रतिष्ठा मिलने-न-मिलने की* कोई परवाह भी नहीं करेंगे क्योंकि उन्हे यह प्रतीत रहेगा कि इससे हमारे देश का कल्याण होनेवाला है।

"यह मनोवृत्ति जब सर्वत्र फैल जायगी तब ज्यादा-ज्यादा लोग एक सीमा पर पहुचकर—यानी अपने जीवन-यापन के लिए काफी कमाने के बाद, पैसा पैदा करना और जोडना छोड देंगे। साथ ही अगर हम सामान्य और पूजनीय व्यक्ति का एक नया आदर्श खडा करे, उदाहरण के लिए, समाज-सेवक, साधु-पुरुष, साधारण किसान और मजदूर—तो एक बहुत बडा काम हम करेंगे, एक नई जीवन-दृष्टि का विकास होगा और भारत की इस पुरातन-भूमि में अभिनव महिमा-मण्डित गौरवशाली प्रजा का आविर्भाव होगा।

वह न सिर्फ प्रतिष्ठा की आशा रखता है और पाता है, वह किसी-न-किसी तरह इस रुपये को वापिस पाने की कोशिश भी कर सकता है।

"अगर कांग्रेस यह दृष्टि अपना ले, तो धीरे-धीरे समाज का चेहरा ही बदल जाय। जब यह स्पष्ट हो जायगा कि पैसे के जरिये सिर्फ दाल-रोटी या सुख-सुविधा ही ली जा सकती है, समाज और प्रतिष्ठा नही, तो सिर्फ दाल-रोटी के लिए अपना ईमान बेंचनेवालो की और अमीरो की नकल करनेवालो की सख्या कम होती जायगी। जब हमारा राष्ट्रीय आदर्श ऐसे साधु और महात्मा का हो जायगा, जो निरहकार भाव से अपने मानव-भाइयो की सेवा करता है तो राम-राज्य न सही, पर आज की अपेक्षा कही अधिक शीलवान भारत का दर्शन होगा।'

इसी सिलसिले में एक दूसरी बात पर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए। श्रीमान लोग अपने धन में से कुछ दान किया करते हैं। यह प्रवृत्ति बहुत अच्छी है और बढनी चाहिए। पू० विनोबाजी ने सपत्ति-दान-यज्ञ का प्रारभ किया है। उसे सफल करने की हम सबको कोशिश करनी चाहिए। उसमें सतत त्याग की भावना है, जिससे हमें अत करण की शुद्धि करने का एक साधन मिलता है। वैसा सात्विक दान सदा प्रशसनीय है। पूर्व-काल में भी दान को स्थान रहा है। समय-समय पर दान के स्वरूप भिन्न-भिन्न रहे हैं। पुराने जमाने में दान में पारलौकिक विचार भी रहा। इस जमाने में उसका स्वरूप कुछ बदल गया है। सामाजिक और सार्वजनिक-हित के कामो में उसका उपयोग होने लगा है। इस वृत्ति का हमें स्वागत करना चाहिए। परतु इस समय के दानो में एक बडा दोष यह घुस गया है कि व्यक्ति की कीर्ति या स्मारक की तरफ बेहद झुकाव बढ गया है। हमारे शास्त्रो ने तो गुप्त-दान की महिमा गाई है। दूसरे धर्मवालो ने भी ऐसा ही कुछ लिखा है। अगर धनिक दान के प्रमाण में ही कीर्ति चाहे तो भी हम उसे क्षम्य मान लें, परतु व्यावसायिक मुनाफाखोरी की तरह कीर्ति में

भी मुनाफाखोरी बढ़ गई है। दान में भी उनकी वृत्ति पूरी व्यावसायिक बन गई है। कोई किसी संस्था को एक लाख रुपये की मदद देता है, तो चाहता है कि उसके बदले में दस लाख के काम की कीर्ति मिले। किसी संस्था के लिए दो-तीन लाख के मकान की जरूरत है, हम जानते हैं कि संस्था के चलाने में अनेक व्यक्तियों को त्याग करना पड़ता है, कार्यकर्ताओं को आधे पेट रह कर और लम्बी अवधि तक संस्था चलाने की जिम्मेदारी उठानी पड़ती है, इसका मूल्य पैसे में नहीं आंका जा सकता। लेकिन जिसके पास करोड़ों रुपये हैं और जो धन कमाने में शुद्धि-अशुद्धि की परवाह नहीं करता, वह एकाध लाख रुपया देकर सम्पूर्ण संस्था में अपना नाम देने की शर्त रखता है। संस्था के संचालक भी संस्था चलाने की धुन में, लाचारी से, या व्यापक पैमाने पर वैसा चल रहा है, यह देख कर ऐसी अनुचित शर्त मान लेते हैं। बड़े-बड़े सत्ताधीश उन संस्थाओं का उद्‌घाटन कर दाता का गुणगान करते हैं और कभी-कभी इस सारे प्रकरण के फलस्वरूप दाता को अधिक धन कमाने के मौके भी मिल जाते हैं। केवल पैसे के बल पर किसी का गौरव बढ़ना अनीति-पूर्ण ही है। गौरव हो, चरित्र योग्यता का, धन का नहीं।

चिह्न मानी जाने लगी। ऐसा समय आ सकता है कि जब केवल पैसे के बल पर खडे किये स्मारक या नाम कभी तिरस्कार के भी पात्र हो। बेहतर यह है कि संस्थाओ को नाम साधु-संतो के या विशेष गुणवाले व्यक्तियो के ही दिये जाय, जिससे सुननेवाले या देखनेवाले को कुछ स्फूर्ति मिले। उस श्रेय में दान-दाता का भी कुछ अंश रहेगा ही।

कीर्ति के अलावा ऐश-आराम की, विशेष सामग्री जुटाना भी पैसे का एक उद्देश्य है। आजकल औद्योगिक नीति का यह भी एक उद्देश्य माना जाता है कि जीवन का स्तर (Standard of living) बढे। भारत जैसे गरीब देश में गरीब लोगो के जीवन का स्तर बढाना ही है और वह जरूर बढाना चाहिए। लेकिन जब जीवन-स्तर बढना चाहिए, शब्दो का प्रयोग किया जाता है, तब धनिको का या जिनका जीवन आज ऐश-आराम का है, उनका जीवनस्तर घटना चाहिए, इसका विचार तो किया ही नही जाता। सुविधाएँ प्राय उन्हे ही उपलब्ध होती है। एक तरह से यह परिग्रह बढाने का ही प्रकार है। बिना कारण परिग्रह बढाने में सदा असंतोष ही रहता है। मनुष्य की कामनाओ की पूर्ति में ही उनके बढने का बीज है। जहा करोडो लोग दरिद्रावस्था में है, वहा थोडे धनिको के जीवनस्तर का बढना उचित नही है। उलटे, वैसी चीजो का गरीबो में भी मोह बढता है और कुबुद्धि को प्रोत्साहन मिलता है। इसलिए शरीर और मन को स्वस्थ रखने योग्य चीजो से अधिक चीजो का संग्रह बढाने का विचार करना भारत की वर्तमान दशा में गलत दीखता है। समाज में अपरिग्रह-वृत्ति बढने के लिए आवश्यक है कि धनिको तथा सत्ताधीशो को अपना जीवनस्तर घटावें और अपरिग्रह का उदाहरण जनता के सामने रखें। जहा कही शान-शौकत, ठाट-बाट, फिज़ूल-खर्ची दीख पडे, उसके ख़िलाफ आवाज उठनी चाहिए और समाज में ऐश-आराम के जीवन के विरुद्ध विचार-धारा चलनी चाहिए।

३

शुद्ध-व्यवहार की जड़

मेरे ख्याल से शुद्ध व्यवहार की जड सत्य की उपासना एव धर्म है।

एक ओर मनुष्य के साथ स्वार्थ-भावना है तो दूसरी ओर उसका जिन-जिन से सम्बन्ध आता है, उनके प्रति कर्त्तव्य भी है। इस कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा स्वार्थ का नियन्त्रण होना चाहिये। हरएक मनुष्य की इच्छा रहती है और वह स्वाभाविक है कि दूसरा उसके साथ सच्चाई से पेश आए, कपट-छल न करे और उसे धोखा न दे। ऐसी हालत में उसका भी यह पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है कि वह दूसरों के साथ उसी तरह पेश आए। यह सचाई केवल दिखावे की न होकर मन, वचन और क्रिया की होनी चाहिए। अन्तःकरण पारदर्शक काच की तरह स्वच्छ हो, ताकि दूसरे लोग भी देख सकें कि हमारे अन्दर क्या है। अर्थात्, हममें पूर्ण सत्य निष्ठा होनी चाहिए। हमारे अन्तःकरण की वृत्ति सत्यमय हो जानी चाहिए। हमारा दिल और हमारी वृत्ति ऐसी बन जाय कि हमारी इच्छा सदा सत्य-व्यवहार की ही रहे और हम शुद्ध व्यवहार ही करें। शुद्ध व्यवहार के लिए इसके सिवा दूसरी और कौनसी प्रेरणा हो सकती है कि हमारी सत्य की उपासना सब प्रसंगों में और सतत चालू रहे। सत्य धर्म का प्राण है? "नहि सत्यात् परो धर्मः" "नहिं असत्य सम पातक पुंजा।" सब धर्मों ने सत्य पर जोर दिया है। महात्माजी तो यहा तक कहते थे कि सत्य ही ईश्वर है।

गुलाम बने रहने में मानवता नही है। मानवता तो इसी में है कि प्रयत्नपूर्वक बुरी वृत्तियो को दबाकर अच्छी वृत्तियो का विकास किया जाय। मनुष्य को चाहिए कि वह प्रकृति का गुलाम न रहकर उससे ऊचा उठे और अपनी जीवन-शुद्धि करता रहे।

मनुष्य की यह बहुत बडी दुर्बलता है कि वह एकाएक अपना दोष कबूल नही करता। इसमें उसका अहकार आडे आता है। वास्तव में विद्या का परिणाम यह होना चाहिए कि जो वस्तु जैसी है वैसी ही दिखाई पडे। परन्तु आजकल वह विद्या कमजोरी का समर्थन करने में चतुर-सी बन गई है। एक तो सत्य को पहचानना पहले ही आसान नही है। मनुष्य अपूर्ण है और वह किसी-न-किसी अश में अपूर्ण बना रहेगा। किस परिस्थिति में कौन-सा व्यवहार सत्याचरण है और कौन-सा असत्याचरण, इसका सही निर्णय करना कभी-कभी सचमुच मुश्किल हो जाता है। एक उदाहरण लें। कही-कही सौ या पचास मील के भीतर डाकगाडी मे तीसरे दर्जे से प्रवास करने की इजाजत नही है, इस कारण कई लोग बिना टिकट के प्रवास करते रहते है और टिकट कलक्टर के हाथ में कुछ पैसे रखकर अपना काम चला लिया करते है। कुछ लोग टिकट लेकर ही जाते है, परन्तु अपने स्टेशन का टिकट न लेकर सौ या पचास मील के आगे के स्टेशन का तीसरे दर्जे का टिकट लेकर प्रवास करते है। यह व्यवहार सत्य के अनुरूप है या नही ? प्रवासी कह सकता है कि मैंने इसमें अपना पैसा बचाया नहीं रेल्वे का नुकसान किया नही, कुछ ज्यादा ही पैसे दिये है। दूसरी ओर रेलवे द्वारा ऐसा नियम बनाने का कुछ कारण तो है ही। मुख्य कारण दूसरे प्रवासियो की तकलीफ कम करने की दृष्टि से भीड न होने देना है। नियम के खिलाफ प्रवास करके भीड तो बढाते ही है। इन दोनो दृष्टियो में से सही कौन-सी है, इसका निर्णय करना, बहस करने बैठें तो कठिन है, अन्यथा तो आसान भी है। जीवन में इस प्रकार के अनेक प्रसग आते है, जिनमें अमुक व्यवहार सचाई का है और

अमुक नही है, इसका निर्णय करना कठिन हो जाता है। अत हमे यह मानकर चलना पडता है कि नि स्वार्थ भाव से और बिना किसी मोह या विकार के जो बात हमारी शुद्ध बुद्धि को सही दीखे, वही व्यावहारिक दृष्टि मे सत्य है। जबतक हम उसके अनुसार चलते है तबतक दोष के पात्र नही बनते, क्योंकि हम जो कुछ करते है, वह ईमानदारी से करते है।

बेकार है। फिर भी यहा तो हमें एक ऊचे सिद्धात के लिए बडे-से-बडे त्याग की आवश्यकता माननी होगी।

यह बहस केवल सिद्धात या किसी पराकाष्ठा के प्रसग तक ही सीमित रहती तो भी एक बात थी, किंतु बहुत बार तो वह छोटे-छोटे हानि-लाभ के मौको के लिए भी पेश की जाती है। यह साध्य और साधन की शुद्धि का प्रश्न खडा होता है। कुछ लोग कहते है कि अगर हमारा हेतु शुद्ध है तो साधन की शुद्धि पर इतना जोर देने की आवश्यकता नही। वास्तव में देखा जाय तो साधन ही हमारे हाथ की बात है। उसी पर हमारा काबू चल सकता है। साध्य का सफल होना उन अनेक बातो पर अवलम्बित है, जिनपर हमारा वश नही चलता। इसलिए केवल साध्य को, जो हमारे काबू के बाहर है, महत्व देना और साधन को, जो हमारे हाथ की बात है, गौण मानना गलत होगा। यह भी मानना गलत है कि बुराई से भलाई हो सकती है। अशुद्ध साधनो के अवलम्बन से जगत में कई अनर्थ हुए है।

ये भाई अपने मत-समर्थन में शास्त्रो का भी आधार लेते है। शास्त्रो में ऐसा आधार है या नही, यह भी एक प्रश्न ही है, क्योंकि शास्त्र भी अनेक व्यवहारो का वर्णन किसी उद्देश्य से ही करते है। शुद्ध-अशुद्ध सब तरह के व्यवहारो को, लोगो को समझाने के लिए, उनमें स्थान देना शायद जरूरी भी हो। लेकिन बहुत बार हम उनका मर्म न समझकर अपने मत के अनुकूल अर्थ कर लेते है। धर्मराज के "नरो वा कुजरो वा" प्रकरण से हम यह सार निकालते है कि अगर धर्मराज ने भी वैसा किया तो हमें वैसा करने में दोष क्यो लगना चाहिए। लेकिन उसी प्रकरण के सिलसिले में महा-भारतकार ने बता दिया है कि जो धर्मराज का रथ उस वचन के पहले ऊपर चलता था, वह बाद में धरती पर आ टिका, यानी ग्रथ-कार ने उसमें असत्य के दोष को बतला ही दिया है। इसी प्रकार हिंसा के समर्थन में शास्त्रो का आधार लिया जाता है। यह तो मानना

तो एक समूह के मत-विशेष का प्रतिनिधित्व करता था, जो मानता था कि महात्माजी देश का बडा अकल्याण कर रहे है। इसलिए कुछ व्यक्तियो के सिर पर यह भूत सवार हुआ कि साधन-शुद्धि आदि की परवाह न कर उनकी हत्या करने मे हर्ज नही है। इस जमाने में महात्माजी जैसे की हत्या होना एक ऐसा महान अनर्थ है, जिससे साधन-शुद्धि के बारे में हमारी आख पूरी तरह खुल जानी चाहिये।

अगर हरएक व्यवहार के बारे में हम सोचने बैठेंगे कि उसमें सत्य का अनुसरण है या नही तो शायद निर्णय करना आसान न हो और हर वक्त प्रत्येक व्यवहार के बारे मे सोचने बैठें तो शायद समय ही नही मिलेगा। इसलिए आवश्यकता यह है कि हमारी चित्तवृत्ति ही दृढ अभ्यास से सत्यमय बन जानी चाहिए, ताकि हमारा हर आचरण स्वभावत सत्यमय हो और जहा भी असत्य है, वह हमें तुरन्त दीख पडे। किसी भी सद्गुण का सम्पादन तब ही ठीक-ठीक हुआ मानना चाहिए जब वह स्वभाव-सिद्ध हो जाय। जबतक उसके लिए प्रयास करना पडता है, तबतक वह अपूर्ण है और उसे पूर्ण करने की हमें कोशिश करते रहना चाहिए।

जब कभी सत्यासत्य के बारे में चर्चा होती है तब यही कहा जाता है कि पूरी सचाई से व्यवहार चलाना मुश्किल होता है। कुछ अपवाद भले ही हो, लेकिन जनता में सामान्य विचार यही पाया जाता है। किसी धधेवाले को यह विश्वास नही कि उसका धधा सचाई-पूर्वक किया जा सकेगा। इसमें गरीब-अमीर का भी भेद नही दीखता। जिसके पास विपुल धन है, उसे भी अपना कारोबार सचाई से चला सकने में विश्वास नहीं है। व्यापारी कहते हैं—माल के गुणधर्म के वर्णन में बढावा किये बिना तथा मोल-तोल जचाने मे अन्तर रखे बिना काम नही चलता। यही बात कारखानेवालो की और मजदूर-मालिको की है। शिक्षा-सस्थाए, जो सरस्वती के मन्दिर है, वहा भी निर्मलता नही पाई जाती। राजनैतिक क्षेत्र मे तो नृपनीति

अनेक-रूपा" है ही। दूसरो की तो क्या, वैद्य लोग भी कहते है कि अगर मरीज को उसके स्वास्थ्य की सही हालत बता दी जाय तो वह हाय खाकर मर जायगा, इसलिए उसके समाधान के लिए असत्य बोलने में हर्ज नही है। असत्य के समर्थन मे कुछ-न-कुछ दलीलें होती है, जैसे कि वकालत के धधेवाले कहते है कि वे तो अपने मवक्किल के मुखमात्र है। अगर वकील के मुख से जान-बूझकर भी असत्य निकलता है तो उसका दोष मुवक्किल को लगता है, वकील को नही। परन्तु ऐसे समर्थनो मे यह भुला दिया जाता है कि ऐसे सारे प्रसगो में हमारा स्व का भी कुछ-न-कुछ स्वार्थ रहता है। परन्तु चूंकि बहुत-से लोग ऐसा करते है, बडे-बडे भी करते है जो समाज में प्रतिष्ठित माने जाते है और ऐसे व्यवहारो से उनकी प्रतिष्ठा को कोई आच नही लगती, तब उसके समर्थन में कुछ अच्छा-सा नाम और दिया जाता है। 'व्यावसायिक ईमानदारी' (Professional Honesty) एक ऐसा ही शब्द-प्रयोग है।

समर्थन करना हमारा ही दोष है। गलती होती है, पर वह फिर से न हो, ईश्वर बल दे कि हम सत्याचरण पर दृढ रहे, इस प्रकार कमजोरी कबूल करने में हमारे और समाज के सुधरने की आशा है। धीरे-धीरे बल बढेगा और असत्य कम होता जायगा। अगर हम कमजोरी का समर्थन करते रहते है तो सुधरने की आशा नही रह जाती और आत्मवचना इतनी बढ जाती है कि हम नीचे गिरते जाते है। इतना ही नही, समाज का अकल्याण कर पाप के भागी भी बनते है। हममें यह दृढ श्रद्धा होनी चाहिए कि तात्कालिक कुछ नुकसान भी होता दीखे, तो भी अन्त में सत्याचरण लाभदायक ही है। जो व्यक्ति सत्य का अनुसरण करने की कोशिश करता है, उसपर लोगो का विश्वास जमता है, और उनसे अन्त में लाभ ही होता है। पारस्परिक सम्बन्धो में विश्वास का बडा मूल्य है। जिन्होने दृढता-पूर्वक ईमानदारी से अपना काम चलाया है, वे साक्षी है कि व्यावसायिक कामो में ईमानदारी का फल मिलता ही है। सामाजिक कामो में तो इसमें कोई शका होनी ही नही चाहिए। अगर सत्य में इतना बल न होता तो सत्य पर जोर दिया जाना कब का ही बन्द हो जाता। सकीर्ण दृष्टि से, हमारे अज्ञानवश उसका लाभ भले ही न दीखे, परन्तु अन्त में सत्य की विजय होती ही है। कहा भी है, "सत्यमेव जयते" जितनी हद तक हमारी कमजोरी हटेगी उतना ही हम उसका महत्व अधिक पहचान सकेंगे।

शास्त्रो ने और सत-पुरुषो ने अनेक सद्गुण गिनाये है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी उनकी नामावली कई जगह आती है। दूसरे और भी अनेक सद्गुण उनमें जोडे जा सकते है। समाज के कल्याण के लिए और व्यक्ति के भी हित में इन सद्गुणो का विकास आवश्यक है। परन्तु इनमें से हर एक का अलग-अलग विकास करना पडता हो, सो बात नही है। मनुष्य का अन्तःकरण एक ही होता है। उसमें शुद्धि-अशुद्धि सद्गुण-दुर्गुण दोनो का निवास एक साथ नही हो सकता।

भी इन गुणों के निर्देशक वाक्यों की छाप पाई जाती है। धर्म के नाम पर देह तक अर्पण करनेवाले तथा कठोर तपश्चर्या करनेवाले अनेक हो गए और अब भी हैं। फिर भी यह प्रश्न रह जाता है कि क्या व्यवहार में दूसरे देशों की अपेक्षा सर्वसाधारण भारतीय जनता की नीति ऊंची है? इसका उत्तर "हां" में देना मुश्किल है। अगर हम अधिक धर्मपरायण हैं तो वह धर्म-व्यवहार में प्रकट होना चाहिए। क्या धर्म केवल किताबों में या अपने दिमाग में रखने की चीज है? अगर सचमुच में धर्म के प्रति हममें श्रद्धा है तो वह प्रत्यक्ष करनी में उतरना ही चाहिए। हमारे सब व्यवहारों में शुद्धि आनी ही चाहिए। क्या धर्म-विचार के साथ अशुद्ध व्यवहार रह सकता है?

हम अपने जीवन की ओर दो दृष्टियों से देख सकते हैं, हालांकि वे दोनों परस्परावलंबी हैं। एक खुद के संबंध में और दूसरे अन्य लोगों के सम्बन्ध में—जिनके साथ हमारा संबंध आता है।

उपचार कर लेने मात्र से धर्म की उपासना हो जाती है, सांसारिक व्यवहार में धर्म का संबंध लाने की जरूरत नहीं। एकाध घंटा ऐसे कामों में बिताने पर बाकी के तेईस घंटे चाहे जैसा करने में हर्ज नहीं। कहीं-कहीं तो यह भी समझ लिया गया है कि जिस प्रकार नफे में नुकसान बाद किया जा सकता है या देने में लेना बाद किया जा सकता है उसी प्रकार पाप-पुण्य का भी हिसाब हो सकता है। व्यवहार में किये हुए पाप, दान-धर्म, पूजा-पाठ आदि से धुल सकते हैं। इस विचार में आत्म-वंचना और धर्म की प्रतारणा है। एक प्रकार से ईश्वर को ही ठगने जैसा है।

हम ईश्वर का दर्शन करना चाहते हैं, पर वह कहां होगा? यह तो सब शास्त्र कबूल करते हैं कि वह मन-बुद्धि-इन्द्रियों के परे है। हम उनका दर्शन उनके बनाए हुए विश्व में ही कर सकते हैं, विशेषकर अपने जैसे ही आकार-प्रकार, सुख-दुख की भावनावाली मनुष्य-जाति में। 'मूरति धोय अन्हवाय बिजन लै भोग लगाई, साच्छात भगवान द्वार तें भूखा जाई, पूजौ आतमदेव, खाय और बोलैं भाई ' इस विचार से भी अगर हम दूसरे लोगों के साथ छल-कपट करते हैं तो वह समाज-द्रोह के साथ-साथ ईश्वर का भी द्रोह है। व्यवहार-शुद्धि का इतना महत्त्व होते हुए भी अगर भ्रष्टाचार चलता है और कायम रहता है तो हिन्दू जाति का दूसरों की अपेक्षा अधिक धर्मपरायण होने का दावा टिक नहीं सकता।

सीखता है। उसे आध्यात्मिक साधन भी साधु-सन्तो से ही मिले हैं। इस तरह उसका दूसरो से व्यावहारिक संबंध कदापि टल नही सकता। अतः समाज के प्रति अपना कर्तव्य अदा करने के लिए उसे अपने अंतःकरण की शुद्धि के साथ-साथ समाजोपयोगी सद्गुणो का विकास भी करना चाहिए, जैसे प्रेम, सत्य, दया, सेवा, आदि। धर्म जैसे खुद के लिए है वैसे ही वह सारे समाज की धारणा के लिए भी है। अपनी खुद की धार्मिक वृत्ति और दूसरो से व्यवहार, इनमें भेद हो ही नही सकता। जैसे कुछ लोग घर मे उपयोग के लिए एक तरह की पोशाक रखते है और बाहर के लिए दूसरी तरह की। इस तरह का भेद खुद की धार्मिक वृत्ति मे, और दूसरो के साथ किये जानेवाले व्यवहार में नही हो सकता। एक ही घर में शायद भले और बुरे दोनो प्रकार के लोग रह ले। लेकिन एक ही दिल में खुद के लिए भलाई और दूसरो के लिए बुराई, अंतःकरण के लिए शुद्धि और बाहर के व्यवहार के लिए अशुद्धि यानी द्वैत-नीति कैसे रह सकती है? जो भीतर होता है, वही बाहर प्रकट होना चाहिए। जो बाहर प्रकट होता है उसका असर दिल पर होता ही है। धर्म कहता है कि एक ही ईश्वर ने सबको बनाया है। सब भाई-भाई है। आपस में प्रेम रखो। भूत-मात्र का हित साधो। स्वार्थी न बनो। दूसरो के सुख-दुख में अपना सुख-दुख मानो। "घट घट में वह साईं रमता", अपने जैसी ही आत्मा दूसरो मे है। अगर इन बातो में हमें विश्वास है तो दूसरो के प्रति किये जाने वाले व्यवहार मे अशुद्धि कैसे टिक सकती है और उसमें भ्रष्टाचार के लिए स्थान कहा? हमें इस निर्णय पर आना चाहिए कि धर्म और शुद्ध-व्यवहार एक ही बात है। अगर व्यवहार में अशुद्धि है तो हमारा धर्माचरण उतना ही कमजोर है और जितनी मात्रा में हममें अशुद्धि है उतने ही हम अधार्मिक है।

कुछ लोगो ने भोलेपन से कुछ ऐसा मान रखा है कि मंदिर, तीर्थ, देवदर्शन, पाठ-पूजा, भजन-कीर्तन, नाम-स्मरण, दान-धर्म आदि बाह्य

उपचार कर लेने मात्र से धर्म की उपासना हो जाती है, सासारिक व्यवहार में धर्म का सबध लाने की जरूरत नही। एकाध घटा ऐसे कामो में बिताने पर बाकी के तेईस घटे चाहे जैसा करने में हर्ज नही। कही-कही तो यह भी समझ लिया गया है कि जिस प्रकार नफे में नुकसान बाद किया जा सकता है या देने में लेना बाद किया जा सकता है, उसी प्रकार पाप-पुण्य का भी हिसाब हो सकता है। व्यवहार में किये हुए पाप, दान-धर्म, पूजा-पाठ आदि से धुल सकते है। इस विचार में आत्म-वचना और धर्म की प्रतारणा है। एक प्रकार से ईश्वर को ही ठगने जैसा है।

हम ईश्वर का दर्शन करना चाहते है, पर वह कहा होगा ? यह तो सब शास्त्र कबूल करते है कि वह मन-बुद्धि-इन्द्रियो के परे है। हम उनका दर्शन उनके बनाए हुए विश्व में ही कर सकते है, विशेषकर अपने जैसे ही आकार-प्रकार, सुख-दुख की भावनावाली मनुष्य-जाति में। "मूरति धोय अन्हवाय व्जिन लै भोग लगाई, साच्छात भगवान द्वार से भूखा जाई पूजो आतमदेव, खाय और बोलै भाई ' इस विचार से भी अगर हम दूसरे लोगो के साथ छल-कपट करते है तो वह समाज-द्रोह के साथ-साथ ईश्वर का भी द्रोह है। व्यवहार-शुद्धि का इतना महत्व होते हुए भी अगर भ्रष्टाचार चलता है और कायम रहता है तो हिन्दू जाति का दूसरो की अपेक्षा अधिक धर्मपरायण होने का दावा टिक नही सकता।

बहुत सभव है कि धर्म-मार्ग से चलते हुए हमें अनेक कठिनाइयो का मुकाबला करना पडे। पर सच्चा पुरुषार्थ उसीमें है और हमारी मानवता की कसौटी भी। यो ही हमें अपने जीवन-काल में अपने शरीर-सम्बन्धी तथा परिवार-सबधी अनेक कष्ट सहने पडते है तब हमारे कल्याण का एकमात्र आधार जो धर्म है, उसके लिए हम सब क्यो न करें ? 'हरिनो मार्ग छे शूरा नो।"

४

सूक्ष्म असत्य

सेवाग्राम आश्रम में महात्माजी की कुटी में दीवार पर एक तख्ती टगी है, जिसपर रस्किन का अग्रेजी वाक्याश लिखा है, उसका अर्थ यह है

"असत्य बोलने का मर्म धोखा देने मे है, न कि शब्दो में। असत्य बोला जा सकता है, मौन से, कूट-भाषा से, एक शब्द पर जोर देने से, वाक्य को विशेष अर्थ मिले, ऐसे आख के इशारे से। यह सब असत्य स्पष्ट शब्दो में कहे गए असत्य की अपेक्षा कई गुना अधिक बुरे और हेय है।"

इस अध्याय के शीर्षक के शब्द कुछ विलक्षण है। "सूक्ष्म असत्य"[1] शब्द मुझे महात्माजी से मिला। एक भाई दूसरो से अपने हाथ-पैर दबवाया करते थे, जो उचित नही था। पूछने पर उन्होने बताया कि मेरी इच्छा न होते हुए मेरे हाथ-पैर दबाए जाते है। महात्माजी ने कहा, "इन भाई के ध्यान में यह बात नही आई कि यह बात कहते हुए सूक्ष्म असत्य हो रहा है। अगर इच्छा न हो तो रोज-ब-रोज हाथ-पैर कैसे दबाए जा सकते ? निश्चयपूर्वक एक बार मना करने पर दबाना बन्द हो ही जाता।"

असत्य के पीछे सूक्ष्म विशेषण लगने से यह ख्याल होना स्वाभाविक है कि असत्य सूक्ष्म और स्थूल दो प्रकार का हो सकता है क्या सचमुच असत्य के ऐसे कुछ भेद है या किये जा सकते है ? असत्य

---

१ जैन आचार में सत्यव्रत को अणुसत्य और महासत्य व्रत के रूप में माना गया है। अणु का अर्थ है एक देशीय-पालन, स्थूल पालन और महा का अर्थ है सर्वदेशीय पालन, सम्पूर्ण पालन। सुविधा के लिए हम कह सकते है कि जो स्थूल सत्य गृहस्थो के लिए कहा गया है, उसमें सूक्ष्म असत्य भी शामिल हो जाता है।

व्यवहार करनेवाले की दृष्टि से तो कोई भेद नही दीखता, क्योकि व्यक्ति स्वय जान सकता है कि वह असत्य व्यवहार कर रहा है या नही, दूसरो के ख्याल में वह असत्य आए या न आए, या देर मे आए।

फिर भी ऐसे कुछ उदाहरण हो सकते है कि खुद को भी पता नही चलता कि असत्य कर रहा हू या नही। मनुष्य में अपूर्णता है, अज्ञान है, कई बातो में उनका ज्ञान अधूरा है, गलतफहमी भी रहती है और वह सदा सावधानीपूर्वक सोचता भी नही। इसलिए सूक्ष्म असत्य शब्द चल पडे तो लाभ ही होगा। हर बात में सूक्ष्मता और स्थूलता रहती ही है। विशेषकर मन की प्रक्रियाए सूक्ष्म होती है, जहा तक हमारी दृष्टि स्थूल है, हम मोटे-मोटे दोष ही देख सकते है और मिटा सकते है। इतना हो जाने पर बाद में दीखता है कि अन्दर छिपा हुआ कितना ही सूक्ष्म दोष पडा है। जबतक उन सबका निराकरण नही होता, तबतक पूरी शुद्धि नही हो पाती और हर व्यवहार की छान-बीन होकर अशुद्ध व्यवहार टल नही सकता। इसलिए प्रत्येक बात के बारे में हमें सूक्ष्म दृष्टि से सोचते रहना चाहिए।

जाता है, बडे-बडे प्रतिष्ठित लोग करते है, इसलिए उस असत्य को प्रतिष्ठा मिल गई है। इस तरह सूक्ष्मअसत्य के अनेक प्रकार हो सकते है।

व्यक्ति का अनेक लोगो से सबध आता है। लोगो की और पेशो की सख्या भी कम नही। व्यवहार भी असख्य होते है। अशुद्धि के उदाहरण भी असख्य और विविध है। इसलिए कुछ थोडे मे ही उदाहरण जो अपने-आप बिना विशेष सोचे-विचारे ख्याल मे आते है, उनका ही उल्लेख यहा किया है।

कई बार हम बिना कारण ही असत्य करते रहते है। इस कथन से पाठको को कुछ आश्चर्य होगा। लेकिन गहराई मे सोचेंगे तो मालूम होगा कि हमारा बहुत-सा असत्य तो बिना कारण ही होता है, जिसका शायद हमें भान नही है या जिसमे हमें दोष नही दीख पडता। दूसरो की नज़र में हम जैसे है उसकी अपेक्षा अधिक अच्छे दीखें, इस निमित्त से हमारी बोलचाल और अनेक काम ऐसे होते रहते है कि जिसमें न्यूनाधिक असत्य और दिखावा रहता है। बहुत बार तो इसकी आवश्यकता भी नही रहती। जिनके सामने ये क्रियाए होती है, उनसे कुछ लाभ उठाने की मशा भी नही रहती। स्वभाव ही ऐसा कुछ बन जाता है कि जिससे हमारे व्यवहार में असलियत न रहकर कृत्रिमता आ जाती है। किसी बात के लिए हमारा मत जैसा अनुकूल या प्रतिकूल रहता है, वैसा उस बात के वर्णन करने में रग चढ जाता है। जिस व्यक्ति से हम बोल रहे होगे या जिससे हम व्यवहार कर रहे होगे उसको देखकर भी हमारे आचरण में फर्क पड जाता है। घर में व्यवहार एक प्रकार का, दूसरो के घर पर दूसरी तरह का, मेहमानो के सामने तीसरी तरह का, इस प्रकार जीवन स्वाभाविक न रहकर कृत्रिम बन जाता है। लिखने का आशय यह नही कि इसमें विशेष हानि-लाभ की कोई बात है। फिर भी स्वाभाविकता और कृत्रिमता में जो फर्क है, वह तो है ही।

पू० विनोबाजी का बताया हुआ एक किस्सा ध्यान में रखने योग्य है। एक बार हमारे कवीद्र श्री रविबाबू साबरमती के सत्याग्रह आश्रम में आनेवाले थे। जब इतने बडे मेहमान आते है तो स्वाभाविकरूप से सब व्यवस्था ठीक-ठाक कर ली जाती है। बहुतेरो ने अपने रहने के स्थान आदि ठीक-ठाक कर लिये और सारी चीजे व्यवस्थित जमा ली गई। परन्तु विनोबाजी ने कहा कि मैने कुछ भी विशेष नही किया। सदा साफ, स्वच्छ, व्यवस्थित रहना अच्छा है और सदा ही रहना चाहिए। वैसे रहने की कोशिश तो चलती ही है। अगर उसमें कुछ त्रुटि रहती है तो उसे मेहमान भी देख ले, उनको कोई चीज़ दूसरी तरह से बताने की आवश्यकता क्या ? यही अच्छा है कि हम जैसे है, वैसे ही हमको वे देखें।

खेल-कूद, हसी-मज़ाक में असत्य को स्थान देने में दोष नही माना जाता। इसमें शायद इस बात का आधार मान लिया गया कि किसी को नुकसान पहुचाने का इरादा नही रहता या कोई हानि-लाभ नही है। शायद शुद्ध और अशुद्ध व्यवहार की कसौटी यह मान ली जाती है कि जिसमें खुद का कुछ गैरवाजिब लाभ हो या दूसरो की गैरवाजिब हानि हो तो उसे ही अशुद्ध-व्यवहार समझना चाहिए। जिसमें इस प्रकार का हानि-लाभ नही है, उसे अशुद्ध क्यो माने ? मोटे रूप में यह ठीक दीखता है। कानून की मर्यादा भी वही तक पहुचती है। परन्तु कानून तो बाह्य आचरण का ही नियत्रण कर सकता है। अत करण की शुद्धि तक वह नही पहुचता। हमें तो अत करण की शुद्धि तक पहुचना है। क्या हसी-मजाक, खेल-कूद पूरी सचाई के साथ नहीं हो सकते ? मन को पूरा आह्लाद देने लायक ऊचे दर्जे का विनोद ठीक सचाई के साथ हो सकता है और वह हमारी सभ्यता और सुसंस्कृति की निशानी है। परन्तु किसी को ठगना नही है, इस बहाने हम असत्य आचरण में दोष नही समझते।

बच्चो के साथ तो हम कितना ही असत्य-व्यवहार करते रहते

हैं। एक प्रकार से हम खुद ही उनको असत्य सिखाते हैं। कभी-कभी बच्चा किसी चीज या बात का आग्रह कर लेता है। अगर उसे वह चीज न देनी हो या उसकी चाही बात न करनी हो तो हम साफ-साफ कह सकते है कि ऐसा नही होगा। थोडे ही समय मे उसका आग्रह शात हो जायगा। आग्रह नही निभता है यह देखकर धीरे-धीरे उसका आग्रह करने का स्वभाव भी छूट जायगा या मद पडेगा, परतु अक्सर हम उसकी बात टालने के लिए, आगे कभी करेंगे आदि कहकर कोई बहाना बता देते है। कुछ समय तक बालक हमारी बात पर भरोसा करता है, क्योंकि उसका हम पर विश्वास होता है, परन्तु धीरे-धीरे बालक देखता है कि उसको दिये हुए वचनो का पालन नही होता है, फिर वह हमारी बात पर विश्वास करना छोडकर ज्यादा आग्रह करने लगता है, साथ-साथ यह भी सीख लेता है कि जब बुजुर्ग झूठी बात कहकर बहाना कर सकते है, तो मैं भी वैसा क्यो न करू ?

मुझे तो यहा तक लगता है कि अगर हम इतना-सा निश्चय कर लें कि कम-से-कम बिना कारण तो असत्य-व्यवहार नही करेंगे तो हम जितना भी असत्य-व्यवहार करते हैं, उसका ५० प्रतिशत अश अपने-आप घट जायेगा और इसी वृत्ति के कारण, सकारण असत्य की भी मात्रा कम-से-कम रह जायगी। पर यह तब होगा जब हममें सत्य-निष्ठा हो।

बालक बडा होने पर स्कूल-कॉलेज में पढने के लिए जाता है। ये सस्थाए तो सरस्वती के मन्दिर है, उनमें अशुद्ध-व्यवहार के लिए स्थान कहा ? वहा कोई सासारिक व्यवहार नही चलता, केवल परमार्थ की बात है। फिर भी ऐसी बात तो नही है कि वहा गडबडी चलती ही नही। परीक्षाए पास करने की दौड में कई लोग अनेक बेजा उपायो का अवलम्ब लेते है। गैर-हाजिरी के चाहे जैसे कारण बताए जा सकते है। जहा अमुक दिन की उपस्थिति लाजिमी है, वहा कभी-

कभी विना उपस्थित रहे भी दूसरो के द्वारा हाजिरी लग सकती है। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध व्यावहारिक-सा हो गया है, आध्यात्मिक तो शायद ही पाया जायगा। जहा छात्रो को प्रवेश देने की सख्या मर्यादित होती है, वहा किसको प्रवेश मिले और किसको नही, यह एक जटिल समस्या वन जाती है।

सरकारी विद्यालयो के अलावा कई खानगी विद्यालय भी चलते है, जिन्हे सरकार आर्थिक मदद देती है। इन विद्यालयो के सचालक अपना काम समाज में विद्या-प्रसार के हेतु सार्वजनिक सेवा समझकर करते है। शायद कीर्ति के अलावा उनका निजी कोई स्वार्थ नही होता। वे खुद समय देते है, आर्थिक मदद करते है और दूसरो से भी मदद प्राप्त करने का कष्ट उठाते है। पर इस परोपकार के काम में भी अशुद्धि टलती नही। सरकारी मदद देने के कुछ नियम होते है। फिर भी इस वात पर जोर नही रहता कि नियमो के अनुसार ही न्याय्य हिस्सा प्राप्त करने की कोशिश हो। कई वार हिसाब इसलिए गलत रखे जाते है कि अधिक-से-अधिक ग्राट मिले। सरकार भी इससे अनजान नही होती। वेजा ग्राट न जावे इसलिए वह भी नाना-प्रकार के कडे नियम वनाती है। पर उनसे भी वचने का कोई-न-कोई रास्ता निकाल लिया जाता है। इन सस्थाओ के सचालक वडे प्रतिष्ठित और सस्थाओ की दृष्टि से नि स्वार्थी होते है। तव इनमें दोप मानने का साहस कौन करे ?

आजकल कालेजो में विद्यार्थियो के सघ वनने लगे है। उनमें चुनाव-पद्धति दाखिल की गई है, अर्थात् दूसरे चुनाव मे जो दोप है, वे विद्यार्थियो के जीवन में भी प्रवेश पा लेते है। किसी प्रकार चुनाव मे जीतना, दल-बन्दी में फसना, अधिकार के सदुपयोग या दुरुपयोग का ख्याल न रखना, अपना पद कायम रखने के लिए तिकडम-रचना आदि दोप दाखिल होते है। हम सोच सकते है कि विद्यार्थी-दशा में ही ये वातें सीख लेने पर आगे चलकर इसका कितना अनिष्ट

परिणाम हो सकता है। परन्तु किया भी क्या जाय ? जो कुछ समाज मे चलता है, उमसे विद्यार्थी कैसे वच सकता है ?

जनतत्र की राज्य-पद्धति मे वक्तृत्व की आवश्यकता है। कुछ वर्षों पहले उसे उत्तेजन देने के लिए विद्यार्थियो के भाषण कराकर उनको इनाम बाटे जाते थे। आजकल 'डिबेट' यानी वाद-विवाद की पद्धति शुरू हुई है। कोई एक विषय मुकर्रर किया जाकर कुछ विद्यार्थी उसके पक्ष में और कुछ विपक्ष में बोलते है। यह डिबेट की पद्धति विद्यार्थियो के सिवा दूसरे क्षेत्रो में भी चलती है। ऐसे अनेक विषय सोचे जा सकते है, जिनमें सचमुच में पक्ष और विपक्ष, अर्थात मतभेद हो, और जिसका जो सच्चा मत हो, उसीके अनुसार वक्ता समर्थन या विरोध करें। परन्तु विषय विवादास्पद है या नहीं, इसकी परवाह न कर कोई भी विषय रख दिया जाता है और वक्ताओ के निजी मत का भी ख्याल न कर कुछ को पक्ष में, कुछ को विपक्ष में बोलने को कह दिया जाता है। कुछ वक्ता तो अपना भाषण यह कहकर ही शुरू करते है कि मेरा निजी मत तो भिन्न ही है, परन्तु चूंकि मुझे एक पक्ष में बोलना है, इसलिए उसीका समर्थन करता हू, और जब वक्तृत्व 'कला का प्रदर्शन करना है तो उसके समर्थन में गलत दलीलें देकर भी अपनी कला जोरो से प्रकट करनी पडती है। प्राय सभी डिबेटो में बडे-बडे प्रतिष्ठित लोग भी ऐसा करते है। कौन किसको दोष दे ? इसमें सूक्ष्म असत्य है या नही, इसमें भी शका हो सकती है। प्राय यह प्रणाली पार्लमेंटरी-पद्धति के काम-काज के अनुरूप गुण का विकास करने के लिए अपनाई गई दीखती है, या अभी जो पार्लमेंटरी तरीका चल रहा है, उसका अनुकरण है।

विधान-सभाओ का काम बहुत गभीर है, वहा जो कुछ होता है उसका असर करोडो लोगो के जीवन पर पडता है। विधान सभा में दो पक्ष रहते है, एक सरकारी और दूसरा विरोधी। वहा जो कुछ

होता है, उस पर से कभी-कभी ऐसा लगता है कि विरोधी पक्ष ऐसा मानता दीखता है कि अगर विरोध न हो तो वैसे पक्ष का अस्तित्व ही बेकार है। ऐसा कुछ मान लिया गया दीखता है कि सरकारी योजना का, चाहे वह भली हो या बुरी, विरोध न करना उचित नही है। ऐसी दशा में बहस में ऐसी अनेक बातें कही जाती है, जिनका विवेक की दृष्टि से या सचाई की दृष्टि से समर्थन नही किया जा सकता। दूसरी ओर कभी-कभी सरकार भी अपनी प्रतिष्ठा में अड कर विरोधी पक्ष को उसी तरह का जवाब देती है। प्रत्यक्ष मत देने में तो पक्ष का सदस्य बधा ही रहता है। उसके खुद के विवेक के या सच्चे मत के लिए स्थान नही। यह सब ठीक होता है या नही, इसका यहा जिक्र करने की जरूरत नही है। सूक्ष्म असत्य अपना क्रिया-काड किस तरह रचता है, इसका खुलासा करने की दृष्टि से इस बात का उल्लेख करना पडा। बडी गभीर बात है, देश की अत्युच्च सस्था में, बहस के लिए ही क्यो न हो, सत्य का अपलाप होता है। यह बडी खतरनाक बात है। चुनावो में क्या होता है, इसके बारे में तो लिखना ही व्यर्थ है। वहा कुछ अपवाद छोड दें तो सत्य, विवेक और न्याय-नीति के लिए स्थान नही। आत्म-प्रशसा और पर-निंदा, जो सामान्यनीति में बडे दोष माने जाते है, उनका वहां अतिरेक होता है। समाज की नीतिमत्ता गिराने में ये पद्धतिया कितने बडे साधन बनती होगी!

कि नौकरी या काम-काज केवल गुण के भरोसे मिलने के प्रसग बहुत कम आते है। प्राय सिफारिशो का ही प्रभाव पडता है। सिफारिश करनेवाले या प्रमाण-पत्र देनेवाले और उनका विचार करनेवाले दोनो पर बडी जिम्मेदारी होती है। जो वैसे प्रमाण-पत्र या सिफारिश-पत्र प्राप्त नही कर सकते, वे गुणी होते हुए भी उनकी कद्र नही होती। मनुष्य में गुण-दोप दोनो रहते है। परतु प्रमाणपत्र में कही दोप लिखे नहीं पाये जायगे। सम्भव है कि प्रमाणपत्र में अगर काफी गुणो का वर्णन हो, साथ में थोडे दोप का भी उल्लेख हो तो शायद उतना-सा उल्लेख व्यक्ति के गुणो पर पानी फेर दे, इस भय से भी दोप का उल्लेख करना खतरनाक होता है। स्वय सिफारिश में कुछ दोष है ही, क्योकि जिस अधिकारी को निर्णय करना पडता है, उसके सामने अनेक उम्मीदवार रहते है। गुण देख कर न्याय करना उसका धर्म है। अगर वह सिफारिश से प्रभावित होता है तो किसी-न-किसी दूसरे के प्रति अन्याय होता है। कुछ तो खुद के परिचय के बिना ही केवल मित्रो के कहने से या उम्मीदवार की याचना पर प्रमाण-पत्र या सिफारिशपत्र दे देते है। वे शायद सोचते होगे कि उम्मीदवार कोई पैसा-टका तो मागता नही, केवल दो शब्द ही चाहता है। लिख देने में कजूसी क्यो की जाय ? अथवा केवल अपने शब्द मात्र से किसी का भला होता हो तो क्यो न होने दिया जाय ? प्रमाण-पत्रो और सिफारिश-पत्रो के बारे में इस प्रकार शिथिलता होने के कारण उनका महत्व ही घट गया है ?

आलस के कारण भी सत्य का अपलाप कम नही होता। जो काम जिस समय करना चाहिए, उसे उस समय न करने से बाद में उसके बारे में सयोग बदल जाते है। बदली हुई परिस्थिति में वह बात ठीक बैठती तो नही, पर बैठानी पडती है। अभी कोई काम अधूरा रह जाय तो बाधा नही, आगे चलकर पूरा कर लेंगे, इस आशा से हम असावधान रह जाते है। बाद में जब झूठ किये बिना वह पार नही

पडता, तब विना कारण और लाचारी से झूठ कर लेते है और यह समझ कर सतोप मान लेते है कि इसमें हमने सचमुच किसी को ठगा नही या किसी को हानि नही पहुँचे। जो असत्य करना पडा वह तो नाम-मात्र का था। एक उदाहरण से हम इसे स्पष्ट करते है।

दस्तावेजो पर गवाहो की साक्षी करानी पडती है। कभी-कभी दस्तावेज पर लिख देनेवाले के हस्ताक्षर हो जाते है। पहले साक्षीदारो का स्मरण नही रहता। दस्तावेज का काम पूरा होने पर फिर किन्ही दो व्यक्तियो को लाने का प्रयत्न किया जाता है। मिल जाते है तब तो उनकी साक्षी करा ली जाती है और साक्षी भी विना जाच-पडताल किये सबकुछ ठीक हो गया होगा, मानकर अपने हस्ताक्षर कर देते है। कभी समय पर साक्षी के लिए ठीक व्यक्ति नही मिलते है तो बाद में लिख देनेवाले की गैरहाजिरी में भी किन्ही से साक्षी करवाली जाती है। कई मामले आपस में निपट जाते है और दस्तावेज विना साक्षी के भी पडे रहते है। परन्तु जब कभी अदालत में जाने का मौका आता है, उस पर साक्षी करवाने की ज़रूरत हो ही जाती है। तब उस समय किसी को भीट में डालकर साक्षी करवानी पडती है। कुछ भाई ऐसे मिल जाते है, जो यह समझकर कि किसी तरह का छल-कपट नही है, साक्षी कर देते है। आगे चलकर जब अदालत में गवाह-देने का मौका आता है तब वह "ईमानदारी से सच कहूगा" ऐसा हलफ करके साफ झूठ बोल देता है कि लिखनेवाले ने दस्तावेज मेरे सामने पढ कर समझ-बूझकर उस पर हस्ताक्षर किये। अभी नही तो आगे चलकर इस प्रकार काम पूरा कर लेने में बाधा नही है, अर्थात् उसमें कोई सचमुच में असत्य नही है, ऐसा समझने से यह गडबडी होती है। इसमें आलस्य के साथ यह भी एक दोप है कि इस प्रकार के असत्य को हम बुरा नही मानते। अदालतो के बारे में अब यह आम ख्याल हो गया है कि वहा झूठ व्यवहार करने में कोई दोप नही है। इतना ही नही, अदालती व्यवहार का असत्य तो एक आ ही मान

लिया गया है।

अशुद्धि का बड़ा क्षेत्र व्यावसायिक व्यवहार है। उसमें भी हानि-लाभ की बात छोड़कर दूसरी अनेक बातें ऐसी हैं, जिनमें बिना कारण या केवल मोह-वश असत्य किया जाता है। हम अपनी होशियारी से चालाकी करते हैं, परन्तु दूसरे पक्षवाला भी हमारी चालाकी नही पहचान सकता, ऐसी बात नही है। फिर भी हम बुरी आदत नहीं छोडते। अपने माल की झूठी तारीफ करना तो क्षम्य ही माना जाता है। कम-ज्यादा मोल-तोल बताना मामूली बात हो गई है। ग्राहक से भाव तय करने की झझट मे कितना समय बरबाद होता है, इसका कोई हिसाब नही। अनुभव तो यह है कि जहा बिक्री-दर निश्चित रहते हैं, जहा कमी-बेशी नही होती, वहा खरीददार का विश्वास अधिक बढता है। ऐसा न होने की दशा में दूकानदार और ग्राहक दोनो एक-दूसरे को ठगने की कोशिश करते रहते हैं। दिन-दहाडे दूकान के सामने परदे डालकर कृत्रिम अधेरा बनाकर, अदर बिजली की रोशनी इसलिए की जाती है कि चीजो का रग-रूप अधिक आकर्षक दिखाई दे। चीज की वास्तविक उपयुक्तता न बढाते हुए केवल दिखावे के लिए उसपर कुछ खर्चीली प्रक्रियाए करके ग्राहक को ठगने की दृष्टि से उसे आकर्षक बनाने का प्रयत्न होता रहता है। झूठी विज्ञापनबाजी तो प्रसिद्ध ही है। अब तो उसे एक बडी कला का रूप मिल गया है। वाणिज्य के विद्यार्थियो को वह बाकायदा सिखाया भी जाता है। जो बात वास्तव में अशुद्ध है, उसे सुन्दर नाम देकर उसका एक बडा भारी विज्ञान खडा कर लिया जाता है और चूंकि आम तौर से बडे-बडे लोग भी उनका आश्रय लेते हैं, इसलिए उसमें दोष भी नही माना जाता।

अशुद्ध व्यवहार का एक बडा भारी अड्डा 'टैक्स' है। सरकारी टैक्स हो या स्थानीय स्वायत्त सस्थाओ का, सर्वसाधारण ख्याल कुछ ऐसा ही दीखता है कि टैक्स देना टालने मे अनीति नही है। इतना ही नही, बल्कि वह कुशलता और चतुराई की बात है। इन्कमटैक्स जैसे बडे

टैक्सो की बात छोड भी दे, क्योकि उनमें बडे हानि-लाभ का प्रश्न रहता है, तो भी छोटे-छोटे टैक्सो के बारे में भी हमारी वृत्ति प्राय टैक्स देना टालने की ही होती है। ऐसे बहुत थोडे मिलेंगे जो अगर पकडे न जाय तो स्वय जाकर टैक्स चुका दे। इसलिए जगह-जगह टैक्स-वसूली के लिए चौकी रखनी पडती है। फिर भी चौकी कबतक कामयाब हो सकती है? टैक्स की चोरी बहुत-कुछ होती ही रहती है। अगर टैक्स अन्याय का है तो उसके खिलाफ खुल्लमखुल्ला लडना चाहिए, अन्यथा राज्य की या स्थानिक स्वायत्त-सस्थाओ की ओर से चलनेवाली सुविधाओ का लाभ उठाते हुए टैक्स देना टालने में ईमानदारी कैसे? म्युनिसिपल कमेटी के चुगी जैसे टैक्स प्राय छोटे पैमाने के होते है। व्यक्तिगत रूप से बहुतो को कुछ आने मात्र ही देने पडते है परन्तु हमारी इच्छा यही रहती है कि उतना-सा पैसा भी बच जाय।

प्लेटफॉर्म का टिकट पहले एक आना था, अब दो आने लगते है। श्रीमान लोग भी उतना-सा पैसा बचाने में सकोच नही करते। बहुत-सी प्रदर्शिनिया, खेल आदि की टिकटें आने-दो-आने की रहती है। परन्तु हमारे युवक लोग, कही-कही विद्यार्थी भी बिना टिकट देखने की कुछ-न-कुछ हिकमत लडाते रहते है। यो तो व्यसनो में हम कितना ही पैसा खर्च करते रहते है, परन्तु ऐसी छोटी-छोटी बातो में असत्य करने में नही हिचकिचाते। यह मानना ठीक नही होगा कि ऐसे दोष गरीब लोग ही करते है। बेचारे गरीब तो भय के कारण दोष करने की हिम्मत ही कम करते है। बडे लोग कुछ निडर होते है। रेल्वे का एक नियम है कि बालक तीन वर्ष का हो जाने पर उसके लिए आधी टिकट और बारह वर्ष का हो जाने पर पूरी टिकट लेनी चाहिए। बालक के पालक को तो मालूम रहता ही है कि उसकी ठीक उम्र क्या है। परन्तु ऐसे कितने लोग होगे कि जो तीसरा या बारहवा वर्ष पूरा होते ही दूसरे रोज से नियम के अनुसार टिकट लेते है?

कुछ ऐसी अशुद्धिया होती है, जिनमें तुरन्त कोई कपट नही

दिखाई देता, परन्तु आगे चलकर कपट करने में मदद कर सकती है। एक वकील साहब ने किसी दूसरे का मकान तीस रुपये मासिक किराए पर लिया था। मालिक को रसीद पचास रुपये की दी जानी थी और बीस रुपये कानूनी मशविरे के नाम पर कम कर दिये जाते थे। यह युक्ति इसलिए की गई थी कि आगे चलकर अगर किसी दूसरे को मकान किराये से देना पडे तो मालूम पडे कि मकान ज्यादा किराये का है। दैवयोग से उनमें झगडा हो गया और मामला अदालत तक पहुच गया। मालिक ने बकाया किराया पचास रुपये माहवार के हिसाब से मागा। अदालत ने फैसला दिया कि वकील साहब का बचाव ठीक है, वह एक (निष्कपट धोखा) (Innocent fraud) था।

अखबार वाले अपनी 'डॉक-सस्करण' पर दो-एक रोज बाद की तारीख डालते है। ऐसे अखबार कई बार अखबार की तारीख के एक रोज पहले ही पाठक के हाथ में पहुच जाते है। एक साप्ताहिक अखबार मेरे हाथ उसपर लिखी हुई तारीख के चार रोज पहले ही पड गया। एकाध तारीख का फर्क तो प्राय सभी अखबारवाले रखते है। इसमें दोष देखने की हिम्मत किसे हो सकती है ? यह सूक्ष्म असत्य है या नही, दोष है या नही, यह एक प्रश्न है। लेकिन अनुभव कई बार यह आया कि प्रवासी ने उस रोज की तारीख देखकर अखबार खरीदा और अगले दिन की ही खबर, जो उसने पहले ही दूसरे अखबार में पढ ली थी, पढकर उसे पछताना पडा।

धर्म के नाम पर भी अशुद्धि कम नही चल रही है। धर्म का धधा करनेवालो की बात छोड दें। उनमें दूसरे व्यावहारिक धधेवालो से अशुद्धि कम नही है। दुख की बात यह है कि वह सब ईश्वर के नाम पर किया जाता है और भोले लोग खुद विवेक न रखकर अपनी खुशी से ठगाई के शिकार बनते है। तीर्थ-स्थानो में एक ही बछिया की पूछ पर अनेक लोग पानी छोड-छोडकर सवा-सवा रुपये में गोदान का पुण्य मिल जाने की आशा और विश्वास रखते है।

५

भ्रष्टाचार रोकने के कुछ सुझाव

पहले अध्याय में लिखा गया है कि जब वर्धा में शुद्ध-व्यवहार-समिति का काम चलता था तब बाहर से अनेक पत्र सलाह और मार्ग-दर्शन के लिए आते थे। उनमें से जो आम जनता के काम के होते थे, उनके अंश तथा उनपर दिये गए उत्तर तथा जो विचार सूझते थे, वे 'हरिजन' में प्रकाशित किये जाते थे। उनमें से कुछ लेख मैं लिखता था और कुछ श्री किशोरलालभाई मशरूवाला। इस अध्याय में उस पत्र-व्यवहार तथा उन लेखोंमें से कुछ अंश उद्धृत किये गए हैं। उस समय परिस्थिति कुछ भिन्न थी और लेख भी सामयिक थे, तथापि आज की दशा में और आगे भी उनके उपयोग की सम्भावना है। इन स्फुट लेखों और विषयों की विविधता के कारण, विषय के विवेचन में ठीक सिलसिला नहीं दीखेगा, समय की भिन्नता के कारण कुछ बातें शायद अनुपयुक्त भी दीखें, फिर भी पाठक उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे तो उनका उपयोग वैसे ही दूसरे मामलों में अथवा परिस्थिति में जरूर हो सकेगा और जिज्ञासु को मार्गदर्शन मिलेगा। पत्रों और लेखों में जीवन-शुद्धि सम्बन्धी जो तथ्य और सत्य है उसका मूल्य शाश्वत है और इसीलिए, हमारा खयाल है कि विवेकपूर्वक उनको प्रसंगों के अनुरूप स्वीकार करने में देश, काल की परिस्थिति बाधक या प्रतिकूल नहीं होगी।

अधिक भाव मे गुड खरीदना पडता था, तब वे उनको कम भाव मे कैसे बेच सकते थे ? अन्त में इन भाई ने अपने जिले के कलक्टर को और उच्च अधिकारियो को भी लिखा कि अगर मुझे पन्द्रह दिनो में नियन्त्रित भाव मे गुड मिलने का प्रबन्ध नही कर दिया जायगा तो अधिक भाव मे बाजार मे गुड खरीदा करूगा और उसकी सूचना सरकार को दे दूंगा। अपने लिए आवश्यक गुड की मात्रा भी लिख दी। साथ में यह भी लिख दिया कि जिस व्यापारी से अधिक दर मे गुड खरीदा जायगा, उसका नाम उसकी इजाजत के बिना नही बताया जायगा। परिणाम यह हुआ कि कलक्टर साहब ने उनको बता दिया कि अमुक जगह से उनको नियन्त्रित भाव मे गुड मिल जायगा। पाठक देखेंगे कि इन भाई ने व्यापारी के बजाय सारी जोखिम अपने सिर पर ओढ ली। हमें सोच-विचार कर ऐसे ही कुछ रास्ते ढूंढते रहना चाहिए, जिससे आज की विषम परिस्थिति में हम अपना निर्वाह निर्दोष रूप से चला सकें।

शुद्ध व्यवहार आदोलन के सिलसिले में एक भाई ने लिखा, "इस वक्त हमारे यहा चार छटाक का राशन मिल रहा है। मेरे कुटुब में चार व्यक्ति है। मै निम्न श्रेणी का व्यक्ति हू। कुटुम्ब सिर्फ अनाज के ही सहारे जीता है, ऐसी सूरत में अनाज भी बराबर न खाया जाय, तो कुटुम्ब में काम करने की ताकत नही रह पावेगी। अगर अनाज आज के समान सट्टी मात्रा में खाय तो छिपकर इधर-उधर से वह भी बडी दिक्कतो के साथ खरीदना पडता है। बडा ही धर्म-सकट है। शर्म आती है, पर क्या करू ? मजदूरी करनेवालो को बहुत ज्यादा खुराक की जरूरत है, जब कि उन्हे छ छटाक ही राशन मिलता है। मजबूरन उन्हे इधर-उधर से भारी-भारी कीमतें चुका कर पेट भरने के लिए अनाज लाना पडता है। कृपया सुझाइए कि इस बारे में क्या किया जाय ?"

और भी अनेक भाई ऐसा ही लिखते है। सवाल यह है कि यह

कम पड़नेवाला अनाज सब लोग खरीदें तो वह कहां से मिलेगा ? अगर जरूरत का पूरा अनाज देश में है तो उसकी कमी नहीं रहेगी। कुछ समय तक लोग उसे संग्रह करके रखेंगे, पर अन्त में वह बाहर आवेगा ही। ज्यादा समय रख छोड़ने से अनाज बिगड़ता है। इधर कई वर्षों से अनाज की कमी रही है। अगर अबतक कुछ संग्रह रखा गया हो तो वह बाहर आ जाना चाहिए था। पर वैसा कुछ हुआ दीखता नहीं। सारी दिक्कतों का कारण तो यही हो सकता है कि अनाज की कमी है। इस हालत में अगर कुछ लोग पैसे के या अन्य बल से अधिक अनाज लेने की कोशिश करते हैं, तो दूसरों को मुकर्रर राशन से भी कम चीज मिलती है। यह मानना होगा कि जितना अनाज हो उसे सबको बराबर बांट कर लेना ही न्यायनीति है। इसलिए अभी जो संकट है उसमें कुछ व्यक्ति किसी तरह खुद ही मुक्त होने की कोशिश करते रहेंगे तो काम नहीं चलेगा। हम सबको पुरुषार्थ करके ही कुछ रास्ता निकालना होगा। दालों और तिलहन पर नियन्त्रण नहीं है, इसलिए अनाज के राशन के अलावा इन चीजों का ज्यादा उपयोग करना होगा। जो चीज मिलती है, उसमें से जरा-सा भी अंश बेकार न जाने देकर उसका पूरा-पूरा उपयोग करना होगा। आलू, शकरकंद आदि कई चीजें हैं जो शरीर को पोषण देती हैं।

म सभी के लिए कष्ट भोगने के अलावा दूसरा मार्ग ही क्या हो सकता है ?

इस पर श्रीकिशोरलालभाई ने ये और सुझाव दिये

"आरोग्य-शास्त्र के जानकारो की यह साधारण राय है कि हम यदि नीचे लिखी आदतें डाल लें, तो खुराक से बहुत ज्यादा कम निकाल सकते है और थोडी मात्रा से पूरा पोषण प्राप्त कर सकते है

"१ बहुत मोटी रोटी न बनाना, न बहुत पतली। २ रोटी के बहुत मोटे कौर न भरना। ३ उसे दाल या पतली भाजी आदि में भिगो कर न खाना, सूखी ही खाना। ४ उसे इतना चबा-चबा कर खाना कि गले से उतारने के पहले ही वह पतली रबडी-जैसी हो जाय। (इसके मानी यह नही कि रोटी के बदले रबडी ही खाना। मुह की लार में चबाकर बनी हुई रबडी और आटे को पानी में उबालकर बनाई हुई रबडी में आरोग्य की दृष्टि से बहुत अन्तर है।) ५ आटे से चोकर न निकालना। ६ पॉलिश किया हुआ चावल न खाना। ७ चावल का पानी उसी में रख छोडना, बल्कि इतना पानी ही न डालना जिससे वह निकालना पडे। यदि यह शुरू मे न सधे और पानी ज्यादा पडने से निकालना ही पडे, तो वह पानी कभी फेंका न जाय। चावल का बहुत-सा सत्व उसी में आ जाता है। इसलिए उसकी पेज करके पी जाना या दाल, साग आदि में उसे डाल देना चाहिए। ८ चावल भी मुह में डालकर गले से उतारने की चीज नही है। वह भी अच्छी तरह मुह में पतला हो जाय, तबतक उसे चबाते रहना चाहिए। आरोग्य-शास्त्री बताते है कि इस तरह खुराक का पूरा कस निकालने से ९ औंस खुराक जल्दी खाई हुई १४ औंस खुराक से ज्याद शक्ति दे सकती है।"

राजस्थान से एक भाई ने लिखा

"खनिज पदार्थों का काम करनेवालो के लिए यह नियम है कि पहले १०० रुपये फीस भर कर वे सरकार से सर्टिफिकेट ऑव अप्रूवल

(सम्मति-पत्र) हासिल करें। यह सम्मति-पत्र देने से पहले कुछ खाना-पूरी करनी पडती है। उसमें एक चीज यह भी है कि आर्थिक स्थिति के लिए बैंक से पूछताछ करते हैं और बैंकवाले, जिनका खाता होता है, उनके लिए लिख भी देते है। कानून की दृष्टि से इतना ही काफी होता है, पर सबकुछ सरकारी कर्मचारियो पर निर्भर है। असिस्टेंट डाइरेक्टर ऑव माइन्स के यहा भेजा जाता है, जहा महीनो लग जाते है और फिर वहा से मन्त्री के दफ्तर में वह जाता है। इस तरह उस कागज को पहली सीढी से आखिरी सीढी तक निकलवाने में महीनो गुजर जाते हैं और कर्मचारियो को कुछ दिये-लिए बिना काम निकालना असभव-सा होता है। प्रॉस्पेक्टिंग लाइसेन्स पाने के लिए भी काफी समय लग जाता है।

"सबसे बडी दिक्कत इस काम में सरकारी कर्मचारियो की है, जो कागज को दबाकर रख देते है। अत काम करनेवालो को कुछ देना ही पडता है, अन्यथा काम नही होता।

"मेरी स्वय की इस काम में काफी दिलचस्पी होने से मैंने यह जिम्मेदारी उठाई, पर लगातार आठ महीने के अनुभव से जो चीज मिली, वह यही कि बिना किसी को कुछ दिये-लिये काम निकालना असभव है। ६ महीने तक का वक्त तो कानून से काम निकलवाने की सनक में बरबाद कर देना पडा। हजारो रुपये खर्च हुए। रमाई गई, मजदूरो की रोजी भी गई। आखिर जाकर कारकुनो से मिलकर कागज निकलवाने पडे, जो अकारण ही रुके पडे थे। मैं आपको बताऊ कि यदि यही रास्ता मैं ६ महीने पहले अख्तियार करता तो मेरे साथ के जो काम करनेवाले हैं, वे कम-से-कम दो लाख रुपये कमाते, हजारो रुपये मजदूरो को मजदूरी के रूप में बटते, सरकार को रॉयल्टी के रूप में पैसा मिलता और राष्ट्र को डालर की प्राप्ति होती। वास्तविकता यह है कि मेरे कागजो में कोई ऐसी कमी नही थी, जिसको इस तरह का ढग अपनाकर दूर करने की आवश्यकता पडे। मैंने इसमें

न तो कोई वेजा फायदा उठाया और न कोई गैरकानूनी चीज हुई—सिवा इसके कि जो कागज अकारण ही रुके पडे थे वे जल्दी निकल गए।

"मै स्वय महसूस करता हू कि इस तरह का ढग अपनाकर काम निकलवाना अनीति-पूर्ण है। पर क्या थोडी सहूलियत पाने के लिए किसी को कुछ दिये वगैर काम नही चले तो कानून भग किये विना कुछ देकर काम जल्दी कराना, जिससे व्यक्ति, समाज व राष्ट्र सभी का हित हो, इष्ट नही हो सकता ?

"यह कोई ऐसा काम नही था, जिसे अन्न या वस्त्र की तरह चोर-बाजार में ले जाना पडे। जनता के प्रति गैर-जिम्मेदारी का तो प्रश्न ही नही, तो फिर ऐसे मामलो में इसी तरह पैसा दे कर काम निकलवाने को रिश्वत के वजाय दूसरा नाम क्यो नही दिया जाय ?

"मुझे तो ऐसा लगता है कि जो मामले साफ है, जिनमें चोरी, धोखाधडी या राष्ट्र के प्रति गद्दारी जैसी कोई चीज नही है और जो स्वार्थ के साथ परमार्थ भी अच्छे ढग से साधते है, ऐसे कामो को जल्दी करवाने का और कोई चारा न हो तो क्या ढग अपनाया जाय, यह साफ होना चाहिए। अफसर लोग कोई सुनवाई नही करते, उलटे, अफसरो से काम ही विगडता है। पक्षपात का बोलवाला है।"

यह लवा उद्धरण इसलिए दिया गया है कि लेखक का विचार जोरदार शब्दो में पाठको के सामने आवे। यह सवाल व्यवहार के वहुत से क्षेत्रो में खडा होता है। विशेषत सरकारी काम-काज, रेलवे आदि में। जिनका अदालतो के काम से परिचय है, वे जानते है कि वहा के कारकुनो द्वारा गरीव देहाती कितने लूटे जाते है। इस दशा में थोडा सा कुछ ले-देकर अपना काम निकाल लेने के आसान मार्ग का सहारा लेना लोग वेहतर मान लेते है, नही तो समय और शक्ति वरवाद होती है और पैसे की भी हानि उठानी पडती है।

पर लेखक ने तो यह प्रश्न खडा किया है कि जहा अपना वेजा

स्वार्थ साधने की बात नही है, केवल हक की बात करा लेनी है, वहा कुछ दे देवे तो उसे रिश्वत क्यो कहे और अनीति क्यो समझें ?

इसमें साधन-शुद्धि का प्रश्न है। एक विचारधारा ऐसी है कि अगर हमारा उद्देश्य शुद्ध है तो किसी भी साधन से हम उसे सफल क्यो न करें ? आखिर हमारा प्रयास समाज की भलाई के ही लिए तो है न ? वे इसे व्यावहारिक सत्य और सयानापन मानते है। गाधीजी ने साधन-शुद्धि के बारे मे काफी लिखा है। यहा अधिक लिखने की जरूरत नही है। जिनको तत्त्व के मूल तक पहुचना है, उन्हे बिला शक समझ लेना चाहिए कि अत में बुराई का फल भला नही हो सकता, कुछ तात्कालिक लाभ भले ही दीख पडे। व्यक्तियो द्वारा ऐसे अशुद्ध साधनो का प्रयोग होते रहने से ही सामुदायिक अशुद्धता बढती है।

देनेवाले की दृष्टि से ऐसा पैसा देने को रिश्वत न मानें तो भी लेनेवाले की दृष्टि से वह रिश्वत के सिवा और क्या है ? कर्मचारी का कर्त्तव्य है कि वह ऐसा काम समय पर दक्षता से कर दे, जिसके लिए वह वेतन पाता है। अगर उसमें वह इस तरह ज्यादा पैसा लेने की इच्छा रखता है तो अपने पद का वह बेजा फायदा उठाता है। ऐसा पैसा लेते रहने से रिश्वत लेने की आदत बढती है और कर्मचारी के काम में टील-टाल होती है। वह समझ लेता है कि अगर मैं काम करने में देर करूगा तो कुछ-न-कुछ अवश्य मिल जायगा, और यह प्रथा ही बन जाती है कि काम में टील करें। जिनका उनसे काम पडता है, वे भी सोच लेते है कि आखिर कुछ दिये बिना तो काम निपटेगा नही, फिर बिना राह देखे पहले से ही कुछ दक्षिणा क्यो न दे दी जाय, ताकि काम जल्दी बन जाय और आर्थिक हानि न हो। इस प्रकार यह मान्य रूढि बन जाती है जो बहुतो को अखरती नही और जिसे दुरुस्त करने की अधिकारियो को भी सख्त जरूरत नही दीखती। जिनके सामने केवल व्यक्तिगत स्वार्थ का प्रश्न है, उनके लिए भी यह बात दोषास्पद है। पर जो देश का यह कलक दूर करना चाहते है उनका तो फर्ज ही है

कि वे कष्ट उठा कर और त्याग करके ऐसे दोपो को हटावें, न कि नीति के गलत अर्थ को अपना कर अपना काम निकाल लें तथा गलत दलीलो से अपनी गलती का समर्थन करने का प्रयास करें।

सब सरकारो को इस दोप की ओर गहरा ध्यान देना चाहिए। यह रोग बहुत फैला हुआ है, इससे सरकारो की वडी बदनामी होती है और समाज में अनाचार फैलता है। अगर अधिकारी लोग इस ओर ध्यान देवें, तो यह दोप काफी कम हो सकता है। बहुत कर के अधिकारी लोग ऐसे दोपो की तरफ से आख मीच लेते है। अगर शिकायत होने पर दोष दीख पडे और कर्मचारी को योग्य सजा दी जाय तो उसका दूसरो पर अच्छा असर होता है। मुझे कुछ ऐसे अधिकारी मालूम है, जिनके द्वारा शुद्धि का प्रयत्न होने पर ऐसी रिश्वत बहुत घट गई थी। खुद अधिकारी को चाहिए कि वह विना शिकायत हुए भी इस विषय में सजग रहे। अगर उसके मातहतो को उसके रुख का पता चल जाय, तो वे खुद ही ऐसी रिश्वत लेने की हिम्मत नही करेंगे।

लेखक ने जो मामला पेश किया है उसमें, और ऐसे ही अन्य मामलो में एक कारगर उपाय यह है कि एक ऐसा नियम वना कर, शायद नियम तो होगा भी, उसका अमल सख्ती से किया जाना चाहिए कि जो दरख्वास्त आवे, उसकी पेशी की तारीख विना अपवाद मुकर्रर कर ही दी जाय। अगर पहली पेशी में काम न निपटे, तो दूसरी, तीसरी—इस प्रकार उसका निर्णय होने तक पेशीकी तारीख वरावर दी जाती रहे और उस रोज मामला अधिकारी के सामने अवश्य रखा जाय, जैसा कि दीवानी मुकदमो में किया जाता है।

व्यवहार में शुद्धि रखने के प्रयत्न में आनेवाली अनेक दिक्कतो के वयानो से, जो दफ्तर में लगातार आ रहे है, पता चलता है कि परिस्थिति वडी विपम है और सचमुच दिक्कतें भी बहुत बडी है। फिर भी दिक्कतो के वारे में एक वात ध्यान में ला देना जरूरी है। दिक्कतें है,

पर हमारी ऐसी कुछ आदत-सी हो गई है कि हम उनका मुकाबला करने की बात सोचते ही नही। कही कुछ थोडी-सी अडचन आई कि झट आडे-टेढे मार्ग से ही उसे रफा करने में लग जाते है। अगर उनका कुछ मुकाबला करने की सोचें तो मुझे विश्वास है कि बहुत-से मामलो में सही रास्ता निकल सकेगा, पर हम थोडी-सी भी तकलीफ नही सहन करना चाहते। यह भ्रष्टाचार बढने का एक बडा कारण है। चीनी की कमी हो तो हम कुछ समय उसके बिना भी निभा सकते है। गुड से तो काम चला ही सकते हैं। रोजाना एक छटाक से चीनी खाने की आदत हो तो आधी छटाक से भी काम चल सकता है। गेहू की कमी हो तो कुछ चावल से भी निभ सकता है। चावल की कमी गेहू से पूरी की जा सकती है। दोनो की कमी ज्वार आदि अन्य अनाजो से ही पूरी की जा सकती है पर हम अपनी आदत में कुछ भी फर्क नही करना चाहेंगे और पास में पैसा है, इसलिए काले-बाजार से महगी चीज खरीद कर अपने आराम में कमी नही होने देंगे। गरीब लोग अपना काम कैसे चलाते है उस ओर हम देखते ही नही। हम कुछ समय से काम लें तो इतनी अशुद्धता न करनी पडे।

कही-कही रिश्वत एक सर्वसामान्यप्रथा बन गई है, उसके दर भी मुकर्रर हो गए है। बिना मागे ही कर्मचारी को रिश्वत दे दी जाती है। यह आदत यहा तक बढी है कि उसमें लेनेवाले को न कोई दोष दीखता है न देनेवाले को। राजमार्ग या महाजनो का पथ-सा बन गया है। अगर ऐसे दोष हमें सचमुच चुभें और हम उनका मुकाबला करने की कोशिश करते रहे, तो बहुत बार में हानि हुए बिना ही हम उनसे बच सकते है।

टेढी खीर होगी। गुडों के मार्फत लोग सताए जा सकते है और झूठे मुकदमे भी चलाए जा सकते है। सरकारी सप्लाई-विभाग मे व्यापारियो का रात-दिन काम पडता है। अगर कर्मचारियो की शिकायत की जाय तो वे नाराज हो कर लोगो को अनेक प्रकार से सकट में डाल सकते है। कुछ भाइयो ने मेरे पास शिकायत की है कि भ्रष्टाचार रोकने के प्रयास में उनपर अधिकारियो की नाराजी हुई और कुछ झूठे मुकदमे चलाए गए, जिनके फलस्वरूप उनके व्यवसाय को तो धक्का पहुचा ही, साथ ही मुकदमो की पैरवी करने में, वकील, साक्षी आदि के खर्च में हजारो-लाखो की हानि भी उठानी पडी। ऐसे आघात कैसे सहन किये जाय ? पहली बात तो यह है कि जो हिम्मत नही रखते, वे बिना सोचे-विचारे इस तरह आगे न बढें। यह मान कर चलना चाहिए कि शुद्धिकरण में तकलीफ भोगनी ही पडेगी। फिर भी मैं यही कहूगा कि हिम्मत हारना अच्छा नही है। कष्ट सहन किये बिना भ्रष्टाचार कैसे मिटेगा ? आफत झेलने को तैयार रहना पडेगा। झूठे मुकदमे चलें तो उनकी पैरवी सचाई से ही करनी है। यथासभव मुकदमा लडने की झझट से बचना श्रेयस्कर होगा। हमें समझ लेना चाहिए कि इस अखाडे में हमारे प्रतिस्पर्धी बडे प्रवीण होते है। इतने से ही सतोष कर लेना बेहतर होगा कि हम अपना सच्चा-सच्चा बयान दे दें और अधिकारियो या न्यायाधीशो को जो कुछ करना हो, करने दें। शायद नतीजा यह हो सकता है कि हमारा अपराध न होते हुए भी हमें सज़ा भुगतनी पडे। वह सहन करने की तैयारी पहले से ही होनी चाहिए, कई भाइयो के मन में सार्वजनिक बेइज्जती का डर रहना स्वाभाविक है। तथापि अगर हम सच्चे है तो हमें इसमें निडर रहना चाहिए। आखिर न्यायाधीश का फैसला वेद-वाक्य तो है नही। न्यायाधीश कुछ नियमो से बधा रहता है। उसके सामने जो सबूत आता है, उसपर से उसको निर्णय करना पडता है। अगर सबूत गलत रहा तो उसका निर्णय गलत होगा ही। अदालत का

निर्णय कुछ भी हो पर आस-पास के समाजवाले, जिनमे हमारी बेइज्जती का डर रहता है, अच्छी तरह से जान सकते है कि सत्य कहा है और हम सचमुच अपराधी है या नही ? हमे विश्वास रखना चाहिए कि अंत में सत्याग्रह का परिणाम बुरा नही हो सकता तकलीफ भले ही भोगनी पडे। बलिदान किये बिना कोई बडी बात सिद्ध नही होती। आज देश में जो भ्रष्टाचार चल रहा है, उसको घटाने के लिए अनेको को बलिदान करने को तैयार होने की जरूरत है।

पहले ही राशन बहुत कम फिर मेहमान आ जावे तो क्या किया जाय ? खुद की जीवन-यात्रा किसी प्रकार सुखम्-दुखम् चलाई जा सकती है परन्तु अतिथि-धर्म कैसे पाला जाय ? अतिथि का मतलब यही कि उनकी आने की तिथि नियत नहीं सख्या भी नियत नही। आवागमन के साधनो की सुविधा से इन दिनो में उनका आना-जाना भी बढ गया है। राशन के नियम भी कुछ ऐसे है कि एक सप्ताह से कम रहनेवाला मेहमान नही गिना जा सकता। उसके लिए राशन-कार्ड बनाना हो तो बहुत करके मेहमान आ कर चला जाय, उसके बाद ही सामान पाया जा सकता है। इस दशा में बेचारा यजमान भी तो क्या करेगा ? पर यह स्थिति मेहमानो के लिए एक चेतावनी है। उनको चाहिए कि वे जहा कही जावें, वहां खुद अपने साथ अपने काम का आटा आदि कुछ सामान ले जावें। शायद यजमान को कुछ सकोच हो कि उनकी चीज का उपयोग कैसे करें ? यह सूचना है तो कुछ अजीब पर सकोच हटाना ही हो तो वह पैसा देकर हटाया जा सकता है। शास्त्रो में आपद्धर्म जैसा शब्द है ही। जो चीज मिलती तो नही उसके लिए ऐसा कुछ प्रबन्ध करना गैर-वाजिब नही समझना चाहिए।

कुछ गडवडी करते रहना पड़ता है। अगर न करें तो नौकरी छोड़ देनी पड़ती है। इस दशा में क्या अपने निजी जीवन तक शुद्धि को सीमित करके सतोष मान सकते है और शुद्ध व्यवहार-आन्दोलन में शरीक हो सकते है?" मनुष्य के ऐसे टुकड़े नही किये जा सकते। जो दूसरो के नाम पर अशुद्धि करेगा, वह निजी काम में भी अशुद्धि करने को ललचाएगा ही। निजी काम में अशुद्धि के प्रति ग्लानि होगी, तो मालिक के अशुद्ध कामो में भी ग्लानि रहेगी ही। उसका धर्म है कि वह मालिक को समझावे और मालिक के काम में भी अपनी ओर से अशुद्धि में हिस्सेदार न बने।

बहुत सोच-विचार के बाद श्री किशोरलालभाई ने लिखा है "शुद्ध व्यवहार-आन्दोलन के चालक इस निर्णय पर आये है कि सर्वोदय और समान सामाजिक न्याय की परिस्थितिया पैदा करने का एकमात्र उपाय यही है कि हर नागरिक शुद्ध-व्यवहार का पालन करे। शुद्ध नैतिक जीवन का अर्थ ही है सयमित जीवन। अगर हम अपने जीवन पर स्वेच्छा से सयम नही रखते, तो जो जनता के कल्याण का उद्योग करते है, जैसे गुरु, धर्म या सप्रदाय, समाज, सरकार आदि, वे इन बाहरी नियन्त्रणो का आरोप करेंगे। हरएक का अपना विशेष ढग होगा, लेकिन वे बाहरी नियन्त्रण ही होगे। बाहरी नियन्त्रण अनगढ और भोडे होते है और समाज के जैसी जटिल सघटना में उनका प्रयोग हर जगह नियम और न्याय का अनुवर्तन नही कर सकता। इसलिए जनता के किसी-न-किसी वर्ग को उनसे कुछ कठिनाई और असतोष तो होता ही है। लेकिन लोग स्वेच्छा से यदि अपने नियन्त्रण आप ही करें तो व्रतचारी को धन न सही, सतोष अवश्य मिलेगा और समाज का भी हित होगा। शुद्ध-व्यवहार ऐसे स्वेच्छा-स्वीकृत आत्म-सयम का ही एक दूसरा नाम है।

"इस प्रयत्न में सरकारी कर्मचारी और व्यापारी बहुत बडा काम कर सकते है। भ्रष्टाचार की परिस्थिति के निर्माण में इस जोडी का बडा हाथ है। एक तरफ यह शक्तिशाली जोडी है, दूसरी तरफ गरीब

ग्राहक है और कुछ इने-गिने ईमानदार व्यापारी हैं।

'सरकारी कर्मचारियों और व्यापारियों में से कौन किसके भ्रष्टाचार के लिए उत्तरदायी है यह कोई नहीं कह सकता। इस परिस्थिति के निर्माण में दोनों का समान योग है। ताली जिस तरह दोनों हाथों से बजती है उसी तरह दोनों के सहयोग से भ्रष्टाचार की उत्पत्ति हुई है। और यद्यपि व्यापारी के पास भ्रष्टाचार का साधन है फिर भी उसे सीधा करने और राह पर लाने की शक्ति सरकारी अधिकारी के ही पास है, भले ही व्यापारी कितना ही पैसेवाला और प्रभावशाली क्यों न हो। अगर मन्त्री और सरकारी अधिकारी निर्भय हो अपने मार्ग पर दृढ़ हों और परिचय दोस्ती आदि के अनुचित प्रभावों से मुक्त रह सकें, तो व्यापारी करोड़पति ही क्यों न हो उसका सारा पैसा भी उसे बचा नहीं सकता।

'मन्त्रियों को तो पैसे के लोभ में पड़कर उन्हें दण्ड से बचाने या विशेष सुविधाएं देने का कोई कारण भी नहीं है। भ्रष्टाचार के लिए किसी भी तरह का कोई बहाना वे नहीं दे सकते। फिर रहे सरकारी कर्मचारी सो उनमें निचली श्रेणी के नौकरों को भी जितना वेतन और स्थिरता होती है उतनी उनके ही दर्जे के समान शिक्षा और योग्यतावाले गैर-सरकारी नौकरी कर रहे व्यक्तियों को नहीं मिलती। उन्हें जानना चाहिए

दुखद पतन हुआ, अब उसके भी रहने का कोई कारण नहीं है। आजादी ने उन्हे दूसरे लोगो की अपेक्षा ज्यादा सुविधाए दी है। जनता के किसी और वर्ग को आजादी का ऐसा भौतिक लाभ नही मिला, जैसा उन्हे। जनता की दशा सुधारने या बिगाडने की कुजी भी उनके ही हाथ में है। अगर वे लोग परिस्थिति की चुनौती स्वीकार करें और उसके मुकाबले के लिए कमर कसे, ईमानदारी का उदाहरण पेश करें, डर, मेहरबानी या अनुचित लोभ छोड कर अपना कर्त्तव्य करें, तो व्यापारियो को तथा जनता के और सब वर्गो को भी सुधरना ही पडेगा।"

अभी कुछ दिन हुए, एक चीफ मिनिस्टर साहब के एक भाषण की रिपोर्ट देखने में आई। भाषण को पढकर ऐसा मालूम होता है मानो वह सरकारी नौकरो की रिश्वतखोरी का बचाव करते है। वह लगभग ऐसा कहते दीखते है कि सरकारी नौकरो को उनकी इस कमजोरी के लिए दोष देने के बजाय हमें उनपर दया करनी चाहिए। उनकी दृष्टि में सारा दोष उस चरित्रहीन जनता का है, जो कि उनके सामने अपना स्वार्थ साधने के लिए प्रलोभन रखती है। सरकारी नौकर दूसरे दुर्बल मनुष्य की तरह इन प्रलोभनो का शिकार हो जाते है, आखिर उन्हे जीवन के लिए सघर्ष करना पडता है और इस मुश्किल दुनिया में अपना पेट भरना पडता है।

निचली श्रेणी के सरकारी नौकरो की आर्थिक-कठिनाइयो के लिए जिन्हे पर्याप्त वेतन नही मिलता, हरएक आदमी हमदर्दी महसूस करेगा। लेकिन किसी सरकारी आदमी के इनाम या रिश्वत लेने का बचाव कोई नही कर सकता, सरकार तो हरगिज नहीं कर सकती। उन्हे पर्याप्त वेतन मिलता है या नहीं, यह देखने का काम सरकार का है। और अगर वह इस बात की जाच आख खोलकर करे, तो उसे पता लगेगा कि महकमो में उसके बिल्कुल ऊपरी और निचली श्रेणी के नौकरो के वेतनो में १७५ से लगाकर ९० तक का अनुपात है। इस विषमता

को जारी रखने मे औचित्य नही है। दूसरे, अगर हम इस बात का खयाल करें, तो सरकार का कम-से-कम वेतन पानेवाला नौकर भी उसी श्रेणी के गैर-सरकारी काम करनेवाले आदमी की वनिस्वत ज्यादा पैसा पाता है और उसकी नौकरी भी ज्यादा सुरक्षित होती है। इसलिए इससे तो यह सिद्ध होता है कि सरकारी नौकरियो में इनाम-रिश्वत का कोई औचित्य नही हो सकता।

जनता के जो लोग सरकारी अधिकारियो को इसलिए रिश्वत देते है कि वे उनपर कुछ अनुचित मेहरवानी करें, उनका हमें बचाव नही करना है। यह सच है कि वेईमान लोगो का एक ऐसा वर्ग है, जो इतने बड़े प्रलोभन पेश करता है कि कभी-कभी माननीय मत्री को भी उनका तिरस्कार करना कठिन होता है। लेकिन इसे रिश्वत लेनेवाला अपने बचाव में पेश नही कर सकता।

सूरत जिले के एक भाई का पत्र आया है, जिसमें उन्होने रेलवे तथा अन्य सरकारी विभागो से भ्रष्टाचार के कई प्रमाण दिये है। उनका कुछ अश मेरे शब्दो में नीचे दिया जाता है

'इस वर्ष सूरत जिले में आम की फसल बहुत हुई। उसका माल बहुत बड़ी तादाद में अहमदाबाद और वम्बई की ओर कुछ समय तक सवारी गाडी से जाता रहा। पर इतना माल चढाने में गाडिया लेट होती। इसलिए रेल्वे-अधिकारियो ने सवारी गाडियो में आम के पार्सल लेना मना कर दिया। मालगाडी से माल भेजा जाय तो देर होती है और माल के दाम भी कम आते है। मनाही होते हुए भी कोई दिन ऐसा नही जाता था जब कि सवारी गाडी से माल जाना बन्द रहा हो। उन हरेक तीन-चार स्टेशनो से ही रोजाना करीब ५०० टोकरी माल हरेक सवारी गाडी से जाता रहा। जाचवाले इन्स्पेक्टर, स्टेशन मास्टर, गार्ड आदि सबके सामने ही यह चोरी होती रही। हरेक टोकरी के पीछे आठ आने तक रिश्वत दी जाती थी। माल ले जानेवाले को न अपने लिए गाडी का टिकट न माल के लिए बिल्टी ही करानी

पडती थी। गाडिया लेट तो पहले की तरह होती ही रही। जब मैंने यह सिलसिला देखा तो ऊपर के अधिकारियो को लिखा कि मैं ऐसा कदम उठा सकता हू, जिससे यह बन्द हो सके। पर उससे गाडी रुककर लेट होगी और मुसाफिरो को तकलीफ होगी। इसलिए अगर दो दिनो में यह बन्द नही हुआ, तो मै अपनी कार्यवाही करूगा। तुरन्त ही पुलिस पार्टी, वाचमेन, टिकट जाचनेवाले आदि की एक टोली इस काम में लगी। पहले ही रोज बगैर रसीद की ८०० टोकरिया पकडी गईं। बाद में भी कार्यवाही चालू रही। यह भ्रष्टाचार बिलकुल बन्द तो नही हुआ, पर बहुत-कुछ कम हो गया। तथापि अबतक जो भ्रष्टाचार और चोरी करते थे, उनका कुछ बिगडा हो या उनपर मुकदमा हुआ हो या उनको सजा दी गई हो, ऐसा नही दीखता। दूसरे भ्रष्टाचार के मामलो में भी अधिकारियो से लिखा-पढी होती है, कभी-कभी उनसे कुछ चिकने-चुपडे जवाब मिल जाते है। पर सुधार नाम-मात्र का ही हो पाता है।"

ऐसे भ्रष्टाचारों के मामले रेलो में तथा अन्य सरकारी विभागो में सदा चलते रहते है। बहुत दफा तो वे छिपाकर नही किये जाते। आम लोगो के सामने होते है। पर हममें ऐसी जडता छाई है कि पाप आखो के सामने होते देखकर भी उसका प्रतिकार करने का प्रयत्न हम नही करते। यह नही कि केवल अपढ और अज्ञानी लोगो में ही यह बात है। खासे समझदार लोग भी आख मीच लेते है, और शायद यह सोचते होगे कि अपना काम-काज छोडकर हम दूसरो की झझट में क्यो पडें? यह बात सही है कि विरोध करने के प्रयत्न में कुछ समय देना पडता है, तकलीफ उठानी पडती है और शायद कुछ त्याग भी करना पडता है। पर ऐसा ही 'सयानापन' अगर सब लोग धारण कर लें तो यह भ्रष्टाचार कम कैसे होगा?

ज्यो-ज्यो इस विषय में ज्यादा सोचते है, कुछ ऐसा महसूस होने लगा है कि इस काम के लिए एक ऐसा अखबार हो जो ऐसी घटनाओ

को नाम, गाव ठाव-ठिकाने सहित प्रकाशित करे, ताकि दुराचार सार्वजनिक उजाले मे आवे। उसे दुरुस्त करने की ओर अधिकारियो का ध्यान खीचा जाय और कुछ कारगर कदम उठाने के लिए अधिकारी मजबूर भी किये जाय। ऐसा अखबार चलाने में जोखिम तो है ही, पर सत्य की उपासना ठीक रही तो तकलीफ भोग कर भी आखिर उसका परिणाम अच्छा ही आवेगा। अखबारो का भी यह कर्तव्य है कि वे इस काम में मदद दें। हम भी उनसे मदद लें।

एक भाई ने अपने पत्र में अनाज के आयात-निर्यात की विशेष असुविधाओ की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इस सबध में पहले तो हम यह सोचें कि सरकार को ऐसे अटपटे नियम क्यो बनाने पडते हैं जिनसे लाखो लोगो को तग होना पडे? सरकार जो व्यवस्था करती है उसे अगर जनता ईमानदारी से निभाने को तैयार हो तो ऐसे कडे नियम बनाने की जरूरत ही न रहे। जेल में हजारो कैदी रहते हैं और भागने का प्रयत्न कोई कभी ही करता है, तथापि नियम ऐसे बनाये गए हैं कि भले-बुरे सब कैदियो को तकलीफ भोगनी पड़ती है।

अग्रेजी सल्तनत ने भारत की आजादी के प्रयत्न को कुचलने के लिए, लोगो को अपमानित करने और जेल भेजने के इरादे से ही पुलिस-चौकियो पर हाजिरी देना आदि दुष्ट नियम बनाकर नये-नये अपराध खडे कर दिए थे। वैसे कानूनो को तोडना हमारा धर्म ही था। अब तो हमारी ही सरकार है। उसके और जनता के हित में विरोध नही है। सामान्यत कानून सरकारी दृष्टि से जनता के हित मे ही बनाये जाते है। इसलिए उन्हे तोडने का विचार हम सहना कदापि नही कर सकते। फिर भी ऐसे कई उदाहरण है कि जहा मन उद्विग्न हुए विना नही रहता। लेकिन कानून तोडने की सलाह नही दी जा सकती, और हम जानते हैं कि उसका पालन करना भी मुश्किल है। यह समस्या कैसे हल की जाय और उस दशा में जब कि ऐसे नियम बनाने में ही सरकार ने गलती

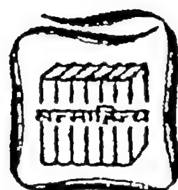
की हो ? कभी-कभी सरकार अपनी आर्थिक नीति की धुन में गरीबों का ख्याल नहीं करती। कभी-कभी सरकारी कर्मचारी व्यवहार न जानने के कारण या स्वार्थी सलाहकारों के बहकावे में गलत नियम बना देते हैं या स्वार्थी कर्मचारी अच्छे नियमों का पालन करने की अवहेलना करते हैं। कभी-कभी सरकार ही ऐसी परिस्थिति खड़ी कर देती है कि उसका कानून तोड़े बिना चारा ही नहीं रहता।

सामान्य लोग मानते हैं कि चीज सस्ती-महंगी बेचना व्यापार का एक मामूली सिलसिला है। मांग के अनुसार भाव कम-ज्यादा होते ही रहते हैं। जहां ज्यादा मुनाफा करने की दृष्टि हो, वहां तो उसे हम दोष दें। पर व्यापारी के केवल पेट भरने योग्य मुनाफे में दोष क्यों मानें ? लोग यह भी वहम करते हैं कि यह तो केवल नाममात्र का अर्थात कानून का बनाया गुनाह है। वास्तव में इसमें नैतिक दोष है ही नहीं। हमें यह समझ लेना चाहिए कि ऐसे कानून के पीछे भी समाज-हित की दृष्टि रहती है, इसलिए उन्हें तोड़ना योग्य नहीं है और ऐसा व्यवहार अशुद्ध है।

फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि ऊपर लिखी हुई समस्या का हल क्या है ? कानून तोड़ने पर भी सजा टालना चाहते हैं अर्थात कानून का भंग छिपाना चाहते हैं, यह तो दोष ही है। क्या अपनी सुविधा के लिए असत्य का पाप करके अपनी नैतिकता भी खो दें ? ऐसी दशा में सलाह तो यही हो सकती है कि अगर कानून तोड़ना ही पड़े तो उसे छिपावें नहीं, उसके लिए जो सजा भुगतनी पड़े वह सहन करने के लिए तैयार रहें। मामूली आदमी तो यह सजा नहीं पचा सकेगा। जिसे नैतिकता की विशेष लगन है, वही ऐसा कदम उठा सकेगा। उसके इस कदम का सरकारी कर्मचारियों पर यह असर होना सम्भव है कि उन्हें अपने अयोग्य नियम रद्द करने पड़ें। शुद्ध-व्यवहार आन्दोलन के सिलसिले में जो कई पेचीदे प्रश्न खड़े होते हैं, उनमें ऐसा दीखता है कि अन्त में सत्याग्रह का आसरा लेना पड़े। सत्याग्रह करने की योग्यता किसकी मानें, किस विषय को लेकर करें, आदि प्रश्न अलग हैं। जो कोई ऐसा विचार करेगा, वह इसके जानकारों से भी सलाह कर लेगा। परन्तु नैतिकता बचाने की दृष्टि से यह आवश्यक दीखता है कि जिन्हें अशुद्धता चुभती है, उनको कानून तोड़ना ही पड़े तो वे उसको प्रकट करके उसका प्रायश्चित्त करें।

नई क्रांति-माला की पुस्तकें

1. सर्वोदय का घोषणापत्र
2. सर्वोदय के सेवकों से
3. भूदान-यज्ञ
4. धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन
5. मानवीय क्रांति
6. नई क्रांति
7. नई क्रांति के गीत
8. हमारी भूमि-समस्या
9. दंड-निरपेक्ष समाज-रचना
10. सम्पत्तिदान-यज्ञ
11. भूदान दीपिका
12. सामाजिक क्रांति और भूदान
13. व्यवहार शुद्धि
14. भूदान प्रश्नोत्तरी
15. क्रांति का अगला कदम
16. विनोबा एण्ड हिज़ मिशन
17. जीवन-दान (प्रेस में)



सस्ता साहित्य मण्डल

धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन

[नवीन समाज-रचना के लिए बुनियादी विचार]

विनोबा



१९५४

अ० भा० सर्व सेवा संघ, वर्धा का प्रकाशन

अ० भा० सर्व सेवा संघ, वर्धा
की ओर से
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली।

पहली बार : १९५४

मूल्य
चार आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

चिंतन

भगवान् बुद्ध को अब ढाई हजार साल हो गए, लेकिन अभी-अभी उनका जन्मदिन मनाना हम लोगो ने शुरू किया है। उनका सिखाया अवैर का मार्ग अब दुनिया के लिए बहुत जरूरी हो गया है। विज्ञान युग मे अहिंसा का सामूहिक तौर पर स्वीकार लाजमी है। उसके बिना हमारा इहलोक ही रुका हुआ है, परलोक को कौन पूछे।

अवैर की यह घोषणा वेदो की घोषणा है—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥

गीता ने ग्यारहवे अध्याय के अन्तिम श्लोक में "निर्वैर सर्व भूतेषु" यही भक्त लक्षण कह दिया और शंकराचार्य उस श्लोक को "सर्वस्य गीता शास्त्रस्य सार-भूतोऽर्थ" कहते है।

भारत की सारी सन्त-परम्परा ने अपने-अपने आचरण और उपदेश से यही बोध हमे सिखाया और उसी के प्रयोग से हमारे देश ने भारत को आजादी हासिल हुई।

भारतीय धर्म-विचार का दस हजार साल से सतत विकास होता आया है। इसमें हिन्दू, बौद्ध, सिख, जैन, पारसीक, मुसलमान, क्रिस्तान, यहूदी, इन सबका योग हुआ है। उसके परिणाम-स्वरूप यहा के सारे धर्म व्यापक हो रहे है। वर्ण-भेद की विषमताए टूटना चाहती है। पैगम्बर-निष्ठा का स्थान आत्म-निष्ठा ले रही है। मूर्ति-पूजा समाज-सेवा मे लीन होने जा रही है। इसके आगे सेन्सस मे, धर्मो की गिनती मे, विविध-नाम देने की जरूरत नही है। हमारा सबका एक ही भारतीय धर्म है।

भारतीय धर्म का सार मैं दो शब्दो मे बताता हू (१) वेदान्त (२) अहिंसा। दुनिया भर के तत्त्वज्ञान वेदान्त मे समा जाते है। चाहे उनका

परस्पर मे विरोध हो, वेदात के साथ किसी का विरोध हो ही नही सकता। जैसे गौडपाद ने कहा था —

"परस्पर विरुद्धन्ते, तैरय न विरुद्धचते ।"

वेदात में वेद का अन्त ही हो जाता है, अन्त याने सफलता और समाप्ति दोनो। वेद का अन्त याने सब पुस्तको का अन्त। जहा पुस्तको का अन्त हो गया वहा झगडे सहज ही मिट गए।

केवल तत्त्व-ज्ञान से जीवन-दर्शन पूरा नही होता, उसके लिए समाज-शास्त्र की आवश्यकता होती है। जैसे सब तत्व-ज्ञानो की परिसमाप्ति वेदात मे होती है, वैसे सामाजिक शास्त्रो की परिसमाप्ति अहिसा मे होती है। युद्ध-चक्र के कदन से ग्रस्त आज का सारा ससार अहिसा की शरण मे आने की तैयारी कर रहा है। युद्ध-चक्र घूमते-घूमते जहा पूर्ण हो जायगा, वहा उसे शून्य का आकार आ जायगा। वही से अहिसा का युग शुरु होगा। वह बौद्धयुग भी कहलायगा, क्योकि उसका आधार बुद्धि पर होगा।

भूदान-यज्ञ को मैने धर्म-चक्र-प्रवर्तन नाम दिया, उसके पीछे यह सब चिन्तन था। एतद्विषयक मेरे भाषणो का यह छोटा-सा सग्रह प्रकाशित हो रहा है। मुझे आशा है, भूदान-यज्ञ की तात्विक और व्यावहारिक भूमिका की झाकी उससे पाठको को मिल जायेगी।

गया जिला पडाव
२९ मार्च, १९५४.

विनोबा

विषय-सूची

"धर्मचक्र प्रवर्त्तन का अर्थ है, समाज-चक्र-परिवर्त्तन। हमे सारा समाज ही वदलना है। और वह अहिंसक क्राति के जरिए ही वदलना है। ऐसा समाज वर्गहीन, शोपणहीन और भेद-भाव हीन होगा, याने वह एकरस समाज होगा, जो भूमि के आधार पर खडा होगा। "सवै भूमि गोपाल की।" सारी भूमि भगवान की है, जैसे कि हवा, पानी, प्रकाश। और भगवान् की ओर से वह सारे गाव की और गाव की ओर से किसानो की रहेगी।

एक वार यह साध्य प्राप्त हुआ कि फिर विकेन्द्रित अर्थ-रचना की ओर मुडना है, यद्यपि वह कभी भी साथ-साथ ही चलेगा।

इस प्रकार सारी समाज-रचना के परिवर्तन का यह महान् कार्य है और भूमि की समस्या इस शातिमय तरीके से हल किये विना हम आगे वढ नही सकते। हमारी सारी प्रवृत्तियो की जिन्दगी भी इसी प्रश्न के हल पर टिकी हुई है।

—विनोबा

धर्म-चक्र-प्रवर्तन

: १ :

मानव-धर्म की प्रस्थापना

स्वराज्य का मंत्र

मानवता के धर्म की संस्थापना का काम आज इस देश में भूदान-यज्ञ के द्वारा होने जा रहा है। यह एक धर्म-विचार समाज में स्थापित करना है। छोटे-छोटे गांव में भी लोग अत्यन्त प्रेम और उत्साह, उत्सुकता और आशा से यह संदेश सुन रहे हैं क्योंकि मनुष्य को जब उसके उत्थान के लिए एक नया विचार मिल जाता है, तब उसे स्फूर्ति मिल जाती है। मनुष्य के लिए शारीरिक भौतिक जीवन तो है ही, परन्तु उससे भी अधिक जरूरी जो चीज है वह उसे मिलनी चाहिए। भूदान के काम से समाज की भौतिक आवश्यकता पूर्ण करने का याने गरीबों को आधार देने का काम तो होगा ही, परन्तु सिर्फ भौतिक आवश्यकता पूर्ण करने की बात इसमें नहीं है। इसके पीछे एक बुनियादी विचार है, एक भावना है। मनुष्य का समाधान सिर्फ भौतिक जीवन से नहीं होता है, उसके साथ-साथ विचार की भी जरूरत होती है। दादाभाई नौरोजी ने बहुत चिंतन और मनन के बाद हिन्दुस्तान को 'स्वराज्य' शब्द दिया था।

उस शब्द ने लोगो को जगाया, त्याग के लिए प्रेरित किया और त्याग मे आनन्द भोगने की प्रेरणा की ।

सर्वोदय का मंत्र

अब स्वराज्य-प्राप्ति के बाद ऐसा विचार या शब्द लोगो को मिले बगैर उनमे जोश नही आ सकता। वैसा नया शब्द जो गाधीजी ने दिया था, हमको अब मिला है। वह है 'सर्वोदय'। उससे लोगो के मन मे अब आशा बध गई है और उन्हे लगता है कि हमे एक मत्र मिला है। उस मत्र के व्यापक प्रचार के लिए, उसको जीवन मे साकार और मूर्तिमत बनाने के लिए, उसका साक्षात दर्शन करने के लिए कोई कार्य योजना चाहिए, क्योंकि बिना कार्य-योजना के मत्र अव्यक्त रहेगा। जिन लोगो मे अव्यक्त मत्र मे स्फूर्ति लेने की आदत और ताकत है, उन चद लोगो को छोडकर बाकी के लोगो को मत्र जबतक प्रत्यक्ष साकार नही होता, तबतक प्रेरणा नही मिलती। यह एक तरह से मूर्ति-पूजा ही है, चाहे हम उसे गौण माने, उसकी कीमत कम समझे। परन्तु देहधारी मनुष्य के लिए कोई चीज चाहिए, जिसे वह अपनी आखो से देख सके और अपने हाथो मे टटोल सके। ऐसी मूर्ति की जरूरत मानव-जीवन मे रहती है। सारे समाज के लिए जब विचार प्रेरक-मत्र दिया जाता है तब पत्थर की मूर्ति या ग्रथ नही, बल्कि जीवन मे परिवर्तन लाने की कोई क्रिया चाहिए। तब उस मत्र को आकार आ जाता है। इस तरह का कोई कार्य मै ढूढ रहा था कि तेलगाना मे वह मेरे हाथ आया और तब से मै उस चीज को पकडे हुए हू। इसमे मेरा विचार केवल भूमि की समस्या हल करने तक सीमित नही है। वह तो एक विचार को साकार बनाने के लिए प्रत्यक्ष हासिल हुई एक मूर्ति है। इसलिए मैने उसे उठाया और उसका प्रचार करना आरभ किया। वह तो एक धर्म-विचार है।

सनातन धर्म-विचार

आजकल दुनिया मे हिन्दू, मुसलमान इत्यादि धर्म चलते है। केवल, उनमे आज के लोगो का सतोष नही होता, पर इसलिए हमने कोई नया

धर्म निकाला है, ऐसी बात नही है। हिन्दू, मुसलमान क्रिश्चियन आदि के अर्थ मे यह धर्म नही है, बल्कि वह एक सनातन धर्म है। सनातन शब्द का उपयोग बहुत होता है, परन्तु लोगो को इसके अर्थ का भान नही है। धर्म दोहरा होता है। एक, जो बदलता नही है, कायम रहता है। जैसे सत्य का परिपालन प्राचीन काल मे भी धर्म-रूप था और आज भी धर्म-रूप है। भरत भूमि मे उसका परिपालन धर्म-रूप है, वैसे ही दूसरे देशो मे भी वह धर्म-रूप है। सत्य के परिपालन के लिए स्थल और काल का भेद लागू नही है। वह तो नित्य, कायम और सनातन धर्म है। वैसे ही प्रेम, ज्ञान, दया, वात्सल्य ये सब सनातन धर्म होते है। उनके अमल के लिए उस-उस जमाने मे जो आचरण प्रवृत्त किये जाते है, वे बदलते है और समय, प्रसग और देशके अनुसार हमेशा बदलते है। कोई खडा रहकर हाथ जोडकर भगवान को प्रार्थना करता है, तो कोई घुटने टेक कर करता है, उपासना के लिए कोई कुरान का, कोई पुरान का, कोई बाइबल का और कोई गीता के वचनो का उपयोग करता है, परन्तु परमेश्वर की भक्ति, परमेश्वर के लिए सर्वस्व न्योछावर करने की वृत्ति, जिसे हम भक्ति कहते है, उसमे कोई फर्क नही पडेगा। प्रार्थना के अलग-अलग प्रकार, जैसे मसजिद मे जाना या मदिर मे जाना, आदि मे फर्क पडेगा। परन्तु सब धर्मो मे भक्ति सनातन तत्व है। वह सबके लिए समान है, यही धर्म की असलियत है। आत्मा और तत्व है। उसको पकडे रहना, चिपके रहना, निरतर उसका ध्यान करना उसको नजर-अदाज न होने देना यही हमारा कर्तव्य है। उसको पूर्ति के लिए समाज-देश और काल के अनुसार रूढियाँ और आचरण बनता है। वह धर्म का दूसरा हिस्सा है, परन्तु वह गौण है। लेकिन जो धर्म का सार है, वही इस भूदान के द्वारा प्रकट हो रहा है। वह सनातन, न बदलने वाला और तीनो कालो के लिए लागू होनेवाला सार है सर्वत्र समता और एकता स्थापित करना।

नित्य व प्रचलित धर्म

बावजूद इसके कि मानव के बाहरी जीवन मे विविधता और विभिन्नता रहेगी, फिर भी समता प्रस्थापित करना हमारा ध्येय है। हृदय

मे मा-वाप का धर्म हो जाता है कि जब वच्चे छोटे रहते है तब उनको अनुशासन मे रखे, उनको तालीम दे, परन्तु जब वच्चे वडे हो जाते है, उनको अकल आ जाती है, उनको स्वतत्र विचार की स्फूर्ति और वृत्ति होती है, तब मा वाप का धर्म यह नही रहता कि उनको अनुशासन मे ही रखे। तब तो उनका धर्म यह हो जाता है कि बच्चो को आजादी दे। उनके साथ मित्र के जसा व्यवहार करे, उनको सलाह दे और वे सलाह माने, तो अच्छी वात है, न माने तो भी वुरा नही मानना चाहिए। इसीमें आनन्द मानना चाहिए कि वच्चे हमारी सलाह तो लेते है। परन्तु उन्हें जो विचार जचते है, वे ही ग्रहण कर लेते है। इसलिए छोटे वच्चेवाले मा-वाप का धर्म अलग हो जाता है और तरुणो के मा-वाप का धर्म अलग हो जाता है। मा-वाप का धर्म दोनो में एक ही है कि वच्चो पर प्यार करना, उनकी सेवा करना। प्यार करने का यह धर्म अमिट है, सनातन है, परन्तु जो दूसरा धर्म है, याने अनुशासन करने का, वह वदलता जाता है, और वृद्ध होनेपर तो मा-वाप को वच्चो के अनुशासन में रहना ही धर्म हो जाता है। बुढापे में मा-वाप की यही इच्छा होनी चाहिए कि वच्चे हमसे अधिक वुद्धिमान और अधिक तेजस्वी निकले। अगर मा-वाप ने उनको अच्छी तालीम दी होगी, तो वच्चे वैसे निकलेगे भी। उस समय वच्चो के अनुकूल वरतना मा-वाप का धर्म हो जाता है। इसलिए जव वच्चे छोटे रहते है तव उनपर अनुशासन करना और जब वच्चे जवान हो जाते है तव उनको स्वतत्रता देना और सलाह देना और वुढापे मे उनके अनुशासन मे रहना यह तीनो हालतो मे तीन प्रकार के धर्म है। परन्तु तीनो हालत मे न वदलनेवाला धर्म है, वच्चो पर प्यार करना।

अपरिवर्तित धर्म

वैसे ही समाज की हालत मे परिवर्त्तन हो जानेपर धर्म मे परिवर्त्तन होता है। एक जमाना था, जब सारे समाज मे राजाओ की आवश्यकता थी। राजा लोगो ने अपनी सत्ता जनता पर लादी नही थी, वल्कि एक जमाने मे इतनी अव्यवस्था थी कि राजा की जरूरत लोगो को ही महसूस होने लगी।

पुराणों में एक कहानी है कि लोग मनु महाराज के पास गये, जो एकांत में ध्यान कर रहे थे। लोगों ने उनसे कहा कि आप रागद्वेष-रहित हैं, निरहंकारी हैं, इसलिए आप हमारे राजा बन जाइये, हम आपका कहना मानेंगे। तब मनु ने कहा कि राज चलाने की जिम्मेदारी आप मुझपर डाल रहे हैं अगर आप मुझे इससे मुक्त रखते तो अच्छा होता, परन्तु आप सौंप रहे हैं तो राज चलाने में जो दोष और पाप होंगे, उसकी जिम्मेदारी आपकी होगी, मेरी नहीं। लोगों ने उनका कहना मान लिया और तब मनु महाराज लोगों की इच्छा से राजा हुए। यद्यपि यह पुराण-कथा है, फिर भी इसमें सार है। एक जमाना ऐसा था कि जब लोग राजा की आवश्यकता महसूस करते थे। तब राजा के अनुशासन में रहना, उनकी आज्ञाओं का पालन करना प्रजा ने अपना धर्म मान लिया था, परन्तु आज आप देखते हैं कि समाज अब बाल्यावस्था में नहीं रहा है।

प्रजा कालस्य कारणम्

समता का युगधर्म

इस तरह बाहरी परिवर्तन होता है, परन्तु मूल कायम है। जो धर्म-विचार हम प्रवर्तित करना चाहते है वह समता का विचार है। उसके लिए जरूरी है कि जमीन का बटवारा हो जाय। पुराने जमाने में जमीन बहुत पडी थी, इसलिए उस समय बटवारे की जरूरत नही महसूस हुई। हरएक के लिए काफी जमीन थी। किसी के पास ज्यादा और किसी के पास कम तो थी, परन्तु जिसके पास कम थी वह भी उसके लिए पर्याप्त थी। वान-प्रस्थ लोग जगल मे जाकर फल-मूल खाकर रहते थे। इस तरह जिसको जितनी जमीन चाहिए, उतनी लेने के लिए जमीन पडी थी, परन्तु आज जमीन मर्यादित हो गई, क्योकि जन-सख्या बढ रही है। तो समानता के लिए पहली आवश्यकता है, जमीन का बटवारा हो जाए।

समानता का मतलब यह नही है कि हरएक को पाच ही एकड जमीन देना, हरएक को उतना ही कपडा और एक ही किस्म का घर देना। ऐसी बात नही है। परन्तु समानता के लिए यह जरूरी है कि जो चीज सबके लिए अत्यन्त आवश्यक मानी जाती है, वह सबके लिए हो, जैसे हवा और पानी। आज तो शहरो मे हवा के लिए भी ज्यादा किराया देना पडता है। हवा का बटवारा वहा समान नही होता है। जिसके पास अधिक पैसा है, उसको अधिक हवा प्राप्त होती है। लेकिन इस बात को छोडकर हम कह सकते है कि सारे देश मे हवा पर किसी का कोई खास कब्जा नही है। हर कोई चाहे जितनी हवा ले सकता है। पानी की भी वैसी ही हालत है। इसी तरह आज, जबकि जमीन मर्यादित है और जन-सख्या अधिक है, तो जमीन सबको मिलनी चाहिए। हरएक के पास समान जमीन रहे, ऐसी बात नही है, परन्तु कम-से-कम जितनी जमीन आवश्यक है, उतनी तो हरएक को मिलनी ही चाहिए, जैसी कि आज हवा मिलती है। हरएक को कम-से-कम मिल जानेपर किसी के पास अधिक जमीन रहती है, तो किसी को भी ईर्ष्या होने का कोई कारण नही है। हरएक को पर्याप्त मकान मिल जानेपर किसी का आलीशान मकान हो, तो उसके लिए ईर्ष्या नही हो सकती।

परन्तु आज तो एक ही कमरे मे सोना, बैठना, खाना, पूजा, पढाई, बीमार को रखना इत्यादि सब करना पडता है। यह हालत नही होनी चाहिए। सबको पर्याप्त मिलनी चाहिए।

स्त्री-पुरुष समानता

समानता का सिद्धान्त हरएक युग को लागू है, परन्तु किसी जमाने मे समानता के लिए जमीन के बटवारे की जरूरत नही थी, जो आज है—जिस तरह किसी जमाने मे वोट के हक की जरूरत नही थी, लेकिन आज है। आज वोट सबको मिलना चाहिए ऐसी भावना और जाग्रति हुई है। हम हिन्दुस्तान मे स्त्री-पुरुषो को समान मानते है। उनमे कोई भेद नही मानते है। इसलिए स्त्रियो को वोट का अधिकार मिल गया। परन्तु आज भी पश्चिम मे कई देशो मे स्त्री को वोट का हक नही है और वहा की स्त्रियो को उसकी भूख भी नही है। वे कहती है कि यह तो पुरुषो का काम है, वे ही करे। लेकिन हमारे देश मे ऐसी बात नही है, क्योकि यहा स्त्री-पुरुषो मे समानता प्राचीन काल से, कम-से-कम विचार मे तो, मानी गयी है, यद्यपि आचार मे अभी भी नही मानी गयी है और सुधार की जरूरत है। परन्तु हमारे शास्त्र कहते है कि स्त्री और पुरुष दोनो को मोक्ष का समान अधिकार है। दोनो की आध्यात्मिक योग्यता समान है। हम सिर्फ राम का नाम नही लेते, सीताराम का लेते है और राधाकृष्ण का लेते है। यहा पर ब्रह्म-विद्या मे हम जितने आगे बढे है, उतना दुनिया मे कोई भी नही बढा है। परन्तु हम सीताराम इसलिए कहते है कि स्त्री-पुरुष की समानता को हम मानते है, यद्यपि ईश्वर एक ही है इस मूल तत्त्व को हम जानते है। इसलिए हिन्दुस्तान मे स्त्रियो को वोट का हक हासिल करने के लिए आन्दोलन नही करना पडा। इग्लैंड मे पचास साल तक स्त्रियो को वैसा आन्दोलन करना पडा और आज जिस तरह गरीब-विरुद्ध-अमीर का सवाल रहा है, वैसा ही उनको स्त्री-विरुद्ध-पुरुष, ऐसा सवाल खडा करना पडा। परन्तु यहा की स्त्रियो को इसकी आवश्यकता नही रही, क्योकि यहा की हवा मे आध्यात्मिक और मानसिक अधिकार समान होने की बात प्राचीन

काल से है। हिन्दुस्तान जैसे देश मे इस तरह की समानता का विचार प्राचीन-काल से चला आ रहा है, फिर भी जमीन के बटवारे की जरूरत उस समय नही थी, जो आज है। इस प्रकार आज युग-धर्म का जो प्रवर्तन हो रहा है, उससे लोगो के मन मे उत्साह निर्माण होता है, नही तो मेरे जैसे छोटे आदमी को इतना प्रेम क्यो मिलता? यह विचार हरएक के हृदय को छूता है और हरएक को लग रहा है कि यह क्राति हो जानी चाहिए—इस क्राति से समाज मे चिरस्थायी रूप से काम होगा और समाज मजबूत बनेगा।

समानता की प्रवृत्ति के साथ-साथ विवेक-बुद्धि भी रहे, यह मै चाहता हू। हिन्दुस्तान के बाहर लोग समानता की बात कहते है, परन्तु वहा अविवेक मे काम किया जाता है। उन्होने कत्ल से और हिंसा मे समता लाने की जो बात की है, वह विवेक-शून्य है। वह कोई समता नही है। वे तो समता के नाम पर सबको एक ढाचे मे डालना चाहते है। हम इस तरह सबको एक ढाचे मे ढालना कभी पसद नही करते है। हम अदर की समता को मानते है और देह के लिए जितनी आवश्यक है, उतनी ही समानता चाहते है। मा बच्चो को खिलाती है तो छोटे बच्चे को दूध देती है, उससे जो बडा होता है, उसे कम दूध देती है और बडे बच्चे को सिर्फ रोटी खिलाती है। गणित से सब बच्चो को समान दूध और समान रोटी नही देती। हमारी समानता भी ऐसी ही विवेक-युक्त है। घर के समान समाज मे जितने लोग है, उनकी भूख और पचनेद्रियो की शक्ति के अनुसार उनको खाना देगे। जिसको दूध की आवश्यकता होगी, उसको दूध देगे और जिसको रोटी की होगी उसको रोटी देगे। ऐसा विवेक न रखते हुए समानता लाई गई तो वह निकम्मी है। इसलिए हिंसा के जरिये समानता विवेक-शून्य हो जाती है। हम तो आध्यात्मिक समता चाहते है, यही सनातन धर्म-विचार है।

लोहदरगा, २४ नवम्बर १९५२

: २ :

धर्म-युग का आवाहन

भारत धर्म-भूमि है, जो अति प्राचीन काल से आजतक यहापर धर्म-भावना बराबर काम करती आ रही है। फिर बीच-बीच मे कभी-कभी प्रकाश और कभी-कभी अधकार हो जाता था। जैसे दिन और रात एक के बाद एक आते है, वैसे ही देश की जिदगी मे भी कभी-कभी धर्म-भावना ऊपर उठती है तो कभी-कभी मद पडती है। जब-जब धर्म-भावना मद पडती है, तब धर्म को चालना देने के लिए भगवान समाज को एक नया विचार देता है। एक नया शब्द देता है। उस शब्द के और उस विचार के आधार से फिर से धर्म का उत्थान होता है।

इस युग का धर्म-मत्र

हमारे लिए आज ऐसे ही 'सर्वोदय' शब्द मिला है। उस शब्द का मतलब है सबका भला। पश्चिम के लोग कहते है कि अधिक-से-अधिक सख्या का भला हो, बहु-सख्या का भला हो। बहु-सख्या के भले के लिए अल्प-सख्या की आहुति देनी पडे, तो कोई परवाह नही, ऐसा वे मानते है। लेकिन सर्वोदय मे सारे भाई-भाई है, सब समान है, ऊच-नीच कोई नही है। सबकी समान फिक्र की जायगी, सबको आगे बढने का समान मौका मिलेगा, सबको समान तालीम मिलेगी, जिससे कि वे अपनी ताकत से दुनिया की सेवा मे लग जावें। इसीका नाम सर्वोदय है। सर्वोदय यह नही मानता कि एक के भले के लिए दूसरे का बुरा होना चाहिए। लोग पूछते है कि जहा एक मनुष्य मानता है कि धन-सचय करने मे उसका भला है और इसी लिए वह दूसरों को तकलीफ देकर सपत्ति इकट्ठा करने मे अपना भला मानता है, तो दूसरे के हित मे उनके हित का विरोध होता है, लेकिन मेरा कहना है कि जो सच्चे हित होते है, वे किसी के विरुद्ध नही होते है। अगर मेरा शरीर सुधरे तो आपका कुछ नही बिगडता, परन्तु आपको लाभ ही होता है। वैसे ही अगर

का आरोग्य सुधरे, तो मेरा कुछ नही विगडता है, वल्कि लाभ ही होता है। आप पुण्यवान है तो मेरा कुछ नही विगडता है, वल्कि आपके पुण्य का मुझे स्पर्श होता है। मै पुण्यवान हू, तो आपका कुछ नही विगडता है, वल्कि मेरे पुण्य से आपकी शुद्धि और वृद्धि होती है। इसलिए किसी का भी हित किसी दूसरेके हित के विरुद्ध नही है, परन्तु लोग अज्ञानवश, जडता से मान लेते है कि अपना भला सत्ता या सपत्ति हासिल करने में है। इसलिए लोगो को समझाना होगा कि उसमे आपका भला नही है, किसी का शरीर वहुत वढ गया, उसका शरीर घटाने मे ही उसका भला होता है। उसी प्रकार किसी भी तरीके से धन प्राप्त करने मे अपना हित है, ऐसा समझने-वाला अज्ञानी है। उसे यह भी समझना होगा कि तुम्हारा हित सपत्ति वाटने में है। हम जव आपको दूसरो की सेवा करने के लिए कहते है, तो दूसरे भी हमारे साथ हमदर्दी और प्रेम रखेगे, हमारी सेवा करेगे, यह दुनिया का अनुभव है। प्रेम दोगे तो प्रेम पाओगे। नफरत दोगे तो नफरत पाओगे। आम की गुठली वोओगे, तो आम का फल पाओगे और ववूल का वीज वोओगे तो ववूल का फल पाओगे। यह नही हो सकता है कि ववूल वोओ और आम पाओ। यह सवने अनुभव किया है। साधु-सतो का भी यही अनुभव है। यह समझना मुश्किल नही है कि अगर हम दुनिया का प्रेम सपादन करते है तो उसमे हमारी भलाई है, इसलिए सर्वोदय मे किसी एक के हित का दूसरे के हित से विरोध नही है।

अच्छाई की छूत

वुराई से ज्यादा अच्छाई की छूत फैलती है, क्योकि आदमी के अदर वुराई है ही नही। वुराई के वहाव मे वहकर किसी ने वुराई की तो भी वाद मे वह पश्चात्ताप महसूस करता है। वाद मे उसे ऐसा लगता है कि मैने गलती की, याने वुराई की भी छत लगती तो है, परन्तु वह गहरी नही जाती है। आत्मा के अन्दर नही जाती है, वल्कि भलाई की छूत गहरी पैठती है, अन्दर जाती है, क्योकि आत्मा सत्य-स्वरूप है, मगल है, प्रेममय है, ज्ञानमय है, परम शुद्ध है। आत्मा को अच्छाई एकदम जचती है।

सत्य का असर

जो सत्याग्रह का तत्त्व मानता है, उसका विश्वास है कि अगर हम सत्य का आग्रह और सत्य का आचरण करते है, तो उसका असर हुए बगैर नही रहता है। आजतक सत्याग्रह का उपाय अन्याय के विरुद्ध प्रतिकार करने मे करते थे। पर सत्याग्रह की प्रक्रिया इतनी ही, केवल विरोधात्मक नही है। हम अपने जीवन मे सत्य पर ही भरोसा रखे, परमेश्वर पर भरोसा रखे और अत मे सत्य की ही विजय होनेवाली है, ऐसा विश्वास रखकर काम करे, तो उसीका नाम है सत्याग्रह। भूदान मे जिन हजारो गरीबो ने दान दिया उन्होने एक सत्याग्रह ही तो चलाया है। उसका असर श्रीमानो पर हुआ। उनमे आज जो कजूस दीखते है, वे कल हमारा काम उठानेवाले है। वेदो मे ऋषि प्रार्थना करते है कि "जो कृपण है, उसका मन तू समृद्ध बना, उसके मनको दानकी प्रेरणा दे।" ऋषि की यह प्रार्थना निकम्मी नही है। काम की है। वह सफल है। आज वह प्रार्थना फल रही है। लोगो के हृदय की गाठे खुल रही है। परिस्थिति उन्हे प्रेरणा दे रही है। परिस्थिति का मतलब यह कि गरीब उन्हे प्रेरणा दे रहे है। उन गरीबो के दानो का 'पुण्य' असर किये बगैर नही रह सकता है। इसलिए जब कोई हमें सुनाता है कि श्रीमान लोग नही दे रहे है और इसलिए वे चिढ़ने भी है तो मैं उनसे कहता हू कि चिढो मत विश्वास रखो कि जो आज नही देता है, वह इसलिए नही देता है, क्योकि कल देनेवाला है। कालात्मा इस काम के अनुकूल हो रहा है। हिन्दुस्तान मे एक पुण्य की, धर्म की भावना फैल रही है। पुण्य का मतलब यह नही कि अच्छे काम का फल दूसरी दुनिया मे, स्वर्ग में मिलेगा।

इसी लोक का स्वर्ग

२॥ साल पहले जब यह काम शुरू हुआ था तब कौन इसके बारे मे जानता था, परन्तु आज देश-भर मे इस आन्दोलन के लिए सब लोगो के मन में आशा बन गई है। गरीब कहते है कि भूखी जनता अब न सहेगी, धन और धरती बट के रहेगी। 'अब न सहेगी' का मतलब यह नही है कि हाथ मे तलवार लेकर कत्ल करने के लिए जायगी। परन्तु अर्थ यह है कि भूखी जनता अब पहले की जैसी दीन और लाचार बनकर नही रहेगी। वह बे-जबान नही रहेगी, बल्कि बोल उठेगी और प्रेम से कहेगी कि हमे भी आप-के जैसा खाने का हक है। हम मेहनत करके खाना चाहते है। बनी-बनाई रसोई नही चाहते है। हमको मिट्टी दिलाओ। हम मिट्टी की कीमत मानते है, ऐसी पुकार वे करेगे और अत्यन्त शाति से, प्रेम से, मन मे किसी के भी प्रति द्वेष-भावना रखे बगैर पुकार करेंगे। उनकी पुकार मेरे शब्दो द्वारा प्रकट होती है। वे मेरी जबान से कह रहे है।

लोग पूछते है कि वे खुद क्यो नही कहते। मै कहता हू कि मै कह रहा हू, इसीलिए वे नही कहते। मै उनकी तरफ से भीख नही मागता हू, बल्कि हक मागता हू। मैने दो साल पहले ही कह दिया था कि मै भिक्षा मागने नही आया हू, बल्कि दीक्षा देने आया हू। ऐसी ही गया जिले म बुद्ध भगवान ने सतसे पहले दी थी। यही से उन्होने धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन किया था, जिससे उनका धर्म सारी दुनिया मे फैल गया। बुद्ध भगवान् ने जो बीज यहा की जमीन में बोया था, उसपर अबतक मिट्टी पडी हुई थी। वैसी काल की मिट्टी पडना जरूरी भी था। लेकिन आज उसमे अकुर फूट रहा है। लोग मुझसे पूछते है कि आप पैदल क्यो घूमते है? मै जवाब देता हू कि बुद्ध भगवान क्या मोटर से घूमते थे या हवाई जहाज पर चढे थे? पर उनकी आवाज त्रिभुवन मे फैल गई। क्या बुद्ध भगवान चीन और जापान गये थे? लेकिन विचार का प्रचार तो आत्मा से होता है, मोटर से या हवाई जहाज से नही होता है। जहा आत्मा जाग जाती है वहा उसका प्रचार सारी दुनिया में होता है। अगर मुझमें या आपमें उतनी शुद्धि आ जाये, तो बैठे-बैठे ही हम दुनिया को जगा सकेंगे, परन्तु आज उतनी

नक्ति नही बताई है। इसलिए हम पैदल घूमकर लोगो के हृदय मे पहुचना चाहते है ।

सहज सगठन

लोग पूछते है, "आप कोई सस्था या सघटन क्यो नही खडा करते ?" पर यह काम क्या सघटन से होगा ? जो धर्म-भावना है, वह क्या गाठे वाध-वाध कर फैलती है ? वह दीपक के समान दूसरे दीपक को प्रकाशित करती जाती है। सत्य का जप करने मे मेरा जितना विश्वास है, उतना सघटन मे नही है। यह नही है कि सघटन की जरूरत ही नही पडेगी, परन्तु मनुष्य शुभ विचार जपता और रटता चला जाय तो उसके साथ जरूरी सघटन ऐसे ही पैदा हो जाता है। अगर इस काम के लिए सघटन जरूरी है तो पैदा होगा। और जरूरी नही है तो नही पैदा होगा। अगर मै सघटन बनाता तो मेरी एक काग्रेस कमेटी बनती और मै उसका अध्यक्ष बनता याने मै सकुचित बन जाता। परन्तु मेरा सघटन नही है, इसीलिए मै व्यापक हूँ, दुनिया का अग हू, दुनिया मे और मुझमे किसी भी तरह का भेद ही मै नही मानता हू। जो अपने अलग-अलग घर और अलग-अलग सस्था बनाकर बैठे है, उनसे मै कहता हू कि आपके घर मे और सस्था मे मेरी हवा का प्रवेश होने दो तो आपका घर शुद्ध होगा।

धर्म-कार्य का अवसर

होता है, तो दूसरे क्षण मे निराशा आती है। एक क्षण मे उदारता रहती है तो दूसरे क्षण मे कजूसी आती है। एक क्षण मे क्राति रहती है तो दूसरे क्षण मे क्रोध पैदा होता है। इस तरह एक ही हृदय के एक क्षण मे अलग-अलग भाव आते हैं, परन्तु मानव-हृदय एक है, उसका अनुभव आयगा। हिन्दुस्तान मे जिस तरह पुण्य-साधनो से राजकीय आजादी हासिल हुई है, वैसे ही सामाजिक क्राति पुण्य साधनो से ही होगी।

: ३ :

जीवन का बुनियादी विचार

इस दुनिया में विविधता है, विपमता भी है। किसी एक का चेहरा दूसरे के चेहरे के साथ नही मिलता है। हरएक का चेहरा दूसरे के चेहरे से अलग होता है, यहा तक कि एक पेड पर जो पत्ते होते हैं, उनमे भी अपनी-अपनी विशेषता रहती है। इस तरह सारी सृष्टि मे विविधता, विचित्रता और विभिन्नता है, परतु यह वाहर की है। अदर से हम एकता ही महसूस करते हैं। प्यास और भूख की भावना सवमे समान रूप से रहती है। प्रेम को भी सभी महसूस करते हैं। कुछ बुनियादी भावनाए सवमे समान-रूप से वास करती है। इसीलिए शास्त्रकारो ने हमे समझाया है कि हम अपने पर से दूसरो का खयाल करे। हम भूख लगती है और उस समय खाना मिलने से हमे खुशी होती है तो दूसरो को खिलाकर खाना, हमारा धर्म हो जाता है। अगर हमे भूख नही लगती होती तो दूसरो को खिलाकर खाने का धर्म हमे नही प्राप्त होता। परतु हमे भूख और प्यास है इसलिए हमे दूसरो की भी भूख और प्यास का ख्याल करना चाहिए। सव धर्मो ने यह सीधी-सादी सी शिक्षा दी है कि आत्मौपम्य भाव से वर्ताव करो। हनुमान रावण के सामने खडा होकर कह रहा था कि तुम भी गृहस्थ हो और रामजी भी गृहस्थ है। तुम्हारे भी पत्निया है और रामजी की भी पत्नी है। इसलिए तुम्हे भी उन भावनाओ का अनुभव है जिनका रामजी को है। खयाल करो

अगर तुम्हारी पत्नी का कोई हरण करता है तो तुम्हे कितना दुख होगा ? यही सोचकर सीताजी को छोड दो तो रामजी इतने क्षमाशील है कि वह तुम्हे क्षमा कर देंगे। इस तरह हनुमान ने रावण को आत्मौपम्य का बोध दिया।

धर्म की बुनियाद

आत्मौपम्य से बर्ताव करो यही तो धर्म की बुनियादी बात है। आज-कल स्पर्धा की बात चलती है, भगवान ने जिसे ज्यादा बुद्धि, शक्ति या सम्पत्ति दी है, उन ताकतो का उपयोग वह व्यक्ति दूसरो को दबाने मे करता है। लेकिन जबतक यह चलता रहेगा तबतक मनुष्य-समाज मे मानवता नही रहेगी। और वह आसुरी समाज बन जायगा। विज्ञान के कारण मानव के हाथ मे कई प्रकार की शक्तिया आई है। सिद्धिया भी आई है। मानव अगर उनका उपयोग आत्मौपम्य से करेगा, तो दुनिया का स्वर्ग बन जायगा। एक जमाना था, जबकि कुदरत के साथ लडने मे मनुष्य की बहुत-सी ताकत खर्च होती थी, क्योकि उसे कुदरत के कानूनो का ज्ञान नही था। आज भी पूरा ज्ञान तो नही है फिर भी कुछ ज्ञान है, इसलिए कुदरत के साथ लडने मे उतनी शक्ति खर्च नही करनी पडती है, जितनी उस समय खर्च करनी पडती थी। इसलिए आज हमारे हाथ मे ऐसी शक्ति आई है, जिससे दुनिया पर स्वर्ग ला सकते है। विज्ञान के साथ हिंसा को जोड दिया तो दुनिया का सहार होगा। मै विज्ञान की बहुत प्रगति चाहता हू,

उतनी वढी हुई नही थी। इसलिए वह हिंसा उतना नाश नही कर सकती थी। विहार मे प्राचीन काल मे भीम और जरासध की कुश्ती हुई थी। उस द्वद्व युद्ध मे जरासध खत्म हुआ और इसी तरह फैसला हुआ। परतु उससे दूसरे लोगो को तकलीफ नही हुई, क्योकि उस समय हिंसा सीमित थी। इसलिए वह हिंसा ज्यादा नाश नही कर सकती थी। परतु आज द्वद्व युद्ध का जमाना नही रहा है। आज हिंसा से कोई मसला हल करने की कोशिश करो तो दूसरे पचास मसले खडे हो जाते है। आज तो भयानक परिमाण मे लडाई होती है। अत हिंसा से आज मसला हल करने का सोचा कि दूसरा मसला खडा हो जाता है। इसलिए विज्ञान के साथ अहिंसा का पथ्य जरूरी है। अगर हम यह पथ्य नही चाहते है तो हमे दवा भी नही लेनी चाहिए। फिर तो विज्ञान की प्रगति को रोकना पडेगा। परतु कोई भी विज्ञान की प्रगति रोकना नही चाहता है और कोई चाहेगा तो भी नही रोक सकेगा, ऐसी आज की हालत है। हम तो चाहते है कि विज्ञान वढे, परतु उसके लिए वहुत जरूरी है कि मानव के मसले मानवता से ही हल किए जाए। इसलिए हिंसा को छोडना होगा और सारे मसले आत्मौपम्य भाव ही से हल करने होगे।

जीवन धर्म साम्ययोग

इस मूल विचार को, इस आत्मौपम्य भाव को, हमने गीता के आधार पर साम्ययोग नाम दिया है। इसीके आधार पर सर्वोदय-समाज का निर्माण करना है। यह जीवन के सब क्षेत्रो मे और सब प्रसगो पर काम मे आ सकने वाला धर्म है। भूमि-दान के मूल मे यही साम्ययोगी विचार है। इस मूल विचार का विवेचन हम यहा करना चाहते है।

आज दुनिया मे जो विचार-प्रवाह शुरू है, उनमे एक तो पूजीवाद का है, जो पुराना विचार है और जिसका दावा है कि वह समाज मे क्षमता पैदा करना चाहता है। दूसरा लोकशाही समाजवाद का विचार है और तीसरा साम्यवाद का है। साम्यवाद का दावा है कि वह सबको समान भाव से जीवन की सब चीज देना चाहता है।

पूजीवाद का मूल विचार : क्षमता

दुनिया मे प्रचलित इन तीनो विचारो मे से हम पहले पूजीवाद को ले। पूजीवाद, जैसा कि मैने अभी कहा, क्षमता का हामी है। वह कहता है, कुछ लोगो की योग्यता कम है, इसलिए उन्हे कम मिलना चाहिए और कुछ लोगो की योग्यता ज्यादा है, इसलिए उन्हे ज्यादा मिलना चाहिए। वह योग्यता के अनुसार पारिश्रमिक देकर समाज मे क्षमता लाना चाहता है। उससे कुछ लोगो का जीवन ऊचे स्तर तक चला गया है, लेकिन बहुत-सारे लोगो का जीवन बिलकुल खाई मे गिर गया है। पूजीवाद के पास इसका कोई इलाज नही है। उसका तो साफ कहना है कि जो नालायक है, वे सिवा इसके कि नालायक बने रहे, और कोई मार्ग नही। और जो लायक है, वे सिवा इसके कि दुनिया के सुख-साधनो से लाभ उठावे, दूसरा कोई मार्ग नही।

इस वास्ते दुनिया दुखी है और इसलिए पूजीवाद के समर्थक भी कम है। फिर भी वह चल रहा है, लेकिन आज नही तो कल, वह टूटनेवाला है।

लोकशाही समाजवाद में बहुसख्या का हित

अब बाकी के दो विचारो के बारे मे। लोकशाही मे हरएक को एक वोट रहता है। वोट के बल पर सारा काम चलता है। परतु उसमे अल्पसख्या की रक्षा नही होती, बहुसख्या की होती है। लोकशाही समाजवाद का कहना है, "उसमें सबकी रक्षा हो सकती है।" परन्तु लोकशाही के कारण जो बुराइया निर्माण होती है, उनको दुरुस्त करने का इलाज समाजवाद के पास नही है। जबतक बहुसख्या की राय से ही अल्पसख्यको के हित की रक्षा करने की कोशिश की जायगी, तबतक पूरा समाजवाद नही आ सकता।

साम्यवाद में वर्ग सघर्ष व वर्ग-नाश

हिसा से प्रतिहिमा ही निर्माण होती है, भले ही थोडी देर वह सिर दबा कर वैठे। उलटे, उसके कारण मानवता का मूल्य घट जाता है, मनुष्यता की प्रतिष्ठा घट जाती है।

साम्ययोग का मूल आत्मा की एकता

साम्ययोग का मानना है कि हरएक मानव मे एक ही आत्मा समान रूप से विद्यमान है। साम्ययोग मनुष्य मनुष्य मे भेद नही करता है। वह तो मानव आत्मा और प्राणिमात्र की आत्मा मे भी बुनियादी भेद नही मानता। इतना ही मानता है कि मानव की आत्मा मे जो विकास मभव है, वह दूमरे प्राणियो की आत्मा में नही हो सकता। मानवो मे भी मवका विकाम ममान नही होता है, यद्यपि शिक्षा से वह सभव है। दूसरे प्राणियो की आत्मा मे शिक्षण के बावजूद भी विकास सभव नही है, परन्तु चूकि मृष्टि-मात्र मे एक ही आत्मा का अधिष्ठान है, अत हो सके वहा तक हम प्राणिमात्र की रक्षा का प्रयत्न करना चाहिए।

साम्यवाद और साम्ययोग मे फरक है, वह यही कि साम्यवाद आत्मा की एकता को नही मानता, लेकिन साम्य-योग उसे मानता है। मानता है इतना ही नही, वल्कि वह उसके आधार पर गहराई मे जाना चाहता है। इसलिए नैतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रो मे इसके क्राति-कारी परिणाम होते है।

सब भगवान का, याने समाज का

जब हम एक बुनियादी आध्यात्मिक विचार ग्रहण करते है तो जीवन की अनेक शाखाओ में हम प्रवेश करते है। हमारी बुद्धि-शक्ति के मालिक हम नही है, भगवान है और चूकि हमारे ये गुण समाज के लिए है, हमे चाहिए कि जो शक्तिया हमारे पाम है, उन्हे हम ईश्वर की देन माने और ममाज को उन्हें अर्पण कर दे। हम तो अपने शरीर के भी मालिक नही है। हम उसके ट्रस्टीमात्र है। साम्ययोग कहता है कि सपत्ति किसी रूप मे भी क्यो न हो, उसके मालिक हम नही है। माम्ययोग और माम्यवाद मे यह वडा भारी फरक है।

आजतक लोग अपने को संपत्ति का मालिक मानते आये। इसमे हित-विरोध निर्माण होता है, परन्तु जहा ट्रस्टीशिप का विचार आता है, वहा पूरी वैचारिक क्राति होती है। याने अपनी-अपनी चीज पर जो मालकी मानते है, वह गलत है और हमारे पास जितनी भी शक्तिया है, वे समाज की सेवा के लिए है, व्यक्तिगत स्वार्थ साधने के लिए नही। अपने स्वार्थ को समाज के चरणो मे समर्पित कर देने मे व्यक्तिगत स्वार्थ भी है। सारे समाज को अपना स्वार्थ अर्पण कर देना और समाज के हित के लिए सतत् प्रयत्न करना ही मेरा स्वार्थ है, यह है नैतिक विशेषता, जो साम्ययोग मे से निर्माण होती है।

नैतिक सेवाओ की कीमत पैसो में नहीं

साम्ययोग के कारण आर्थिक क्षेत्र मे भी क्राति किस प्रकार होती है, यह हम अब देखे।

जो भी शक्तिया हमारे पास है, उन्हे हम अपनी नही मानते। कोई भी व्यक्ति अपनी शक्ति भर समाज का पूरा काम करता है तो, वह रोजी का हकदार हो जाता है। एक आदमी, जो बिना आख का है, अपनी उस कमी के बावजूद जो कुछ बनता है, पूरी शक्ति से सेवा करता है तो वह खाने का हकदार है। आख वालो की अपेक्षा उसकी सेवा की मात्रा कम हो सकती है, जब कि उसने अपने पास की ताकत तो पूरी-पूरी लगा दी। इस-वास्ते शक्ति के अनुसार पोषण मे कमबेशी देने की कल्पना गलत है। पैसा भौतिक वस्तु है, सेवा नैतिक वस्तु है। नैतिक वस्तु की कीमत भौतिक वस्तु से हो नही सकती। क्या डूबनेवाले को बचानेवाले की उस मिनट की सेवा का मूल्य रोजी के हिसाब से आका जा सकता है? मा अपने बच्चे की सेवा करती है, लड़का अपने पिता की सेवा करता है।

उसकी कीमत नही हो सकती ।

सेवा में भिन्न प्रकार, लेकिन आर्थिक कीमत समान

नैतिक मूल्यो के समान आर्थिक क्षेत्रो मे भी श्रम का मूल्य समान होना चाहिए। पर आज इसके बिलकुल उलटा होता है और शारीरिक काम की अपेक्षा बौद्धिक काम की मजदूरी ज्यादा दी जाती है । उसकी प्रतिष्ठा भी ज्यादा होती है । लेकिन इस तरह का फरक बिलकुल बेबुनियाद है, क्योकि साम्ययोग का विचार आत्मा की समानता पर निर्भर है । आर्थिक क्षेत्रो मे भी वह कोई भेद स्वीकार नही कर सकता । हा, सेवक की भूमिका के अनुसार सेवा के प्रकार मे भेद हो सकते है । जो सेवा मा कर सकती है, वह पुत्र नही कर सकता और जो सेवा पुत्र करता है, वह मा नही कर सकती । जो सेवा स्वामी करता है, वह सेवक से बन नही आती और सेवक से जो सेवा बन आती है, वह स्वामी से नही बन सकती । भाई जो सेवा कर सकता है, वह बहन नही करती, बहन का काम भाई नही कर सकता । इस तरह व्यक्ति-भेद और शक्तिभेद के अनुसार सेवा-भेद भले ही हो, लेकिन चिन्ता सबकी समान होनी चाहिए । हरएक अगुली कम-बेशी काम देती है, परन्तु वे है सब समान । एक से जो काम होता है, वह दूसरे से नही होता । इसी तरह समझना चाहिए कि समाज में हरएक की सेवा का प्रकार भिन्न हो सकता है, परन्तु उसका आर्थिक मूल्य समान ही होना चाहिए ।

हमने देखा कि साम्ययोग के सिद्धात के अनुसार जब नैतिक मूल्यो में फरक होता है तो आर्थिक क्षेत्र मे भी फरक होना चाहिए । हरएक को विकास का पूर्ण मौका मिलना चाहिए और तालीम का अवकाश मिलना चाहिए । विद्यार्थी तालीम ग्रहण करेगे अपनी अपनी ग्रहण-शक्ति के अनुसार । परन्तु यह नही हो सकता कि अमुक लडका गरीब का है, इसलिए उसकी तालीम का प्रबध नही और अमुक श्रीमान का है, इसलिए उसकी तालीम का प्रबध है । अगर इस तरह हम समान मूल्य नही रखेंगे तो सबका विकास नही हो सकेगा । समान मौका मिलने पर जिसमे जो योग्यता होगी, वह उस धधे मे प्रवेश कर सकेगा । मजदूरी का परिमाण कम-बेशी होने से विकास गलत

तरीके से होगा और दूसरे क्षेत्रो का नाहक आकर्षण होगा जैसा कि आज हो रहा है। समान वेतन से यह वृत्ति रुकेगी।

आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक समानताए

इस विचार का आर्थिक क्षेत्र मे यह नतीजा आयगा कि गाव-गाव सपूर्ण स्वावलबी बनेगे। अनाज, कपडा, घी, दूध आदि प्राथमिक आवश्यकताओ की सभी चीजे हर गाव मे पैदा हो कर हर गाव स्वय सपूर्ण बनेगा। यह भी पूर्ण होगा वह भी पूर्ण होगा। दोनो की पूर्णता से समता का निर्माण होगा। अगर यह भी अपूर्ण रहा और वह भी अपूर्ण रहा, तो दोनो की अपूर्णता से समता का निर्माण नही हो सकता। बुनियादी चीजो की पूर्त्ति देहातो मे ही होनी चाहिए। भगवान ने सबको परिपूर्ण बनाया है। अकल और ताकत कम-बेशी होती है, परन्तु भगवान् की योजना इतनी विकेद्रित है कि सबका विकास हो सकता है। वैसी ही विकेद्रित योजना हम आर्थिक क्षेत्र मे भी चाहते है। आर्थिक क्षेत्र मे अगर समता नही होगी तो उच्च-नीच का भेद बढेगा परावलम्बन पैदा होगा और एक आत्मा दूसरे आत्मा की गुलाम बनेगी। इसलिए हम विकेद्रित अर्थ-व्यवस्था चाहते है।

इस तरह राजनैतिक क्षेत्र मे भी हमारे आज के मूल्य बदल जायगे। हम न सिर्फ शोषण-हीन, बल्कि 'शासन-हीन' समाज-रचना चाहते है। सर्वोदय की कल्पना के अनुसार शासन गाव-गाव मे बट जायगा, यानी गाव-गाव मे अपना राज होगा। मुख्य केद्र मे नाममात्र के लिए सत्ता रहेगी। होते-होते इस तरह शासन-रहित समाज बन जायगा।

योग परिवर्तन लाना चाहता है। इसी को क्राति कहते हैं। आजकल हिंसा को ही क्राति समझते हैं, परन्तु जहा बुनियादी चीजो मे क्राति नही, वहा ऊपर-ऊपर के परिवर्तन को क्राति कहना गलत होगा। क्राति तभी होती है, जब हम अपने नैतिक जीवन मे परिवर्तन करते हैं। हमारा दावा है कि साम्य-योग नैतिक मूल्यो मे परिवर्तन करता है, क्योकि उसकी बुनियाद आध्यात्मिक है और वह जीवन की सारी शाखा-उपशाखाओ मे आमूलाग्र क्राति करते हैं।

रामगढ, १३ जलाई १९५३,
बाराहार, २६ सितम्बर १९५३

: ४ :

युग-धर्म की पुकार

वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि इस दुनिया मे मनुष्य का जीवन कोई आठ-दस लाख साल से चल रहा है। उसके पहले तो न मालूम क्या था। मानव के पूर्व रूप के बारे में हम कुछ भी नही जानते। लेकिन वैज्ञानिको का खयाल है कि आज मानव को जिस रूप मे हम पाते है, उस रूप मे आठ-दस लाख साल से वह काम करता आ रहा है। वैसे तो देह के लिए खाना-पीना इत्यादि जानवरो को जैसे करना पडता है, मानव-देह को भी उसकी जरूरत होती है। उसके लिए मानवो को जो प्रयत्न करने पडते है, दूसरे प्राणियो को भी वे करने पडते है। मानव अपने-अपने ढग से ऐसे प्रयत्न सर्वत्र करता ही है। लेकिन मनुष्य का समाधान केवल खाने-पीने से तो नही हो सकता। उसे विचारो की भी कुछ-न-कुछ भूख होती है। आजतक जितने विचार-प्रवाह चले और विचारो मे जो सुधार तथा परिवर्तन हुए, उन सबने मनुष्य को प्रेरणा दी है। कुछ-न-कुछ मौलिक विचार उसे निरन्तर सूझते रहे है।

भगवान् बुद्ध की विचार-क्राति

गुजरे हुए जमाने के बाद अभी, करीब दो हजार साल पहले, भगवान् बुद्ध ने पशु-हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाई और लोगो को समझाया कि

पशुओं से जो मदद हम ले सकते हैं, वह लेनी चाहिए और उन्हें जो मदद दे सकते हैं, वह देनी भी चाहिए, परन्तु उनकी हिंसा मनुष्य के लिए शोभादायी नहीं है। वस्तुतः वह कोई बाहरी चीज नहीं। पशु-हिंसा का एक निमित्त था। उसके पीछे तो करुणा का एक विचार था। आस-पास की सृष्टि के साथ कारुण्य-भाव से मनुष्य को व्यवहार करना चाहिए इस विचार का प्रवर्तन वे करना चाहते थे। उसका निमित्त मात्र पशु-हिंसा विरोध था। इससे समाज में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ जिसका परिणाम हिन्दुस्तान पर एक हजार साल तक होता रहा और आज भी हम उस विचार की इज्जत करते हैं। हमारे समाज ने उसको मान लिया है। यद्यपि पशु-हिंसा बिलकुल रुक गई है सो बात नहीं, फिर भी समाज ने उस विचार को ग्रहण कर लिया। इस तरह का क्रांतिकारी परिवर्तन होने के बाद फिर सम्राट अशोक ने, जिनके राज-चिह्नों का हमने अब उपयोग शुरू किया है, बुद्ध के विचार का प्रसार किया। जब हिन्दुस्तान के जीवन में उस विचार को मान्यता मिली, तब उसे राज्यकर्ताओं ने ग्रहण किया। फिर वह हिन्दुस्तान के बाहर भी फैला और उसने दूसरे देशों को हिम्मत दी।

जीवन की बुनियाद विचार

मैंने यह मिसाल इसलिए दी कि मैं समझाना चाहता हूँ कि किस तरह विचार की प्रेरणा मनुष्य को उत्स्फूर्त करती है। मनुष्य का शारीरिक जीवन तो चलता ही है, परन्तु मनुष्य का जो उत्थान होता है उसके पीछे एक विचार होता है। विचार के कारण आन्दोलन होते हैं जो निर्माण होते हैं और नया जीवन बनता है.

रूप मे एक विचार होता है। उमी को हम धर्म या नीति कहते है। वुनियाद विचार की होती है और उसी पर जीवन की इमारत खडी होती है।

विचार को सगुण-साकार रूप देने की जरूरत

मै अभी जो काम कर रहा हू, उमका वाहरी रूप तो जमीन के मसले को हल करने के काम मे दीख पडता है, परन्तु उसके पीछे एक विचार है, जिसके प्रवर्त्तन के लिए मैने एक वाहरी काम लिया है। वाहरी काम किये विना विचार निर्गुण और निराकार रहता है। अत विचार-प्रचार और विचार-प्रकाशन के वास्ते वाह्य काम लेना जरूरी है। इमीलिए मैने हिन्दुस्तान का आज का अहम सवाल हाथ मे लिया और अपने विचार का प्रचार करने के लिए मै निकला हू।

एक का कल्याण दूसरे का अकल्याण नहीं कर सकता

मैने कई वार कहा है कि भगवान् वुद्ध ने जो धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन चलाया था, उन्ही के चरण चिन्हो पर चल कर मै वैसा ही कर रहा हू। इस विचार का नाम है सर्वोदय। इसके मानी है, एक के भले मे सवका भला। किमी एक के हित के विरुद्ध दूसरे का हित हो नही सकता। किसी एक जमात, कौम, वर्ग या देश के हित के विरुद्ध भी दूसरी जमात, कौम, वर्ग या देश का हित नही हो सकता है। इन सवके हितो मे परस्पर विरोध है, यह खयाल ही गलत है। एक के हित मे दूसरे का हित ही है। हितो मे विरोध हो नही सकता। लेकिन अगर हम अहित को ही हित मान ले और अकल्याण मे ही कल्याण समझ ले तो तथाकथित हितो मे विरोध हो सकता है। मै अगर वुद्धिमान हू, मेरी सेहत अगर सुधरती है, तो उससे आपका भला ही होनेवाला है। मुझे प्यास लगने पर पानी मिलता है, तो उससे मेरा भला होता है और आपका भी भला होता है। अगर हम हितो मे विरोध होने की कल्पना करे, तो हित की वात मिथ्या हो जायगी। पडोसी को दुखी वनाकर हम सुखी नही हो सकते। उसमे हमे हजार प्रकार से हानि होनेवाली है। जो दूसरो को लूट कर या तकलीफ देकर सुखी वनना चाहेगा, वह चैन से खाना भी नही खा सकेगा। उसके शरीर मे रोग प्रवेश करेगे और उसे डाक्टरो की

गरज लेनी पड़ेगी। घर में पैसा आया कि उसके साथ अशांति आई। खाना उसे पचेगा नहीं। उसे रोग सतायेंगे। जो घर में पैसे लूट कर लाता है और नव निर्माण करने की कोशिश करता है वह कभी सुखी नहीं हो सकता। जो पैसा इस तरह बटोर कर घर में लाया जाता है वह घर को आग लगा देता है। इसलिए मैं यह महान विचार समझाने आया हूं कि दूसरों के हित में ही अपना हित है।

'दान' शब्द का मूल और सही अर्थ

लोग कहते हैं कि मैं गरीबों का मित्र हूं। मैं उन्हें कहता हूं जी हां, क्योंकि मैं खुद गरीब हूं। कुछ लोग मुझ पर इल्जाम लगाते हैं कि मैं श्रीमानों को बचाने वाला हूं। मैं उनको भी कहता हूं कि जी हां, परन्तु मैं उनको चाहे जिस तरह से नहीं बचानेवाला हूं। मैं तो सही तरीके से ही उन्हें बचाने-वाला हूं। मैं जिस धर्म की दीक्षा दे रहा हूं उसमें यह विचार है कि हमारे घर में हम जितने लोग दिखाई पड़ते हैं वे उतने ही नहीं हैं

राज्य-क्रांति की बुनियाद : विचार-प्रवर्त्तन

लोग पूछते हैं कि यह काम तो सरकार के जरिये हो सकता है, फिर आप उससे क्यों नही यह करवाते? मैं कहता हू, कि भाइयो, आपने ही सरकार चुनी है और मैंने तो ऐसा करने मे सरकार के हाथ रोके नही हैं? सरकार को तो अपना कर्त्तव्य करना ही है पर क्रांतिकारी विचार को फैलाने का काम सरकार नही कर सकती । जब विचार लोक-मान्य होगा तभी सरकार यह काम करेगी और उसको यह करना होगा। अगर वह ऐसा नही करेगी तो बदल जायगी। जहा लोक-सत्ता चलती है, वहा सरकार नौकर होती है । अगर आपको कोई बात समझनी हो, तो आप वह नौकर को समझाते है या उसके मालिक को? मालिक को समझाने पर अगर उसको बात जच गई, तो वह अपने मुनीम को हुक्म देगा कि दान-पत्र तैयार करो। इसीलिए मैं मालिक को याने आपको समझा रहा हू। मालिक आप है। मेरा विचार अगर आपको जचेगा तो आप अपने नौकर से काम लेंगे। अगर वह काम नही करेगा तो आप उसे हटा देंगे और तब दूसरा नौकर आयेगा। इस तरह की उथलपुथल तो होनेवाली ही है। लेकिन लोक-सत्ता में सरकार को शून्य कहा जाता है और शून्य की अपनी कोई कीमत नही होती। अगर वह एक के आकडे पर चढ गया तो दस हो जाता है, दो पर चढा तो बीस और तीन पर चढा तो तीस, परन्तु दस-बीस-तीस बनाने की शक्ति खुद शून्य मे नही है। आप ही उस शून्य को दस-बीस बना सकते है। स्वतन्त्र रूप मे उस शून्य की कोई कीमत नही। उसी तरह लोक-सत्ता मे लोग ही सबकुछ है और सरकार कुछ भी नही है। जो सरकार के जरिये काम करने की बात करते है, वे जानते ही नही कि विचार-प्रवर्त्तन कैसे होता है। बुद्ध भगवान ने लात मार कर राज्य तज दिया और ज्ञान प्राप्ति के बाद उन्होंने पहली दीक्षा एक राजा को, याने अपने पिता को दी। फिर सम्राट् अशोक आये और उसके बाद हिन्दुस्तान मे एक राज्यक्रांति हुई। जिन राजाओ ने उस विचार को नही माना, वे गिर पडे। जो लोग खुद को कम्युनिस्ट कहते है, उनसे मै पूछना चाहता हू कि मार्क्स के हाथ मे कौनसी राज-सत्ता थी? केवल

उसके विचारो से ही तो क्राति हुई। विचार का बीज जब लोक-हृदय की गहराई मे पहुच जाता है, तब सरकार उसपर अमल करती ही है और अगर न करे तो वह गिर जाती है। अत: भाइयो, विचार-प्रवर्त्तन का महत्व समझो।

सरकार लोकेच्छा के कारण ही टिकेगी

आजकल हर कोई फल चाहता है, पर वह यह नही जानता कि उसके लिए बोना भी पडता है। बिना बोये फल पाओगे कैसे ? फ्रास मे राज्य-क्राति हुई तो उसके पीछे रूसो और वाल्टेयर के विचार थे। मार्क्स ने एक विचार का प्रचार किया और फिर लेनिन ने उस विचार के आधार पर क्राति की। विचार-प्रचार के बाद ही राज्य-क्राति होती है। मेरा विश्वास है कि आज की हमारी सरकार इतनी विचार-हीन नही है कि अगर समाज मे किसी अच्छे विचार को लोग पसन्द करते है, तो भी उसपर वह अमल न करे। अगर वह अमल नही करती है, तो वह टिकनेवाली भी नही है और ऐसा होगा तो मुझे कोई दु ख भी नही होगा। हा, इतना तो लगेगा कि वे गाधीजी के शिष्य थे और फिर भी विचार को समझ नही सके, परिणामस्वरूप उन्हे राज्य छोडना पडा। और तब यह बडे खेद की बात होगी। लेकिन मै तो आप को यही समझाना चाहता हू कि मालिक अगर चाहे तो अपने नौकर को बदल सकता है।

नही चलाया तो वाहर के वुरे विचार यहा के ममले हल करने के लिए आयगे और अगर हमने यहा के ममले अपने ढग से हल किये तो यहा का विचार भी यही पर नही रुक सकता, वह वाहर जानेवाला ही है और दुनिया भी उसको माननेवाली है। इधर-से-उधर और उधर-से-इधर विचार आते-जाते रहते है। ऐसा भी विज्ञान शायद निकल सकता है कि उसके द्वारा इधर की वायु उधर जाने से रोकी जा सके। परन्तु विचार को तो कोई भी नही रोक सकता। इसलिए या तो हम दुनिया को आकार देनेवाले है, या दुनिया हमको आकार देनेवाली है। दो ही मार्ग आपके सामने है। तीसरा है ही नही। या तो आप अपने विचारो की वुनियाद पर दुनिया को आकार देने की हिम्मत करो या दुनिया के हाथ की मिट्टी वनो। फिर दुनिया जो आकार आपको देगी, उसे आपको कुवूल करना होगा। इसलिए हम या तो एक नया स्वतन्त्र विचार निर्माण करेंगे, जो दुनिया को आकार देगा, या फिर दुनिया हमको आकार देगी।

डालटनगज, १६ नवंवर १९५२

: ५ :

धर्म का विजय-मंत्र

आज से ढाई हजार साल पहले आपके इस प्रदेश में एक महान् पुरुष निर्माण हुआ था। उसने विश्व-विजय कैसे हासिल करना, इसका एक मत्र हमे दिया है। उनके सदेश का परिणाम सिर्फ हिन्दुस्तान पर ही नही, वल्कि दुनिया के दूसरे देशो पर भी हुआ। और आज, जव कि दुनिया मे लडाई-झगडे और कशमकश चल रही है तो उनके विचारो का स्मरण दुनिया को अधिक हो रहा है। दुनिया के सारे विचारक आज उसी नतीजे पर आ रहे है, जिस पर भगवान वुद्ध ढाई हजार साल पहले आ रहे थे। उन्होने कहा

"अक्रोधेन जयेत् क्रोध, असाधु साधुना जयेत्।

आपके सामने अगर गुस्सा नजर आता हो और अगर हम उसे जीतना चाहते हों, उसपर फतह हासिल करना चाहते हों, तो हममें परम शांति चाहिए। शांति से ही हम क्रोध को जीत सकते हैं। भगवान् बुद्ध ने किसी को भी क्रोध के वश होने की बात नहीं कही थी। जो समझता है कि दुर्बलता सिखाई, वह गलत समझता है। तलवार देखकर जो भाग जाता है या कायरता से तलवार के वश होता है उसकी अहिंसा का उन्होंने प्रचार नहीं किया। उन्होंने तो हमें विचार-मंत्र दिया था कि अक्रोध से क्रोध को जीतना चाहिए। यदि हम दूसरे का शस्त्र लेकर उसी पर हमला करना चाहते हैं तो दुनिया में शांति नहीं निर्माण हो सकती। अक्रोध से लड़नेवाला ही क्रोध को जीत सकता है। परशुराम ने भी यह प्रयोग किया था। उन्मत्त क्षत्रियों को सबक सिखाने के लिए उन्होंने ब्राह्मण होते हुए भी शस्त्र धारण किया और एक बार निःक्षत्रिय पृथ्वी बनाई। लेकिन उससे क्षत्रिय नष्ट नहीं हुए। इसलिए फिर से उसने शस्त्र धारण किया। उसने इक्कीस मर्तबा क्षत्रियों को नष्ट करने की कोशिश की फिर भी क्षत्रिय नामशेष नहीं हुए। वे कैसे नामशेष हो सकते हैं? जब परशुराम ने खुद ने हाथ में शस्त्र लेकर क्षत्रियों की वृद्धि की थी? वह खुद क्षत्रिय बन गया था। जैसा बीज बोया वैसा फल पाया।

मे ज्ञान होना चाहिए। अज्ञान के सामने अज्ञान खडा करके हम उसे नही जीत सकते।

हिंसा और विज्ञान

लेकिन जहा समाजव्यापी कार्य करना पडता है, राष्ट्रीय दृष्टि से काम करना पडता है, वहा मनुष्य अभीतक इस निर्णय पर नही आया कि अक्रोध से क्रोध को जीता जा सकता है। उस क्षेत्र मे अभी भी प्रयोग चल रहे है। अमेरिका और रूस ऐसे प्रयोग कर रहे है। दूसरे छोटे-छोटे देश भी उनके चरण-चिन्हो पर चलते है और छोटे-मोटे प्रयोग करते है। वे प्रयोग क्या है? एक देश के पास एटम वम है तो दूसरा उससे भी वढकर एटम वम या हाइड्रोजन वम वनाने की कोशिश करता है। इस तरह उत्तरोत्तर सहारक शस्त्रो का सशोधन चलता है। और वे समझते है कि इससे शाति निर्माण हो सकेगी, दुनिया को सुख दे सकेंगे और 'एकविश्व' वना सकेंगे। और इसीलिए उत्तम-से-उत्तम शस्त्रो से अपने को सुसज्जित रखने की कोशिश करते है। लेकिन इन प्रयोगो मे शाति नही, अशाति ही वढ सकती है। विज्ञान के इस युग मे जो शस्त्र वढायगे वे दुनिया का खातमा ही करेंगे। लेकिन वे ऐसा इसलिए कर रहे है कि वे इस वात को समझते नही है। वे एक प्रवाह मे वह रहे है। विश्वयुद्ध का सूत्र एक पुरुप के या थोडे-से पुरुषो के हाथ मे नही रहता। लेकिन वे सारे एक प्रवाह मे वह जाते है। वे अपने प्रकृति के अनुसार काम करते है। इसीलिए वह कोई नियोजन या आयोजन नही होता, अनुवर्तन हो जाता है। गत महायुद्ध मे चर्चिल से कइयो ने पूछा कि आप युद्ध के उद्देश्य वताइये।' कुछ दिन तक उसने कुछ तो वताया, लेकिन एक दिन साफ कहा कि युद्ध का उद्देश्य विजय हासिल करने के सिवाय और क्या हो सकता है? इसका मतलव यह है कि हम युद्ध मे फस गये है और मरते दम तक लडने के सिवाय हमारे हाथ मे कुछ नही है। इस तरह सव लोग युद्ध मे फस जाते है। जो जीतता है वह भी हारता है और जो हारता है, वह खत्म हो जाता है। इस युद्ध मे अव जीत भी हार वन गई है। युद्ध के वाद फिर शाति का जमाना आता है, लेकिन वह

शांति नहीं होती है। निद्रा या थकान की प्रतिक्रिया होती है। दिन भर उद्योग करने के बाद व्यक्ति के लिए रात को सोना लाजिमी है। लेकिन सोने के बाद दूसरे दिन वह फिर से उत्साहित होकर काम करता है। इसी तरह युद्ध और शांति का चलता है। अब लोग कबूल भी करते है और कहते है कि शांति नही, ठंडी लडाई चल रही है। आज आप कोई भी अखबार खोल कर देखिये तो किसी का खून हुआ है, किसी को गद्दी पर से उतारा गया है, किसी को अर्धचन्द्र लगाया है—यही सारा किस्सा उसमे होगा ।

उपाय

लेकिन इसके लिए क्या उपाय है ? मानव को अब चिन्तन करने की जरूरत है। मानव का दिमाग अगर सोचने लायक किसी देश मे है तो वह भारतवर्ष में है, क्योंकि यहा सस्कारो का एक प्रवाह चला आया है। यहा पर कुछ गुणो का विकास हुआ है। हरएक देश के अपने-अपने गुण होते है। भारत के गुण भारतीयत्व याने अहिंसा, निर्वैर-वृत्ति, यही है। वह तो विजय का साधन है। जो हार मानता है, डरपोक बन कर चुप बैठता है। आलसी है, वह कभी निर्वैर-वृत्ति वाला नही बन सकता। वह अहिंसा अन्दर से रखता है, लेकिन उससे तो बेहतर वह है, जो बाहर से लड लेता है। "मरणान्तानि वैराणि"—मरने के बाद उनका वैर खतम हो जाता है। मन के अन्दर वैर रखने वाला अहिंसक नही है। वह तो बहुत ही भयानक है। जो बाहर से नहीं लडता, वह भयकर हिंसक है। निर्वैरता निष्क्रियता नही है।

इस विजय-धर्म का प्रवर्त्तन बुद्ध ने किया। केवल एक तत्व-विचार का प्रचार नही किया, न किया जा सकता है। तुलसीदासजी ने कहा है—'सरसै ब्रह्म-विचार प्रचारा।' भक्ति, कर्म और तत्व विचार का त्रिवेणी सगम जिनमे है वह सच्चा भक्त है। भक्ति को उन्होने गगा कहा, कर्म को यमुना और तत्व-विचार को सरस्वती नदी। ब्रह्म-विचार का प्रचार याने गुप्त सरस्वती नही। इसीलिए केवल ब्रह्म का तत्व-विचार अव्यक्त है, व्यक्त नही है। उसे व्यक्त करना है तो कोई प्रत्यक्ष कार्य, व्यावहारिक मसला हाथ मे लेना चाहिए और उसके साथ-साथ फिर तत्व-विचार का प्रचार हो जाता है। हम बुद्ध का अनुसरण कर रहे है। यह धर्म-चक्र को प्रवर्त्तने का काम है। मै तो तुच्छ हू। बुद्ध ने जो किया वही हम भी कर रहे है। भूमिहीनो की समस्या इसीलिए हमने आज उठाई है।

प्रेम से ही मसला हल होगा

जिन्होने सारा जीवन कुटुव के प्रेम के आधार पर बिताया, प्रेम के अनुभव के विना जिनका एक भी दिन नही जाता है वे ही मुझसे पूछते है कि क्या प्रेमशक्ति से वह मसला हल होगा? मै कहता हू कि मानव मे प्रेम-शक्ति है या द्वेष-शक्ति है, इसका फैसला एक कसौटी पर रखकर हम कर सकते है। मानो, किसी का खून हुआ तो फौरन तार जाता है और अखवार में भी वह वात छप जाती है। लेकिन इससे उलटा दृश्य अगर किसी ने देखा कि कोई माता अपने वच्चे को प्यार से दूध पिला रही है, वीमार वच्चो के लिए रात को लगातार दस-दस दिन जाग रही है, तो क्या उस दृश्य का आप तार भेजेगे? और अखवार वाले भी छापेगे? लेकिन वह क्यो नही होता है? इसलिए कि प्रेम तो मनुष्य का स्वभाव है। लेकिन उसके विरुद्ध कोई चीज वनी तो उसका रिकार्ड इतिहास मे आता है और अखवार में छापा जाता है। मनुष्य का जीवन प्रेममय है। प्रेम से ही आदि से अन्त तक मनुष्य रहता है। उसका जन्म प्रेम से होता है, प्रेम से उसका पालन होता है और प्रेम मे ही उसकी मृत्यु होती है। जिस तरह समुद्र की लहरें कहीं भी जाय, जलमय ही होती है, उसी तरह मनुष्य-जीवन भी प्रेममय है। तब भी

मनुष्य कैसे संदेह प्रकट करते हैं कि प्रेम से कभी भूमि का मसला हल हो सकता है? वे कहते हैं कि जिन्होंने आजतक गरीबों को चूसा वे क्या आज बदल जायंगे? लेकिन वे अज्ञान के कारण चूसते हैं। बच्चा कभी-कभी दूध पीते हुए माता का स्तन चूसते-चूसते उसे दांत लगा देता है, और फिर माता थोड़ी देर के लिए उसे दूर करती है। लेकिन वह अज्ञान के कारण ऐसा करता है। अगर श्रीमान् मनुष्य भी देखेगा और उसे भान कराया जायगा कि गरीब लोग उसी के कारण दुखी हो रहे हैं, तो वह फिर ऐसा नहीं करेगा।

कोई पूछते हैं कि क्या व्याघ्रों में और सिंहों में भी प्रेम होता है? मैं कहता हूं 'हां दोनों में होता है। दोनों भी अपने बच्चों का प्रेम से पालन करते हैं। प्रेम तो सभी प्राणियों में होता है। लेकिन मनुष्य तो सदैव प्रेम से जीता है। सिंह जब अपने भक्ष्य पर हमला करता है तो उसे भक्ष्य पर दया नहीं आती। वह भक्ष्य भागता है, इसलिए उसे गुस्सा आता है। लेकिन क्या मनुष्य भी वैसा करेगा? अगर कोई मटरा हमारे मुंह में जाने के पहले भागने लगेगा तो हम उस पर भी सिंह के जैसा हमला करेंगे। क्योंकि उसका संबंध क्षुधा से जोड़ा गया है।

दुर्जन भी सज्जन वन सकता है

लोग अकसर पूछते है कि अत्यन्त दुराचारी फौरन कैसे भक्त वन सकता है? लेकिन वह दुर्जन तो परिस्थितिवश दुराचारी वनता है। दुराचारी के प्रभाव मे ही वह जाता है। लेकिन जिस क्षण उसे उसका भान हो जाता है, उसे वस्तु का स्वच्छ दर्शन हो जाता है, उसी क्षण वह वदल जाता है। इसके लिए फिर कोई निमित्त मात्र वन जाता है, जो उसे इसका दर्शन कराता है। सच्चे दुर्जनो की एक खूवी है। इसीलिए मेरी उनपर अधिक श्रद्धा है। वे अज्ञान के कारण दुराचारी होते है। उनमें दभ या ढोग नही होता है। अत्यन्त दुराचारी और सदाचारी दोनो अत्यन्त निकट रहते है, जैसे एक वर्तुल के दो सिरे। इसीलिए उनमे परिवर्त्तन होना विलकुल आसान होता है और दुर्जन अत्यन्त अल्पकाल मे महान सज्जन वन सकते है। मनुष्य की मानवता मनुष्य के हृदय की मानवता और सज्जनता मे अगर हमारी श्रद्धा नही है तो यह मानव का जीवन जीने लायक नही है। फिर हम सवको गगाजी में जाकर डूव मारना चाहिए। सत्य का कभी नाश हो सकता है? असत्य की कोई हस्ती ही नही। दुर्गुण शरीर के होते है और सद्गुण आत्मा के होते है। शरीर वदलता है, इसलिए दुर्गुण भी वदलते है। लेकिन आत्मा तो स्थिर है। इसलिए सद्गुण भी स्थिर है। हस के समान हमे सद्गुणो को चुन लेना चाहिए। जो इसको पहचानता है, वह वडा भारी काम कर सकता है।

क्राति का सही अर्थ

क्राति तो सक्राति होनी चाहिए और उसके लिए अच्छे साधन चाहिए, जो हाथ मे तलवार लेगा वह तो दकियानूस और पुराण-मतवादी सावित होगा। अगर मै हाथ मे तलवार लेता हू तो मै जिसके खिलाफ लडना चाहता हू,उसी की छाया वन जाता हू और लडाई मे उसे खत्म करने के वाद भी उसकी आत्मा मेरी आत्मा मे प्रवेश करती है और वह हमेशा के लिए जिन्दा रहता है। फिर वह जितना दुर्जन था, उतना ही मै वन जाता हू। इसलिए जहा साधन और साध्य, दोनो मे ही परिवर्त्तन हुआ है वहा सम्यक् क्राति या सक्राति होती है। सूर्यनारायण दक्षिण को छोड

कर बिलकुल ही दूसरी तरफ जाता है तब हम उसे सन्निपात कहते हैं। अगर हम शस्त्र लेकर उलटी बातें करते हैं तो जिनके खिलाफ हम लड़ना चाहते हैं उन्हीं का उद्देश्य लेते हैं और इसीलिए हमारे उद्देश्यों का उलटा परिणाम आ जाता है। काशी का जप होने पर भी अगर रास्ता कलकत्ते का लिया जाय तो हमें कलकत्ता ही पहुंचना लाजिमी है। हम काशी नहीं जा सकते। इसी तरह अगर हम औजार और शस्त्र पुराने ही लेते हैं और अच्छे उद्देश्य रख कर दुश्मनों से लड़ते हैं तो मैं कहता हूं कि आपके उद्देश्य तो अच्छे हैं लेकिन आप भोले हैं। इसलिए मुझे आप पर दया आती है गुस्सा नहीं आता। जिन शस्त्रों से पूंजीवादी लड़ते हैं उन्हीं से हम लड़ेंगे तो उसमें उन्हीं की जीत होना लाजिमी है।

गांधीजी ने यद्यपि कई सालों से अहिंसा का प्रयोग चलाया था, फिर भी उन्होंने कहा कि चंपारन में मुझे अहिंसा देवी का साक्षात्कार हुआ। बिहार की मिट्टी में वह गुण है ही। यह भूमि बुद्ध भगवान् की और जनक की भूमि है। महावीर ने जहां प्रचार किया था और चक्रवर्ती अशोक जहां निर्माण हुए थे, ऐसी यह भूमि है। उनके वचन यहां भी हैं। शब्द अमर हैं। वह हवा में होता है। हमें सिर्फ उनको रेडियो के समान पकड़ने का तरीका मालूम होना चाहिए। अगर शब्द इतना नित्य व्यापक है, जो मिटता नहीं तो विचार कैसे मिट सकता है? क्योंकि वह तो अत्यन्त शक्तिशाली होता है। इस भूमि में बुद्ध का यह विचार फैला हुआ है कि दूसरों के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी बनो।

पैदा होता है और इसीलिए उसको भी दोनो हाथो से बाहर फेक देना चाहिए। जैसे फुटबाल का खेल होता है, उसमे मेरे पास गेंद आया और मैंने उसको अपने पास ही रखा तो खेल खत्म हो जाता है, इसीलिए मेरे पास गेंद आते ही मेरा कर्त्तव्य हो जाता है कि फौरन उसे लात मारो और दूसरे के पास फेंक दो। फिर वह भी उसे तीसरे के पास फेंकेगा। इस तरह खेल चलता रहेगा। इसी तरह हमारे पास सपत्ति आई कि हमे उसे लात मारकर दूसरे के पास फेक देनी होगी। फिर वह भी उसको तीसरे के पास फेंकेगा। और इससे समाज में जीवन का खेल अत्यन्त सुखमय होगा। यह व्यावहारिक बुद्धि है। सन्यास नही है। यह तो एक धर्म-कार्य है। मै तो केवल एक प्राथमिक भूमिका समझा रहा हू। सारे समाज की सपत्ति बढाओ, यह मूल धर्म हम समाज में प्रचारित कर रहे है। यह कोई कठिन बात नही है। दोगे दो हाथो से, पर पाओगे अनन्त हाथो से, क्योकि आपको तो भगवान ने दो ही हाथ दिये है, लेकिन समाज के अनन्त हाथ है। अगर आप दो हाथो से नही दोगे तो कुछ भी नही पाओगे।

मेरा विश्वास है कि लोग देने वाले है। उनके लिए देना लाजिमी है। न देने की कोशिश करने पर भी उनके हाथ नही रुक सकते, क्योकि इस काम के पीछे एक सत्य और बुनियादी धर्म-विचार है। यह विचार युग की पुकार के साथ मिल गया है।

आरा, ३ अगस्त १९५२

: ६ :

धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन की प्रक्रिया

इस मुल्क ने अपनी आजादी एक अनोखे ढग से हासिल की, इसलिए यहा एक नैतिक ताकत निर्माण हुई। आज भी हिन्दुस्तान मे कोई ताकत पैदा हो सकती है तो वह नैतिक ताकत ही। हम सबको यह धर्म सिखाना चाहते है कि भूखे पडोसी की चिन्ता करना हमारा कर्त्तव्य है। आसपास के लोगो में भूख, अज्ञान और बीमारी है तो जिनके पास धन, बुद्धि और शक्ति

है। ऐसे लोगो को कभी दुख महसूस नही होना चाहिए। इसी को हम हृदय-परिवर्त्तन कहते है।

नैतिक दबाव और हृदय-परिवर्तन एक

नैतिक दबाव मे और हृदय-परिवर्तन मे फर्क करना ही गलत है। हजारो गरीबो ने जो दान किया उसका प्रभाव बडे लोगो पर पडा। हृदय-परिवर्तन हिसाब से नही होता है। एक मनुष्य का हृदय-परिवर्तन हुआ तो आसपास के पचास लोगो पर उसका असर होता है। यहा पर एक नाना भगत पैदा हुआ, तो उसने हजारो को भक्त बनाया। इसी को मनुष्य के विचार का दबाव कहते है, इसी को लोक-लज्जा कहते है। यह हिंसा-शक्ति से सर्वथा भिन्न है। वेद मे कहा है कि जो दान दिया जाता है, वह लोक-लज्जा से दिया जाता है। इसलिए लोक-लज्जा एक बडी बात है। सारा समाज क्या कहता है, यह देख कर कुछ करना हृदय-परिवर्तन ही है। हृदय-परिवर्तन की डिग्री नापना ठीक नही है।

है कि हरएक के हृदय मे सद्भावना है।

अहिंसा की कार्य-प्रणाली

हम दो बाजू से काम कर रहे है। एक तो हरएक के अन्दर जो परमेश्वर है, उस पर हम भरोसा रखते है और दूसरे, हम ऐसी परिस्थिति निर्माण करना चाहते है, जिससे लोगो मे जागृति पैदा हो और जिससे दान दिये बगैर उनसे न रहा जाए। इस तरह भौतिक जागृति याने हृदय-परिवर्तन और जन-जागृति, ऐसी दोहरी जागृति हम करना चाहते है। केवल लोक-जागृति हुई और नैतिक जागृति नही हुई तो परिणाम-स्वरूप हिंसा की शक्ति पैदा हो सकती है। और केवल नैतिक जागृति हुई तो काम बनाने मे बहुत समय लगेगा। इसलिए हम दोहरा काम कर रहे है। जैसे पछी के दो पख होते है, एक पख से वह उड नही सकता, वैसे ही धर्म-कार्य दो तरह से होता है। अन्दर से जागृति निर्माण करना और परिस्थिति मे परिवर्तन करना।

सामान्य धर्म और विशेष धर्म

सामान्य धर्म-प्रचार और क्राति या धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन, ये दो भिन्न-भिन्न वस्तुए है। सामान्य धर्म तो ऋषि और सत लोग हमेशा समझाते रहते है, इसलिए सर्वसामान्य धर्म-प्रचार एक बात है, और जमाने की माग क्या है, यह पहचान कर धर्म-विचार को उसके साथ जोड देना दूसरी बात है। गाधीजी ने देश को इसी तरीके से अहिंसा सिखाई है। प्रेम और अहिंसा से लडने की बात तो पुरानी ही थी, परन्तु उसे वे स्वराज्य के साथ नही जोडते तो उन्हें सिर्फ दस-बीस अनुयायी मिल जाते। उस समय हम तलवार से नही लड सकते थे, क्योकि हम नि शस्त्र थे और अग्रेज लोग शस्त्रो मे हमसे बहुत ताकतवर थे। इसलिए अहिंसा से लडना अवश्य ही था, पर परिस्थिति भी उसके अनुकूल थी। इस तरह आतरिक धर्म-विचार का बल और परिस्थिति का बल, इन दोनो को जोडकर उन्होने देश को अहिंसा सिखाई और उसी से हमे स्वराज प्राप्त हुआ। इसी तरह आज गरीबो को जमीन की अत्यन्त आवश्यकता है। सिर्फ हिन्दुस्तान मे ही नही, सारे एशिया मे जमीन की भूख है। गरीबो को जमीन मिले

बगैर वे शात नही रह सकते। उसी के साथ हम लोगो को धर्म-विचार समझा रहे है कि भूखे पडोसी को जमीन देनी चाहिए और जमीन परमेश्वर की देन है, इसलिए उस पर सबका सामान्य अधिकार है। अगर यही विचार हम पाच सौ-हजार साल पहले समझाते तो लोग हमारी बात नही सुनते। इसलिए यह बात भी जमाने की मांग के साथ जोड देते है, जो सिर्फ मामूली धर्म-प्रचार नही होता, बल्कि धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन होता है। सत और ऋषि सर्वसामान्य धर्म-प्रचार तो हमेशा करते रहते है, परन्तु उससे धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन नही होता है। लेकिन जहा परिस्थिति के साथ धर्म-भावना जुड जाती है, वहा वह लोगो के दिल को छूती है। उसीसे बडी शक्ति पैदा होती है और उससे धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन होता है।

: ७ :

निर्वैर-प्रतिकार का युगधर्म

विहार मे प्रवेश करते ही हमने प्रकट किया था कि भगवान् बुद्ध के चरण-चिन्हो पर चलने की ही हमारी कोशिश है। जो धर्म-चक्र-प्रवर्तन उन्होने शुरु किया उसी को, इस जमाने के मुताबिक, आगे बढाने का हमारा प्रयत्न है।

भगवान् बुद्ध ने जो विचार दिया, उसकी सत्ता इस जमाने मे भी है और उनसे इस जमाने का भी कल्याण होनेवाला है, क्योकि वह धर्म-विचार है।

वैर से वैर का मुकाबला नहीं

परतु हिंदुस्तान मे केवल यही एक विचार-धारा चलती रही, ऐसी बात नही है। इससे भिन्न भी एक विचार-प्रवाह अन्याय के प्रतिकार का चला, जिसे समाज-शास्त्रज्ञो ने चलाया। उन समाज-शास्त्रज्ञो ने, अर्थात् स्मृतिकारो ने इस विचार को सामने रखा और कहा कि जहा कही भी अन्याय होता हो, उसका प्रतिकार करना ही चाहिए। हिन्दुस्तान के इतिहास में इसी विचार का एक प्रवाह और चलता आ रहा है।

अन्याय का प्रतिकार

इस तरह यहा पर दो विचारधाराएँ चलती आई है (१) वैर से वैर बढता ही है, इसलिए निर्वैर रहना चाहिए, और (२) समाज मे जहा-कही भी अन्याय होता हो, वहा उसका प्रतिकार करना ही चाहिए, अन्याय हरगिज नही सहना चाहिए। ये दोनो विचार समानान्तर चलते आये है। महापुरुष और देश के सेवको पर इन दोनो विचारो का प्रभाव रहा है। अन्याय का प्रतिकार करना जब मान लिया तो स्वभावत जो शस्त्र लेकर सामने आया, उससे लडने के लिए अपने हाथ मे शस्त्र लेने में हिचकिचाहट नही होनी चाहिए, ऐसी विचार-प्रणाली भी निर्माण हुई। वे कहते थे, हमे शस्त्र से किसी पर भी आक्रमण नही करना चाहिए, परन्तु जुल्मी व्यक्ति के खिलाफ, जो लोगो को पीडा दे रहा है, उसका प्रतिकार करने के लिए, बचाव के लिए, सत्य-रक्षा के लिए, शस्त्र जरूर ले सकते है और लेना चाहिए। अन्याय-प्रतिकार की जो परपरा चली, उस विचार-प्रणाली में विक्रमादित्य, राणा प्रताप, शिवाजी जैसे अनेक महापुरुष निर्माण हुए। उन्होने माना कि अन्याय का प्रतिकार शस्त्र से भी करना चाहिए, परतु उनकी ओर से स्वतत्र आक्रमण नही हुआ। हिन्दुस्तान के इतिहास मे यह एक बहुत बडी बात है कि हिन्दुस्तान ने अपने उत्कर्ष के काल मे भी दूसरे किसी देश पर आक्रमण नही किया। यहा बडे-बडे राजा हुए। बडी-बडी सत्ताएँ रही, परन्तु उत्कर्ष के काल में जिस समय हाथ मे पूरी ताकत थी, उस समय भी यहा के किसी राजा ने दूसरे किसी बाहरी मुल्क पर आक्रमण नही किया। क्षात्र-धर्म की यही मर्यादा मानी गई है। अन्याय-प्रतिकार का यह लक्षण है,

अन्याय का प्रतिकार जरूर करेंगे, पर अपनी ओर से किसी पर आक्रमण करना अन्याय है। यह एक धर्म-विचार था।

निर्वैर भावना

दूसरा विचार था वैर से वैर नही मिटता है। आज कोई हमसे शस्त्र-बल मे बलवान् साबित होता है, तो हम उससे ज्यादा बलशाली शस्त्र लेकर उसका प्रतिकार करते है। इस तरह चलते-चलते आज हम 'टोटल वार' तक आये है, जहा समूचे राष्ट्र युद्ध के लिए खडे हो जाते है। वैर से वैर मिटता नही, इस विचार को माननेवालो की जो एक परपरा हिन्दुस्तान मे चली, वह सन्तो की परपरा है। कबीरदास, तुलसीदास आदि की वृत्ति निर्वैर थी। वही यह परपरा है। याने सन्तो की परपरा है निर्वैर वृत्ति, और वीरो की परपरा है अन्याय-प्रतिकार। निर्वैरता और अन्याय-प्रतिकार, दोनो धर्म है। शिवाजी और तुकाराम एक ही जमाने मे हुए थे। तुकाराम बुद्ध भगवान् की निर्वैरता की परपरा के सन्त थे, शिवाजी वीरो की परपरा के थे। दोनो को एक-दूसरे के लिए आदर था। तुकाराम का सकीर्तन सुनने के लिए शिवाजी बडे भक्तिभाव से जाते थे, परतु शिवाजी के अन्याय-प्रतिकार के काम मे तुकाराम हाथ नही बटाते थे। वह कहते थे कि यह मेरा काम नही है और शिवाजी भी राजसत्ता छोडकर तुकाराम के भजन-सम्प्रदाय मे नही गये। अगर तुकाराम से पूछा जाता कि शिवाजी का अन्याय प्रतिकार ठीक है या नही तो वे कहते कि ठीक है। उनसे पूछा जाता कि वह ठीक है तो तुम क्यो नही वह काम करते, तो वे कहते कि वह मेरा धर्म नही है। समाज की हालत ऐसी है कि शिवाजी जो काम करते है, उसे हम रोक नही सकते। इस तरह से समाज मे दो परपराएँ चली।

गाधीजी का अध्यापन

परपरा को प्रतिकार से जोड दिया। उन्होने कहा कि हम निर्वैर रहेगे और प्रतिकार भी करेगे। यह एक वडा भारी विचार सारी दुनिया को मिला, जहा निर्वैरता और प्रतिकार-वृत्ति, दोनो का मिश्रण हुआ। अव हमारे समाज के लिए रास्ता खुल गया, अन्यथा समाज मे वुद्धि-भेद हो जाता था। कुछ लोग इधर झुके थे और कुछ लोग उधर। समाज के टुकडे हुए थे। लेकिन अव ऐसी युक्ति हासिल हुई कि दूध और शक्कर, दोनो मिल गये। उस मिश्रण को एक साथ पी सकते है। निर्वैरता से प्रतिकार की शक्ति वढ गई—और प्रतिकार से निर्वैरता की .शक्ति वढ गई। यह वडा भारी उपकार हुआ। उसमे गाधीजी का वडा उपकार है, परन्तु उनसे भी अधिक उपकार है, अग्रेजो का, क्योकि उन्होने देश को नि शस्त्र नही वनाया होता, तो लाखो लोग गाधीजी की वात नही मानते। उन्हें सिर्फ हमारे जैसे दो-चार चेले मिल जाते। परन्तु सारे देश मे एक विचार फैला और उसका कुछ टूटा-फूटा आचरण भी हुआ। निर्वैरता का पूरा उपयोग करना कठिन हुआ, इसलिए हमने कुछ टूटा-फूटा, लूला-लगडा आचरण किया। परन्तु उससे यह मार्ग चल पडा।

विज्ञान का मेल

अव विज्ञान का युग आया है। विज्ञान के कारण लडाई भयानक हुई है। प्राचीन काल मे लडाई उतनी भयानक नही थी। लडाई मे उस समय हानि से लाभ अधिक होता था परन्तु विज्ञान के युग मे लडाई की भयानकता इतनी वढ गई है कि लडाई का लाभ वहुत थोडा होता है और उस की हानि ही वहुत होती है। इसलिए अव निर्वैर-प्रतिकार होता है, तो समाज के मसले हल होते हैं और लडाई की हानियो से ममाज वचता है। इस तरह आज अग्रेजो की करामात, गाधीजी का निमित्त और विज्ञान-युग का अवतार, तीनो मिलकर वुद्ध भगवान् की शिक्षा का प्रयोग करने का मौका मिला है। अगर हम उसपर अमल करें तो वह विचार दुनिया में फैलेगा। गाधीजी ने उस ास्त्र का उपयोग राजनैतिक आजादी प्राप्त करने मे किया था, परन्तु उमी से वह शस्त्र कारगर नहीं सावित हो सकता, क्योकि हमें

जो आजादी मिली, उसमे दुनिया की ताकते काम कर रही थी। दुनिया थी। दुनिया की ताकते उसके अनुकूल थी। इसलिए दुनिया को यह कहने का मौका मिला कि महायुद्ध के कारण ऐसी कई शक्तिया निर्माण हुई, जिससे हमे आजादी मिली। हम भी कबूल करते है कि उस समय दुनिया मे जो शक्तिया काम कर रही थी, उनका भी और अहिंसा का भी परिणाम हुआ है। पूरी तरह से अहिंसा का ही परिणाम था, ऐसा हम भी नही कह सकते है। आधुनिक जमाने में एक देश दूसरे देश को बहुत दिनो तक अपने कब्जे में नही रख सकता है। प्राचीन काल मे रोमन साम्राज्य था, जो बारह सौ साल तक चला, परन्तु उसके बाद जो साम्राज्य हुए वे उतने नही चले, क्योकि लोग जागृत हो रहे थे। अब विज्ञान का युग है, शिक्षा फैल रही है, इसलिए साम्राज्य ज्यादा दिन तक नही टिक सकते। अंग्रेजो का साम्राज्य भी नही टिका। उनके पास विज्ञान था, फिर भी मुश्किल से १५० साल उनका साम्राज्य टिका, यद्यपि रोमन साम्राज्य से उनके पास कई गुना ज्यादा ताकत थी। इस वैज्ञानिक युग में एक साल की कीमत प्राचीन दस साल के बराबर है। यह रेडियो वायरलेस का जमाना है। विज्ञान देशो को नजदीक लाया है, काल की गति बढ गई है। इसलिए हमारे लिए राजनैतिक आजादी प्राप्त करना आसान बात थी, परन्तु अगर हम आर्थिक समता स्थापित करने का काम अहिंसा से करते है तो बहुत बडी बात हो जाती है। उनने निर्वैरता की, अहिंसक प्रतिकार की शक्ति बहुत बढ जाती है।

नया अवसर

हम चाहें तो हिंसा का उपयोग कर सकते है या चाहें तो अहिंसा का। ऐसी हालत मे अगर हम देश का आर्थिक मसला अहिंसा से हल करें तो दुनिया मे नि शस्त्र प्रतिकार जो शस्त्र-निर्माण हुआ है वह कारगर साबित होगा और दुनिया को राह मिलेगी। इसलिए आपको ठीक ढग से सोचना चाहिए।

हम जमीन मागते है, भीख नही मागते हैं। हम छठा हिस्सा मागते है। हम दया का आवाहन नही करते। गरीबो पर दया करो, ऐसा हम नहीं कहते हैं। दया और करुणा के लिए भी स्थान है, वह भी धर्म है। हमने अपने मार्ग को करुणा-मार्ग भी कहा है। परन्तु हम लोगो से कहते है कि समता को मानो और हवा, पानी और सूरज की रोशनी के समान जमीन भी परमेश्वर की देन है और इसलिए उस पर किसी की मालकियत नही है। जमीन पर सबका समान अधिकार है। इस तत्त्व को याने समता के तत्व को मान कर जमीन दो। दया का आधार समता है, यही मान कर जमीन दो। अगर हम सिर्फ दया की बात कहते तो साथ मे हक नही मान सकते थे। और कोई कुछ भी देता तो उसका हम उपकार मानते, परन्तु हम तो एक प्रकार से सत्याग्रह कर रहे है। हम तो जिससे जमीन मागते है, उसके घर के सामने खडे होकर कहते है कि आप समता मानते हो न ? हम आपके बच्चे है। हमें हमारा हिस्सा दो। दया एक चीज है और समता दूसरी चीज।

दया और समता

तुलसीदासजी ने कहा है कि "दया धर्म का मूल है", परन्तु दया धर्म की पूर्णता नही है, दया तो आरम्भ है। एक मालिक अपने नौकर को प्यार करता है, बीमारी में उसे मदद देता है। उसके बच्चो की शिक्षा का प्रबन्ध करता है। अगर वह यह सब करता है तो वह दयालु मालिक कहलाया जायगा और उसने धर्माचरण किया, ऐसा कहा जायगा। परतु अगर कोई उससे कहे कि अपने आसन के आधे हिस्से पर उस नौकर को बिठाओ तो वह नहीं मानेगा। हम अपने बैल को भी अच्छा खिलायगे, परन्तु उसे अपने पास नहीं बैठायगे। अच्छे और दयालु मनुष्य बैलो की अधिक चिन्ता करते है, परन्तु

बैलो मे और हममे समता है इस बात को वे नही मानते। बैल पर दया करने को हम राजी है, परन्तु उनके साथ समता मानने को राजी नही। इसी तरह कुछ लोग आज कहते है कि हम अपने नौकर को पाव एकड देगे तो हम उनसे कहते है, कि यह ठीक है, परन्तु यह पूरा नही है। इस बात को कबूल कीजिये कि जमीन पर सबका हक है, सिर्फ आपका नही। जो इस बात को कबूल नही करते है और दयालु नही होते वे हमारी माग नही मानेगे, परन्तु जो दयालु होते है वे कहते है कि "आपकी माग हम कबूल करते है, परन्तु समता नही मानते। दुनिया मे बुद्धि तो कम-बेशी होती है। फिर समता कैसे स्थापित हो सकती है?" हम उनसे कहते है कि भगवान ने यदि कमबेशी बुद्धि दी है तो सबको एक वोट देने का अधिकार क्यो दिया जाय? नेहरू-जी को भी एक ही वोट का अधिकार है और उनके चपरासी को भी एक ही। यह मूर्खता है या इसके पीछे कोई अकल है? हर कोई जानता है कि पडित नेहरू और उनके चपरासी की अकल समान नही है। फिर भी आप-ने दोनो को समान वोट का हक दिया। इसका मतलब है, आपने आत्मा की समानता मानी है, चाहे आप वेदान्त को न समझे हो। मनुष्य मनुष्य मे कोई फर्क तो है ही, परन्तु हरएक मनुष्य को एक वोट का हक देने का मतलब है कि आप आत्मा की समानता कबूल करते है, यह बुनियादी उसूल आपने माना है। अब उसी बुनियाद पर आपको मकान बनाना होगा। बुनियाद एक प्रकार की और मकान दूसरे प्रकार का, यह हो नही सकता। परन्तु आपने तो सबको समान वोट देकर समता को माना है। इसका मतलब है कि जमाना समता की माग कर रहा है और आपने वह माग मान ली तो आहिस्ता-आहिस्ता आप उसे जीवन मे लाने की कोशिश कीजियेगा और अब सब दया कीजियेगा।

वामन के तीन डग

प्रज्ञ सन्यासी, योगी, भक्त सभी महापुरुषो के लक्षणो मे समता की बात कही है, क्योकि धर्म का लक्षण समता है। आत्मा समान है। इसलिए हमें अपना जीवन धीरे-धीरे समता की तरफ ले जाना चाहिए। इसलिए जो जमीन देते है उनसे हम कहते हैं कि गरीबो की सेवा का व्रत लीजिये। जमीन देना तो आरम्भ है। गरीबो की सेवा करते-करते आप खुद गरीब वन जायगे। ऐच्छिक गरीब वनेगे तो आप सच्ची समता पर पहुच गये। यह तो वामन के तीन चरण है

१ जमीन देना,

२ गरीबो की सेवा का व्रत लेना और

३ खुद गरीब वनना। सब गरीब बनेगे, तब गरीबी मिटेगी। जब गरीबी बटेगी, तब गरीबी मिटेगी। तब सबका स्तर समान हो जायगा।

हम कुए मे बाल्टी मे पानी खीचते है तो कुए में बाल्टी के आकार का गढा नही पडता है, क्योकि पानी के परमाणुओं मे इतना प्रेम होता है कि जहा वे देखते है कि कही कुछ पानी कम हो रहा है वहा वे सारे उस तरफ दौडते है, गढा नही होने देते है। सारे पानी की सतह थोडी गिरती है। अगर समाज में ऐसा ही प्रेम हो तो किसी साल उत्पादन कम हुआ तो सबको कम मिलेगा। समाज मे गढा नही पडेगा। लेकिन चावल के ढेर की बात दूसरी होती है। किसी ढेर से एक सेर चावल निकालो तो फौरन गढा पड जाता है, क्योकि चावलो मे उतना प्रेम-भाव नही होता कि सारी सतह गिरने दें, पर फिर भी गढा न पडने दे। परन्तु उनमे भी कुछ दस-पाच महात्मा चावल होते है, जो उस गढे मे गिरते है। समाज की आज की हालत ऐसी है कि सारे लोग उन चावलो के जैसे अपनी ही जगह पर बैठे रहते है। कुछ अल्पात्मा चावल के जैसे होते है और कुछ थोडे महात्मा चावल के जैसे होते है। परन्तु हम चाहते हैं कि समाज की हालत पानी जैसी हो। पानी के कण इतनी कुशलता से दौडते है कि दीखता भी नही कि कोई दौडा है और अगर उसमें ऊपर से अधिक पानी आया तो पानी का टीला नही बनता है। सारी सतह चढती है। पानी की यह खूबी समाज में आनी चाहिए, लेकिन

अभी तक यह नही हुआ है ।

सौम्य और उग्र सत्याग्रह

समाज मे दया चल रही है, परन्तु लोग समझते है कि विषमता को कायम करते हुए हम दया कर सकते है। परन्तु वह दया अब नाकाफी है। अब समता की जरूरत है। समता लाने के लिए ही भूदान-यज्ञ चल रहा है। निर्वैर प्रतिकार और सत्याग्रह का यह एक अग है। हम लगातार घूमते है बारिश मे भी घूमते है। लोगो से छठे हिस्से की माग करते है। कोई कम देता है तो लेने से इन्कार कर देते है। यह सारा सत्याग्रह ही चल रहा है। कुछ लोग हमसे पूछते है, "इसका कुछ परिणाम नही हुआ तो आप क्या करेगे ?" हमने जवाब दिया कि हम इस तरह से नही सोचते है, परन्तु परिणाम नही आया तो सत्याग्रह एक ऐसा महान शस्त्र है कि उसके सामने कोई टिक नही सकता, क्योकि उसमे निर्वैरता और प्रतिकार दोनो है और उससे उसकी शक्ति बढती है। आज हमारा सौम्य सत्याग्रह चल रहा है। आगे चलकर उग्र सत्याग्रह भी हो सकता है। जब हम ऐसी बाते करते है तो कुछ लोग कहते है कि अब आप धमकाने लगे है। परन्तु अगर कोई लडका अपने शराबी पिता से कहता है

है, इसलिए छ तमाचे लगाये गये, तो वह जरूर धमकाना होगा। परन्तु पाच रुपयो के बदले छ या दस रुपये देना धमकाना नही है। उसी रास्ते पर थोडा आगे ले जाना है। आपकी जडता को हटाने के लिए अधिक चैतन्य प्रकट करना होगा। सामनेवाला जितना जड है, उतना चेतन प्रकट करना होता है। सामने जितना अन्धकार है, उतना प्रकाश जरूरी होना है। हमारे मन में छीनने या धमकाने की कोई बात ही नही है। हमें तो अतरात्मा को जगाना है। जगाने के लिए घूमना पडता है, मागना पडता है, व्याख्यान देना पडता है, सत्याग्रह भी करना पडेगा तो करेंगे, क्योकि वह जगाने की प्रक्रिया है। सत्याग्रह प्रेम की प्रक्रिया है। इसलिए जिनके सामने सत्याग्रह किया जायगा, वे हमारा उपकार मानेंगे। जो मा अपना बच्चा सुधरे, इसलिए उपवास करती है उसका बच्चा यह मानेगा कि मा उपवास करती है याने मुझपर उपकार करती है। उसी तरह सामनेवाला सत्याग्रह को धमकी नही मानेगा। अगर सामनेवाला धमकी समझे तो इसका मतलब हुआ कि वह सच्चा सत्याग्रह नही है। जब सामनेवाला सत्याग्रह को धमकी नही समझता है और यह मानता है कि प्रेम अब बडे रूप मे प्रकट हो रहा है तभी वह सच्चा सत्याग्रह कहलाया जायगा।

बेगुसराय, १ नवम्बर १९५३

: ८ :

धर्म-चक्र-प्रवर्तन

किसी दूध की जब परीक्षा की जाती है, तब वैज्ञानिक उसमे मक्खन का प्रमाण देख लेते है। उसपर से दूध का कस नापा जाता है। किसी समाज की योग्यता का जहा नाप लिया जाता है, वहा उस समाज में कितने ऊंचे महापुरुष निर्माण हुए, यह देखा जाता है। समाज के महापुरुष दूध के मक्खन की तरह होते है। भारत का जो काल उन्नति का और अवनति का माना गया है, दोनो समय महापुरुष दर्शन देते ही गये है। इतना ही नही, ये सौ

डेढ़सौ साल, जब कि हम गुलामी में थे और जब एक विदेशी सत्ता हमें दबाये हुए थी तथा हमारी हालत अत्यन्त हीन थी, ऐसे अवनति के काल में भी यहा राममोहन राय, दयानद, रामकृष्ण परमहस, लोकमान्य तिलक, रवि ठाकुर और महात्मा गाधी जैसे पचासो महापुरुषो के नाम, जो ऊचाई में दुनिया के दूसरे महापुरुषो से कम नही हैं, गिनाये जा सकते हैं। याने भारत-भूमि ने साबित कर दिया कि उसकी पुरुषार्थ-शक्ति अब भी कायम है और प्राचीन काल से यहा ऐसी एक अतर्यामी शक्ति काम कर रही थी जिसके कारण प्रतिकूल परिस्थिति के बावजूद यहा महापुरुष निर्माण होते रहे हैं।

भगवान् बुद्ध के विचार अब अकुरित हो रहे हैं

जिस शख्स की जयती उनके जन्म के ढाई हजार वर्ष के बाद मनाई जाती है उसकी आयु कितनी दीर्घ होनी चाहिए? आज सभी हिंदू लोग किसी धर्म-कार्य का सकल्प करते समय "बुद्धावतारे वैवस्वते मन्वतरे कलियुगे" आदि मत्र का स्मरण करते हैं। याने आज भी हम बुद्ध के जमाने में ही काम कर रहे हैं। बुद्ध-युग का मानो अब आरंभ हो रहा है। मिट्टी से जैसे बीज ढका जाता है और फिर उसमें से वह अकुरित होता है, उसी तरह बीच के जमाने में बुद्ध की शिक्षा का बीज कुछ ढका-सा रहा और अब वह अकुरित होता दिखाई दे रहा है। बुद्ध भगवान् ने स्पष्ट शब्दो में कहा था "भाइयो, न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कदाचन, अवेरेण च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो", वैर से वैर कभी शमता नही। कितनी भी कोशिश करो, अग्नि के शमन के लिए घी नही, पानी या मिट्टी ही चाहिए। अदावत से अदावत मिट नही सकती। वैर से वैर शात नही हो सकता। दुश्मनी से दुश्मनी बढती ही है। यह उनकी शिक्षा का सार है। उनके शब्दो में जो ताकत थी, उसका भान अब लोगो को हो रहा है।

के तरीके का खयाल आता है और वे सोचते है कि अगर मभव हुआ तो वही तरीके आज चलाने चाहिए, क्योकि एटम वम और हाइड्रोजन वम से तो दुनिया की शक्ति का क्षय होगा, शक्ति-क्षय का ही वह कार्यक्रम होगा। दुनिया को भान हो रहा है और वह महसूस कर रही है कि हम इस तरह आगे नही वढ सकेंगे, जहा-के-तहा ही रह जायेंगे। वीच में पच्चीस सौ वर्प वुद्ध भगवान् गर्भावस्था मे थे। लेकिन आज वुद्ध भगवान् के विचारो को अकुर आ रहे हैं।

जो तालीम उन्होने दी, वह उनके जमाने मे भी नई नही थी। सैंकडो सन्तानो ने उसे दोहराया था। वैर से वैर नही शमता, यह उनकी वात नई नही थी। यहा सव तरह का तत्त्वज्ञान-सैंकडो वर्पो का अनुभव, आत्मानात्म-विवेक, वेद, उपनिपद, साख्य, गीता, आदि निर्माण हो चुके थे और हमे इन सवने निर्वैता की ही शिक्षा दी थी। ऋपियो ने गाया था

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्
मित्रस्य अहम् चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

चेतन के सामने विशालतम जड भी नगण्य

सारी दुनिया मेरी तरफ मित्र की निगाह से देखे, अगर ऐसा हम चाहते है तो हमे भी दुनिया की तरफ उसी मित्र-भावना से देखना होगा। दुनिया को मित्र या शत्रु वनाना मेरे हाथ की वात है। मै चाहू तो मित्र वनाऊ, चाहू तो शत्रु। यह सारा 'इनीशिएटिव' याने 'अभिक्रम' मेरे हाथ मे है। वह मै दूसरो के हाथ मे नही देना चाहता। दुनिया को जैसा हम नचायगे, वह नाचेगी। दुनिया की ताकत नही कि मेरे प्रति वैर भाव रखे, अगर मेरे हृदय मे दुनिया के प्रति प्रेम-भाव हो। आइने की ताकत नही कि मेरी आख यदि निर्मल है तो वह मलीन दिखाये। मेरी इच्छा के विरुद्ध आइने में दर्शन हो नही सकता। आइने की तरह दुनिया भी मेरी प्रति-विंव-स्वरूप है। वह इतनी अनत, अपार और विशाल है कि किसी भी जगह देखो, तो असीम, असीम और असीम ही नजर आती है। लेकिन चेतन के सामने इतनी असीम और विशाल दुनिया भी कोई महत्व नही

रखती, जिस तरह कि अग्नि के सामने कपास का ढेर कोई महत्व नही रखता। जिस प्रकार की शक्ल हम दुनिया को देना चाहे, दे सकते है। यह सारी दुनिया मेरे हुक्म से चल रही है। यह हिमालय मेरी आज्ञा से उत्तर की तरफ बैठा है। अगर मै चाहू तो उसे दक्षिण की तरफ फेक सकता हू। एक लडके ने मुझसे पूछा कि यह कैसे सभव है ? मैने समझाया कि अगर मै उत्तर की तरफ चला जाऊ तो वह दक्षिण की तरफ फेका जायगा। फिर उसकी ताकत नही कि वह उत्तर की तरफ आ सके। मै उसे हर दिशा मे फेक सकता हू, क्योकि मै चेतन हू। वह बडा है, पर जड है। मै अग्नि की चिनगारी हू, वह कपास का ढेर है, मै उसे खाक कर सकता हू। वह मुझे जला नही सकता।

दुनिया को मै मित्र ही बना सकता हू, शत्रु नही बना सकता, यह वेदो ने हमे समझाया था। बीच में हजारो वर्षो मे इसकी कसौटी नही हुई। आखिर बुद्ध ने हमे यह अनुभव बताया।

अहिंसा की व्यक्तिगत साधनाएँ

विचार के तौर पर बुद्ध भगवान् की बात सब तरफ फैल तो गई, परन्तु सारे समाज मे जो समस्याएँ मौजूद है, वे सब कैसे हल हो ? समस्याएँ कई है। शिक्षण की समस्या, अन्न की समस्या, वस्त्र की समस्या आदि कई समस्याएँ है। इन सभी सामाजिक समस्याओ को हल करने के लिए अक्रोध, निर्वैर का तत्त्व कैसे लागू हो सकता है, इस बारे में मानव-समाज को शका बनी रही। परतु बीच के जमाने में लोगो ने सिद्ध कर दिया कि हम अक्रोध से क्रोध, निर्भयता से भय और प्रेम से द्वेष को जीत सकते है, परतु यह सब प्रयोग व्यक्तिगत जीवन में हुए। उनका सामाजिक प्रयोग अभी बाकी था।

व्यक्तिगत जीवन की प्रयोगशालाएँ

विज्ञान मे जितने प्रयोग होते है, वे पहले छोटे पैमाने पर प्रयोगशाला मे होते है। जब कोई सिद्धान्त प्रयोगशाला में सिद्ध होता है, तब उसके व्यापक अमल के बारे मे सोचा जाता है। मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन भी एक प्रयोगशाला ही है। निर्वैरता का सिद्धान्त सबको जीतनेवाला है और

सन्तो ने यह सिद्धान्त व्यक्तिगत जीवन मे मावित कर दिया है।

अहिंसा के सामुदायिक प्रयोग की सिद्धि

उस बीच दुनिया मे विज्ञान आगे वढा। उस विज्ञान की शक्ति मे लोगो ने अनेक देशो पर कब्जा किया। अग्रेज यहा आये और वे यहा के मालिक वने। उन्होने एक चमत्कार यहा किया। उन्होने हिन्दुस्तान के सब लोगो के हाथ से शस्त्र छीन लिये। यह एक ऐसी घटना थी कि अगर इसे ऐसे ही वर्दाश्त किया जाता तो देश को हमेशा के लिए गुलामी स्वीकार करनी पडती। परन्तु जिस देश के पीछे हजारो वर्षो का अनुभव हो, वह हमेशा के लिए गुलाम नही रह मकता था। तो, वावजूद नि शस्त्र होने के, हम उठ सकें और गुलामी को तोड सकें, ऐसा कोई शस्त्र हमारे लिए जरूरी था। इसलिए जो सिद्धान्त मतो ने अपने व्यक्तिगत जीवन में सिद्ध किया, उसका प्रयोग सामाजिक जीवन मे किया गया। नतीजा यह हुआ कि हमे आजादी मिली।

हमारी आजादी की लडाई की अपूर्वता

मै यह दावा नही करता कि हमे जो आजादी मिली, वह हमारी अहिंसा के परिणामस्वरूप ही मिली, क्योकि वह दावा ठीक नही होगा। गीता ने वताया है, कोई भी काम पाच कारणो मे वनता है। इसलिए केवल हमारे अहिंसक प्रयोग मे ही आजादी मिली, यह कहना अहकार होगा। लेकिन अहिंसात्मक लडाई एक वडा कारण है, ऐसा हम कह सकते है। दुनिया का इतिहास लिखनेवालो को लिखना पडेगा कि हिंदुस्तान का राजकीय मसला नैतिक तरीके मे हल हुआ था तथा हिदुस्तान मे राष्ट्रीय आजादी का प्रयत्न करनेवालो को जो यश मिला, वह इतना अपूर्व और ऐसा अद्भुत है कि उसने दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया है।

इस तरह हमने देखा कि हमने एक अत्यन्त वलवान् राष्ट्र से आजादी हासिल की है।

नैतिकता में एक की जीत से दूसरे की हार नही

दूसरा एक चमत्कार इस देश मे यह हुआ कि इतनी वडी सल्तनत, जिसके बारे मे यह कहा जाता था कि उसपर सूर्य कभी अस्त नही होता, यहा से अपना सारा कारोबार समाप्त कर चली गई। उसने एक तारीख मुकर्रर की और ठीक उस तारीख से पहले वह यहा से कूच कर गई। इसलिए मेरा मानना है कि हमने जो अहिंसक तरीका अपनी आजादी हासिल करने के लिए अख्तियार किया था, उसकी जितनी महिमा है, उतनी ही महिमा इस बात की भी है कि अग्रेजो ने एक निश्चित तारीख को यहा से हुकूमत उठा ली। इतिहासकार मानेगे कि यह भी नैतिकता की एक अद्भुत विजय हुई। ऊपर के चमत्कार से भी अधिक वडा एक और चमत्कार यह हुआ कि जहा माउन्टवेटन ने हिन्दुस्तान का कारोवार हिन्दुस्तान के लोगो के हाथो मे सौप दिया, वहा हमारे लोगो ने उसे ही गवर्नर जनरल के तौर पर रख लिया। नैतिक विजय की इससे वडी मिसाल कोई हो नही सकती थी। नैतिक तरीके की खूबी यह होती है कि उसमे जो जीतते है वे जीतते ही है, लेकिन जो नही जीतते, वे भी जीतते है। एक ही की हार के आधार पर दूसरे की जीत नही होती। और आप देखते है कि वावजूद इस बात के कि हमें इग्लैण्ड ने कई तरह का दुःख पहुचा और यातनाएँ सहनी पडी, हम लोगो के मन में आज इग्लैण्ड के बारे में दुश्मनी के भाव नही है। अन्यत्र किसी भी लडाई के बाद ऐसा सद्भाव प्रकट नही हुआ है। इस घटना का शाति से सशोधन करो।

हिंसा या अहिंसा के चुनाव का वक्त

अब, जब कि एक राज जाकर दूसरा राज आया है, यह सोचने का समय है कि हमें किस प्रकार अपनी समाज-रचना करनी है। याने यह चिन्तन का समय है, सध्या का समय है, ध्यान का समय है। हमारे सामने आज पचासो रास्ते खुले है। लेकिन कौन-सा रास्ता लें, यह हमें तय करना है। यह तय करने मे हमे उस घटना को नही भूलना चाहिए, जिसका हमने अभी-अभी उल्लेख किया। वह कोई छोटी घटना नही है।

उसे हम भूल नही सकते है। इसलिए हम सबके सामने यह बडा भारी सवाल है कि अपनी आर्थिक और सामाजिक रचना करने मे कौन-सा तरीका स्वीकार करे। गाधीजी के जमाने में हमने अहिंसा का तरीका आजमाया था, लेकिन उसमे हमारी कोई विशेषता नही थी, क्योकि तब हम लाचार थे। अगर हम उस रास्ते नही जाते तो मार खाते। दूसरा कोई हिंसक रास्ता हमारे लिए खुला नही था। इसलिए जो रुख हमने अख्तियार किया, वह अशरण का शरण था, अगतिकता की गति थी। अनाथ का आश्रय था। इसीलिए हमने अहिंसा का रास्ता अपनाया, यह कोई बडी बात नही, परन्तु गाधीजी का नेतृत्व हमे मिला। हमने सोचा कि वह तरीका हम आजमाये। हिंसा मे हम जितने ताकतवर थे, उससे ज्यादा ताकतवर हमारे दुश्मन थे। लेकिन अहिंसा में हम उनसे ज्यादा ताकतवर थे। इसलिए हमारे सामने एक ही रास्ता था—या तो आजादी हासिल करने की तमन्ना छोडकर चुपचाप गुलामी स्वीकार करे या अहिंसक प्रतिकार के लिए तैयार हो जाय। उस समय हमारे सामने पसन्दगी का सवाल नही था। लेकिन अब बात दूसरी है। अब हम चुनाव कर सकते है। अगर हम चाहें तो हिंसा का तरीका चुन सकते है, चाहे तो अहिंसा का चुन सकते है, चाहे तो सेना मे आदमी बढा सकते है, नौकादल और वायुदल भी बढा सकते है और देश को खाना-पीना चाहे न मिले, परन्तु देशवासियो को इस सेना के लिए त्याग करने को कह सकते हैं। और चाहे तो अहिंसा के रास्ते भी जा सकते हैं। चुनाव करने की यह सत्ता आज हमारे हाथ मे है। पहले लाचारी थी, आज ऐसी लाचारी नही है।

हिंसा का नतीजा या तो गुलामी या दुनिया को खतरा

और फिर आज, जब कि गाधीजी चले गये है, हम लोग मुक्त मन से और खुले दिल से बिना किसी दबाव के निर्णय कर सकते है। मानो इसीलिए गाधीजी को भगवान् हमारे बीच से उठा ले गया है। अब उनका दबाव हम पर नही है। अगर हम हिंसा के तरीके को मानते है तो हमें रूस या

अमेरिका को गुरु मानना होगा। किसी एक गुरु को मानकर उनके शागिर्द बनकर स्वतन्त्रतापूर्वक उनमे से किसी का गुलाम बनना होगा। सवाल यह है कि क्या स्वतन्त्र इच्छा से हम उनके शागिर्द बनना चाहते है? क्या उनके 'कैंप-फालोअर' बनकर उनके पीछे-पीछे जाकर हमारी ताकत बढनेवाली है? उनकी ताकत से ताकत लेने मे हमे पचासो वर्ष लग जायगे और सभव है, फिर भी हम उनसे ज्यादा ताकतवर न हो सके। नतीजा यह होगा कि हिन्दुस्तान को फिर से गुलाम होकर रहना पडेगा। और अगर हम अमेरिका तथा रूस, दोनो से भी ताकतवर बन जाय तो दुनिया के लिए एक खतरा साबित होगे। अब सवाल हमारे सामने यह है कि स्वतन्त्रता के नाम पर क्या हम गुलाम बनना चाहते हैं या दुनिया के लिए एक खतरा बनना चाहते है? हमे गहराई से इसपर सोचना होगा।

हिंसा के मार्ग में भरी हुई सभावनाए

आज हिन्दुस्तान स्वतन्त्र है, फिर भी अनाज या कपडा बाहर से भी मगाना पडता है। आज हिंदुस्तान स्वतन्त्र है, तब भी हमे विशेपज्ञ लोग बाहर से मगाने पडते है। आज हिन्दुस्तान स्वतन्त्र है, लेकिन हमे शस्त्र और सेनापति बाहर से ही मगाने पडते है। आज हिन्दुस्तान स्वतन्त्र है, परन्तु तालीम के लिए भी हमे बाहर के देशो पर निर्भर रहना पडता है।

तरीके से पूरी हो सकती है ? अगर हिंसात्मक तरीके को हम ठीक मानते है तो हमे यह मानना होगा कि गाधी का हत्यारा पुण्यवान् था। उसका विचार भले ही गलत हो, पर वह प्रामाणिक था। अगर हम अच्छे और सच्चे विचार के वास्ते हिंसात्मक तरीके अख्तियार करना ठीक समझते है, तो आपको मानना होगा कि गाधीजी की हत्या करनेवाले ने भी बडा भारी त्याग किया है। अगर हम ऐसा माने कि प्रामाणिक विचार रखने वाले अपने विचारो के अमल के वास्ते हिंसक तरीके अख्तियार कर सकते है, तो मै आपसे कहना चाहता हू कि फिर हिन्दुस्तान के टुकडे-टुकडे हो जायगे, वह मजबूत नही रह सकेगा। हिंसा से एक मसला तय होता दिखाई देगा, लेकिन दूसरा मसला उठ खडा होगा। मसले कम होने के बजाय नये-नये पैदा होते ही रहेगे। आज भी हरिजनो को मदिरो मे प्रवेश नही मिलता। छुआछूत का यह भेद नही मिट पाया तो क्या हरिजन अपने हाथ मे शस्त्रास्त्र ले ? अगर अच्छे काम के लिए हिंसा जायज है, तो हरिजन भाई शस्त्र उठावे, यह भी जायज मानना होगा। यह दूसरी बात है कि वे शस्त्र न उठाये।

इसलिए आज ये सब बाते ध्यान में रखकर तय करना होगा कि जो महत्व के मसले हमारे सामने आज है, उनको हल करने के लिए कौन-से तरीके जायज है और कौन से नाजायज ? अगर हम अच्छे उद्देश्य के वास्ते खराब साधन इस्तेमाल करते है, तो हिन्दुस्तान के सामने मसले पैदा ही होते रहनेवाले हैं। लेकिन अगर हम अहिंसक तरीके से अपने मसले तय करेगे तो दुनिया मे मसले रहेगे ही नही। यही वजह है कि मै भूमि की समस्या शांति के साथ हल करना चाहता हू। भूमि की समस्या छोटी समस्या नही है। मै लोगो से दान में भूमि माग रहा हू, भीख नही माग रहा हू। एक ब्राह्मण के नाते मै भीख मागने का अधिकारी तो हू, लेकिन यह भीख मै व्यक्तिगत नाते ही माग सकता हू। पर जहा दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि के तौर पर मागना होता है, वहा मुझे भिक्षा नही मागनी है, दीक्षा देनी है। इसलिए मै इस नतीजे पर पहुच चुका हू कि भगवान् जो काम बुद्ध के जरिये कराना

चाहते थे, वह काम उन्होंने मेरे इन कमजोर कन्धो पर डाला है ।

दीवारें विचारो के आवागमन को रोक नहीं सकतीं,

और मैं मानता हू कि यह कार्य धर्म-चक्र-प्रवर्तन का कार्य है। जमीन तो मेरे पास कब की पहुच चुकी है। आप जिस तरीके से चाहो, उस तरीके से यह समस्या हल कर सकते हो। आपको तय करना है कि घी के डिब्बे को आग लगानी है, या वेद-मन्त्रो के साथ यज्ञ मे उसकी आहुति देनी है। आप यह मत समझिए कि बाहर से हमारे इस देश मे केवल मानसून ही आते हैं। क्रातिकारी विचार भी बाहर से आते है और जिस तरह से हवा बेरोक-टोक आती है, उसी तरह क्रातिकारी विचार भी बिना रोक-टोक, बिना किसी तरह के पासपोर्ट के, आते रहते हैं। लोगो ने, जहा दीवारें नही थी वहा बनाई। चीन की वह बडी दीवार देख लीजिये। भगवान् ने जर्मनी और फ्रान्स के बीच कोई दीवार नही खडी की थी, लेकिन उन्होंने सीगफ्रिड और मेजिनो लाइने बनाकर क्षेत्र सकुचित कर दिया। मगर ये दीवारे लोगो को केवल इधर से उधर जाने-आने से ही रोक सकती है, परतु वे विचारो के आवागमन को नही रोक सकती। उसी तरह यहा भी दुनिया के हरेक देश से विचार आयगे और यहा से बाहर भी जायगे। इसीलिए हमें तय करना चाहिए कि भूमि की समस्या हमे शाति से हल करनी है या हिंसा से ? मेरे मन मे इस बारे में सदेह नही है कि यह समस्या शाति से हल हो सकती है। इस सबध में इतना स्पष्ट दर्शन मेरे मन में है, इसीलिए मैं निःसदेह होकर बोल रहा हू और कहता हू कि भाइयो, वन में पछी बोल रहे हैं, इसलिए अब जाग जाओ। जिस तरह तुलसीदासजी भगवान् को समझा रहे थे, उसी तरह मैं अपने भगवान को यानी आपको कहता हू कि जाग जाओ। यदि आप सब दान दोगे तो आपकी इज्जत होगी।

इस युग के मार्कंडेय बनें

विचार वाहर भेज सकते है । यह भूदान-यज्ञ एक छोटा-सा कार्यक्रम है। लेकिन आज दुनिया की नजरे इस तरफ लगी हुई है । कहते है, भारत मे यह एक अजीव तमाशा हो रहा है कि मागने मे जमीन मिल रही है । यह एक स्वतत्र दृष्टि से विचार करने लायक वात है कि अवतक मागने मे लाखो एकड मे ज्यादा जमीन मिली है । जहा दुनिया मे चारो ओर लेने की और छीनने की वाते चल रही है, वहा इस देश मे देने का आरभ हो रहा है, याने अन्तर्यामी भगवान् जाग रहे है । और जिस तरह वाहर से विचार यहा आ सकते है, उसी तरह यदि हम धीरज और हिम्मत रखे तो यहा के भी विचार वाहर जा सकते है । जरूरत इस वात की है कि भूदान-यज्ञ का सदेश सव दूर फैलाने के लिए हम उसी निष्ठा से काम करे, जिस निष्ठा से भगवान् वुद्ध के शिष्यो ने किया । वे वाहर के देशो मे गये और वहा प्रेम से प्रचार किया । उसी निष्ठा से हमे इस नये धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन मे लग जाना चाहिए । ऐसा होगा, तव आप भी दुनिया को एक नया आकार दे सकेंगे । मैंने कहा है कि जव प्रलय के समय सारी दुनिया जलमय हो जाती है, तो अकेला मार्कंडेय ऋषि तैरता रहता है और फिर वही दुनिया को वचाता है । उसी तरह आज भी दुनिया मे विचारो से, वचन से, व्यापार से, शस्त्रास्त्रो से, एटम वम से, हर तरह से प्रलयात्मक प्रयत्न हो रहे है । उस प्रलय के सारे प्रयत्नो पर जो देश मार्कण्डेय की तरह अकेला तैरेगा, उसके हाथ मे दुनिया का नेतृत्व आनेवाला है । मै यह अभिमान से नही वोल रहा हू, वल्कि नम्रतापूर्वक वोल रहा हू । हम नम्र वने, तभी ऊचे उठ सकेगे । मनु महाराज ने भविष्य लिख रखा है

इस देश मे जो महान् पुरुष पैदा होगे, उनमे ऐसी शक्ति होगी कि उसके द्वारा सारी दुनिया के लोग अपने जीवन के लिए आदर्श सीखेंगे ।

स्व-स्व चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्व मानवा ।

सर्वतोभद्र महत्वाकाक्षा

मै कहता हू कि वह शक्ति, वह सत्ता आपके हाथो मे है । आपको एक नेता मिला था, जिसके नेतृत्व मे आपका देश अहिंसा के तरीके से

आजाद हो सका। आज भी इस देश में ऐसे लोग हैं, जिनके हृदय मे सद्भाव मौजूद है। अब थोडी हिम्मत रखो और थोडी कल्पना-शक्ति रखो तो आप देखेंगे कि आपके हाथ मे भी वह शक्ति है जिससे आप दुनिया को आकार दे सकते हैं। यह आक्रमण नही है, बल्कि दुनिया को बचाना है। यह एक ऐसी महत्वाकाक्षा है, जो रखने लायक है। यदि हम भूमि का समस्या शाति से हल करे तो दुनिया को रास्ता दिखा सकेंगे।

लखनऊ, ९ मई १९५२

खादी साहित्य

१	अ भा चरखा सघका इतिहास	श्री कृष्णदास जाजू	३॥)
२	आजादी का खतरा	श्री धीरेन्द्र मजूमदार	।-)
३	कपास की समस्या, खादी की दृष्टि से	श्री दादाभाई नाईक	॥)
४	कपास का स्वावलवन	"	=)
५	कताई गणित भाग १ (हिं)	श्री कृष्णदास गाधी	१)
६	" " " २ (हिं म)	"	॥।)
७	" " " ३ (हिं म)	"	१)
८	कताई प्रवेश (म)	श्री केशव देवधर	१॥)
९	कताई मडल		≡)
१०	क्रातिकारी चरखा	श्री धीरेन्द्र मजूमदार	।-)
११	किसान चरखा	श्री प्रभाकर दिवाण	१)
१२	खडा चरखा	केशव देवधर	१)
१३	खादी शिविर		=)
१४	ग्राम स्वावलम्बन की ओर (आकडो की दृष्टि से)	वालकोवा	।)
१५	ग्राम सेवा की योजना	"	=)
१६	घरगुती कताईच्या सामान्य गोष्टी (मराठी)	श्रीकृष्णदास गाधी	१।)
१७	घरेलू कताई की आम वाते	"	१।)
१८	घरेलू कताई की आम गिनतिया	"	॥।)
१९	चरखा सघ का नव-सस्करण		१॥)
२०	चरखा सघ का कार्यक्रम		।≡)
२१	चरखा आन्दोलन की दृष्टि और योजना		=)
२२	चरखे की तात्विक मीमासा		१)
२३	दुवटा		=)
२४	वस्त्र विज्ञान-लेख सग्रह	श्री प्रभाकर दिवाण	१)
२५	वुनाई	श्री दत्तोबा दास्ताने	५)
२६	वापू की खादी	श्री धीरेन्द्र मजूमदार	॥)
२७	मध्यम पिंजन (हिंदी)	श्री मथरादास पुरुषोत्तमदास	१।)
२८	सरजाम परिचय (हिं० म०)	श्री केशव देवधर	१॥)
२९	सावली चरखा	"	१)
३०	सुलभपूनी (हिं० म०)		≡)
३१	स्वराज्य की असली लडाई		॥)
३२	यह स्वराज्य कैसा		।=)

सर्व सेवा सघ प्रकाशन विभाग वर्धा

सर्वोदय की ओर

विनोबा

सर्वोदय सम्मेलन बोधगया के पूर्व तक के
महत्वपूर्ण भाषणों का संग्रह

सर्वोदय की ओर

सर्वोदय सम्मेलन, बोधगया के भू-दान-सम्बन्धी
विनोबाजी के महत्त्वपूर्ण भाषणों का संग्रह

१९५४

अ० भा० सर्व सेवा-संघ वर्धा का प्रकाशन

प्रस्तावना

सर्वोदय-सम्मेलन, बोधगया में इस वार बहुत महत्वपूर्ण चर्चाए एव भाषण हुए। सम्मेलन की प्रमुख कार्यवाही के दिनो में ही नहीं, अन्य छोटी-मोटी सभाओ में भी ये चर्चाएं हुई। सेवापुरी-सम्मेलन में किया हुआ २५ लाख एकड भूमि की प्राप्ति का सकल्प न केवल पूरा हुआ, अपितु उससे भी अधिक भूमि मिली। अत इन सभा-सम्मेलनो में इसके आगे के कार्यक्रम के बारे में भी चर्चा होना स्वाभाविक ही था।

विनोबाजी ने इस प्रश्न पर एवं अन्य विषयो पर मौलिक रूप से सविस्तर विवेचन किया। इस विवेचन एव विचारो का यह सग्रह है। इन विचारो को विषयवार एकत्र रखे जाने के कारण उनकी तारीखो का क्रम नहीं रह पाया। कई भाषणों को विषयवार ही जोड़ा गया है।

आशा है, यह सग्रह पाठको को उपयोगी सिद्ध होगा।

अ० भा० सर्व-सेवा-सघ, —अ० वा० सहस्रबुद्धे
मंत्री

विषय-सूची

सर्वोदय की ओर

१

नारायण-शक्ति की उपासना

ता० १८ अप्रैल १९५४ का दिन हिंदुस्तान के मजदूरों का दिन है। दुनिया में दूसरे मजदूर-दिन होते हैं। मजदूरों के त्याग का स्मरण उस दिन करते हैं। पर हिंदुस्तान के मजदूरों का यह दिन है। कुछ तो मजदूर होते हैं शहरों में और कुछ होते हैं ग्रामों में। शहरों में जो मजदूर हैं, उनकी आवाज़ सुनाने के लिए योजनाएं हैं। पर गांव-गांव में जो मजदूर हैं, दूसरों के खेतों पर काम करने के लिए जो बुलाये जाते हैं, उनकी हालत सब मजदूरों से बुरी है। सबसे निचले दरजे में वे मजदूर हैं।

तीन साल पहले इसी दिन पहला भूमिदान मिला था, जब मैं तेलंगाना में घूमता था। उस घटना का ज्यादा जिक्र मैं यहां नहीं करूंगा। कई दफा उसका बयान कर चुका हूं। अखबारों में, पुस्तकों में वह आया है, बहुतों ने पढ़ा और सुना भी होगा।

रिश्तेदार उसको छोड कर चले जाते है, वैसे मेरे साथियो मे से भी कई मुझे छोड कर चले गए। मैने उनको जाने की इजाजत भी दी। एक मौका ऐसा भी आया, जब बहुत जोरो से चुनाव चला और कुछ भाई मुझसे भी कहने आये कि आप अगर पद्रह रोज रुक जाय, तो अच्छा होगा। तब मैने कहा कि आप गगा-यमुना के प्रदेश मे रहने वाले लोग है। क्या गगा रुकेगी ? अगर वह नही रुकेगी तो क्या मुझे रुकना चाहिए ? और आश्चर्य की बात यह हुई कि उन दिनो भी भूमि की जो माँग हमने की, वह लोगो के दिलो मे पहुँच गई और उसे सुनने के लिए हजारो लोग आते थे और कोई शोरगुल नही था, जैसे अभी आप शात रूप से सुन रहे है। बिलकुल एकाग्र श्रवण वे करते थे। उनमे बडा उत्साह आ गया था। वहाँ से होकर मै आपके इस विहार-प्रदेश मे आया। यहाँ मुझे अब अठारह महीने हो चुके है और अठारह महीनो में करीब-करीब अठारह लाख एकड जमीन मिली या मिल गई होगी। अभी तक मेरे पास कोई पद्रह-सोलह लाख एकड का हिसाब है। एक-दो रोज मे दो-एक लाख एकड और हो जायगे, ऐसी मैने उम्मीद की है। इतनी जमीन इतने दिनो मे हुई।

एक बडी बात विहार मे हुई, जो हिंदुस्तान के दूसरे सूबो मे नही हुई। वह यह कि दूसरे सूबो में काग्रेस और प्रजा-समाजवादी दलो ने इसके साथ सहानुभूति के प्रस्ताव किये थे और वहा की उन जमातो के लोगो ने कुछ काम भी किया था, पर यहाँ की प्रादेशिक काग्रेस कमेटी ने एक बडा कदम उठाया, जिसमे उसने बहुत हिम्मत और दूरदर्शिता दिखाई कि बत्तीस लाख एकड का जो कोटा इस प्रात के लिए तय किया गया था, उसको उन्होने एक प्रस्ताव द्वारा मजूर किया और घोषणा की कि यह कोटा पूरा करने की हम पूरी कोशिश करेंगे। उसमे दूसरे भी राजनैतिक दलो का सहयोग उन्होने माँगा। इसी तरह यहाँ की प्रजा-समाजवादी पार्टी ने भी प्रस्ताव करके इसका समर्थन किया। यह एक बडा हिम्मत का कदम है। एक बडी जमात के इस सकल्प का परिणाम सारे भारतवर्ष पर अच्छा ही हुआ है। परतु इतना ही मै कहूँगा कि किसी सकल्प के करने से जो अच्छा असर हो

सकता है, वह उस संकल्प की पूर्ति पर निर्भर होता है। इसलिए बिहार प्रदेश के सब लोगों पर जिम्मेदारी है कि बाबा का काम जल्द-से-जल्द पूरा करके बाबा को बिहार से विदा करना चाहिए और दूसरे प्रांतों में जाने के लिए मुक्त कर देना चाहिए। यह जिम्मेदारी बिहार प्रदेश पर आती है। इसका स्मरण मैं आप लोगों को आज दिलाना चाहता हूँ।

मुझे खुशी है कि बिहार में ऐसी हवा तैयार हुई है कि लोगों के पास अगर प्रेम से मांगने के लिए जायं और उनको समझा दें, तो 'न' कोई नहीं कहेगा। हर कोई 'हाँ' ही कहेगा। कमवेशी देने की बात है, क्योंकि मनुष्य का लोभ एकदम से नहीं छूटता। फिर भी जो मीठे अनुभव आये, वे बहुत ही आशाजनक हैं—इस देश के लिए। इस आन्दोलन में करीब ढाई लाख लोगों ने दान दिया है, अभी तक। दो-तीन दिन में और हिसाब आयगा। अतः मुझे उम्मीद है कि तीन लाख लोगों तक का दान मिला हो, ऐसा हिसाब मिल जायगा। इसका अर्थ मैं यह करता हूँ कि तीन लाख लोगों के हृदय और बुद्धि में इस आंदोलन ने पूरा प्रवेश कर लिया। उनके जरिये वे तो दही जैसे बन गए। जैसे थोड़ा-सा दही दूध में डालते हैं, तो दूसरे रोज दूध का दही बन जाता है, वैसे ये जो तीन लाख दाता हुए वे हमारे इस यज्ञ के दही हो गए हैं, बाकी की सारी जनता दूध की जगह में है। उसका परिवर्तन इस दही-मिश्रण से आसानी से हो सकता है। यही पहले उपलब्ध हुआ, यह बड़ी बात है।

थोडी जमीन हो या ज्यादा, हर शख्स इस यज्ञ में दिये बगैर न रहे।

गोकुल-वृन्दावन में भगवान श्रीकृष्ण ने पहाड को, गोवर्धन पर्वत को, उठाने की योजना जब प्रस्तुत की थी, तब सब ग्वाल-बालो को, लडके-लडकियो को, बूढो को कहा था कि इस पहाड के उठाने में आप सब लोगो के हाथ और आप सब लोगो की लकडिया लगनी चाहिए। तो, जितने गोकुल-वृन्दावन मे बाल-गोपाल थे, सबने अपनी लकडियाँ लगाई। पहाड कही लकडी से उठता है ? लेकिन सब लोगो ने लकडियाँ लगाई—अपने हाथ लगाये। यह जब भगवान श्रीकृष्ण ने देखा तो कवि लिखता है कि आखिर भगवान ने अपनी अगुली का स्पर्श उस पहाड को किया और वह गोवर्धन पर्वत उठ खडा हुआ। तब से 'गोवर्धनधारी' भगवान का नाम पडा। काम तो उन्ही के नाम से होता है, उन्ही की अगुली का स्पर्श होता है, तब गोवर्धन पर्वत उठता है, परन्तु सब लोगो के हाथ का बल जब मिलता है, जब नर-समुदाय का बल मिलता है, तब उसमे नारायण की शक्ति दाखिल होती है। नरो के समुदाय मे जो शक्ति नई दाखिल होती है उसको नारायण-शक्ति कहते है। एक मे जो शक्ति होती है, उससे पांच गुना पाँच मे नही होती। जब सिर्फ पांच इकट्ठे होते है, तो हरएक की एक-एक सेर शक्ति मिल कर पांच सेर नही होती, बल्कि पचास सेर होती है। यह विज्ञान का विषय है। समूह मे, समुदाय मे एक नई शक्ति दाखिल होती है। यह जो नई शक्ति दाखिल होती है, वह ईश्वरीय शक्ति है, वह नारायण-शक्ति है और काम उससे बनता है। लेकिन वह तब दाखिल होती है, जब कि सब लोगो का सहयोग हासिल होता है। जिस काम मे सब लोगो का सहयोग हासिल होता है, उसी को यज्ञ कहते है।

जब देश पर कोई सकट होता है, तो यज्ञ किया जाता है। अपने देश पर आज सकट है। वह मौजूद है। कोई नया सकट आया है, ऐसी कल्पना मै नही करता। अदर-अदर ही सकट पडा है। मजदूर और मालिक का भेद, करोडो लोगो के पास कोई साधन नही जिंदगी हासिल करने का साधन नही, हरिजन और दूसरो मे छुआछूत पडी है,

मीठी या नरम बातें करना ठीक नही होता है।

'यज्ञ मे आहुति देना धर्म है और यज्ञ मे आहुति न देना अधर्म है,' यह कहना कठोर बात नही है। जो यज्ञ मे नही देता है और देश मे जो कर्त्तव्य उपस्थित है, उसे नही करता है, तो वह अधर्माचरण करता है। मैने कहा था कि इस यज्ञ मे जो हिस्सा लेगे, वे देव होगे और जो लोभादि के कारण नही देंगे, वे राक्षस साबित होगे और जो तटस्थ रहेगे, वे कवस्त साबित होगे। यह जो मैने कहा था, वह सोच समझ कर ही कहा था।

एक प्रजा-समाजवादी भाई ने कहा कि हम इस आदोलन को ठीक नही समझते तो इसमे दान क्यो दे? मैने जवाब दिया कि मत दो, लेकिन अगर पसद करने पर भी कोई लोभ के कारण नही देता है, तो वह राक्षस साबित होता है। 'राक्षस' यानी रखनेवाला, और 'देव' यानी देनेवाला। मैने कल सब लोगो के सामने यह जो कहा था, उसमे मेरी निर्वैर बुद्धि प्रकट होती है। मै तो लोगो को देशद्रोह से बचाना चाहता हूँ। जब बगाल मे लाखो लोग भूख से मरे, उस समय उन्होने पैसे का सग्रह किया, वे देशद्रोही थे। अगर मन मे द्वेष रखकर हम यह बात कहते तो दूसरी बात थी। हम यदि 'पाप-पुण्य' का फैसला करते और कहते जो पापी है, उसे कत्ल करो, तो वह हिसा होती। परन्तु हमने तो केवल वस्तुस्थिति सामने रखी। उस दिन विशेष स्थान और मौका देखकर ही हमने वह बात कही है।

मैने जगह-जगह जाकर कहा है, गाँव-गाँव मे कहा है कि अगर आपके गाँव मे सौ मनुष्यो के पास जमीन है, यानी जमीन के मालिक कहलानेवाले छोटे या बडे काश्तकार या जमीदार अगर सौ है और मुझे आपके गाँव मे ९९ दानपत्र मिलेगे, तो मै नही समझूगा कि मेरा यज्ञ सफल हुआ। मै कहूगा कि आपने मेरा सदेश पूरा नही समझ लिया है। सौ काश्तकार है, तो मुझे सौ दानपत्र मिलने चाहिए। एक भी कम नही चलेगा। तब मै समझूगा कि भूदान-यज्ञ का सदेश आप लोग समझते है। मनुष्य तो वह है, जो समझता है, मनन करता है। पशु मनन से काम नही करता और मनुष्य मनन से काम करता है। मै यह आशा करता हूँ कि यदि यह विचार

काम करने को राजी हो तभी स्वराज्य होगा। स्वराज्य के माने सिर्फ अपने लोगों का राज्य नहीं है। स्वराज्य के माने हैं, जिस राज्य में हर कोई समझता है कि मेरा राज्य है, मुझपर किसी का जुल्म हो नहीं सकता, मैं किसी पर जुल्म नहीं करूँगा, मुझे कोई नहीं दबायगा, मैं किसी को नहीं दबाऊँगा, किसीसे मैं नहीं डरूँगा, किसी को मैं नहीं डराऊँगा। यह जहां है, उसका नाम है स्वराज्य। स्वराज्य में ऐसा स्वाभाविक अनुशासन होना चाहिए कि लोग खुद होकर ही अच्छा काम करें।

सर्वोदयपुरी
१८-४-५४

२

धर्म-रहस्य

सर्वोदय-समाज में हमने, जिसे अनुशासन कहते हैं, वह नहीं रखा और उसका कोई खास विधि-विधान भी नहीं है। इस पर भी इस साल सर्वोदय-सम्मेलन में सेवक बहुत आये, जितनी कि इंतजाम करनेवालों ने आशा नहीं रखी थी। कहीं दूर से इतनी तादाद में, सब प्रान्तों से लोग आये यह एक बहुत ही आशादायक घटना है और इसका कुछ अर्थ है।

यहां आने से लोगों का अपने लिए कोई निजी स्वार्थ प्राप्तव्य है, ऐसी बात नहीं है। यहां आने से कोई भौतिक वस्तु उनको हासिल होनेवाली है या ऋद्धि-सिद्धि तावत सत्ता प्राप्त होगी, ऐसा भी कोई संभव नहीं। पर फिर भी लोग आते हैं, बड़ी शांति से सुनते हैं, बिना नियमों के और बिना विधि-विधान के नियमित बर्ताव करते हैं और जो संकल्प किये जाते हैं, उनको प्रस्तावों का रूप न देते हुए भी उनपर अमल करते हैं, यह छोटी बात नहीं है। अन्यत्र प्रस्ताव किये भी जाते हैं और उनपर अमल कराना पड़ता है—मुश्किल से। अनुशासन भी कराना पड़ता है। कृत्रिम उपायों का भी अवलंबन करना पड़ता है

जितना हो सकता है, उतना करना ही हमारा धर्म होगा। माना कि भूदान-यज्ञ एक श्रेष्ठ कार्य है—उस कार्य की तुलना मे, जो आज हम कर रहे है, फिर भी गीता क्या कहती है ? स्वधर्म गौण है, यह समझ कर क्या उसे छोडा जा सकता है। और पर-धर्म श्रेष्ठ है, यह समझ करके क्या उसे कबूल किया जा सकता है ? अत श्रेष्ठ-कनिष्ठ का विचार नही कर सकते धर्म-निर्णय मे, और जो काम हम करते है, वह सम्हालते हुए भी यदि इस काम को करेंगे, तो क्या हर्ज है ?"

ऐसे लोगो को मै समझाता हूँ कि भाइयो, धर्म-विचार की एक मर्यादा है, एक हद है। भगवान् श्रीकृष्ण जिदगी भर शस्त्रो से लडे। वे पराक्रमशील थे, दिग्गज योद्धा थे, लेकिन एक समय आया जब उन्होने जाहिर कर दिया कि अब मेरी मर्यादा हो गई। 'इसके आगे मै शस्त्र धारण नही करूँगा।' आप लोग जानते है कि "मै नि शस्त्र होकर जो भी मदद हो सकती है, करूँगा", ऐसी प्रतिज्ञा करके वे पाडवो की मदद मे गये। उसके आगे जिदगी भर—और काफी लबी जिदगी उनकी रही—उन्होने शस्त्र का इस्तेमाल नही किया, फिर भी महाभारत मे प्रसग आया और एक मौके पर उनको शस्त्र उठाना पडा, प्रतिज्ञा को अक्षरार्थ तोडना पडा, इत्यादि। इसमे मुझे अभी नही पडना है। लेकिन सतत शस्त्र चलानेवाले ने एक दिन कह दिया कि इसके आगे मै शस्त्र नही चलाऊँगा। उन्होने कर्मयोग छोडा नही, बल्कि कर्मयोग को वे ऊँची सतह पर ले गये।

हमको भी समझना चाहिए कि जिसे हम पुण्य-कार्य कहते है और धर्म कहते है, वह एक हद तक साधक होता है और उसके आगे वह बाधक हो जाता है। इसलिए तत्वज्ञानियो को कहना पडा—"धर्मोऽपि इह मुमुक्षो पापमुच्यते"—धर्म ही—जो मुमुक्षु है, छूटना चाहता है, उसके लिए पाप हो जाता है। यह जरा समझने की बात है कि कुछ हद तक एक काम को विकसित करने के बाद उस काम के जरिये उस मनुष्य का विकास होना बन्द हो जाता है।

गणित का एक प्रोफेसर पच्चीस साल गणित सिखाता रहा। दो-चार साल तो खैर, उसके सिखाने की कला सीखने मे गये होगे।

लेकिन मैंने ऐसा प्रोफेसर देखा है—गणित का, जो बहुत ही उत्तम सिखाता था। व्याख्यान सुन्दर देता था—गणित पर, लेकिन सुन्दर व्याख्यान देते-देते नीद भी लेता था। वह प्रोफेसर आखिर पकडा गया। यानी मैंने ऐसा प्रश्न बीच में पूछा कि वह एकदम चौक गया और हँसते-हँसते कहने लगा, "देख! तूने जो यह सवाल पूछा है, यह 'आउट आफ दी वे' है। और इसलिए इसका जवाब मै आज नही दे सकता, कल दूगा। आज मै सिखाता हूँ, तो उसके साथ थोडी-सी नीद भी मै ले लेता हूँ।" इसका उस वक्त मुझे इतना भान नही था। लेकिन बीच मे, मुसाफिरी मे, अपने कधे पर मै थोडा बोझ रखता था। पुरानी बात है, इस वक्त की नही है। चलता था तो चलते-चलते कधे पर बोझ रखा रहता, उसी को तकिया समझ करके अगर सिर को उसका आधार दे दिया तो चलते-चलते ही मुझे नीद आती थी। रास्ता अच्छा होना चाहिए, नही तो ठेस लगेगी। इस तरह एक काम में मनुष्य जब प्रवीण हो जाता है, तब उस काम के ज़रिये उसका विकास होना बद होता है।

मे गया तो जरा तकलीफ भी हुई, पर विकास शुरू हो गया बुद्धि का कि कैसे वन मे जीवन बिताना इत्यादि। लेकिन वन मे भी दो-चार, पाच-छ साल रहने के बाद आराम हो जाता है। कई प्रकार की सेवा वहाँ मिल जाती है और जीवन सुखी बनने लगता है। पर जहाँ जीवन फिर सुखी बनने लगा कि शास्त्रकार ने तुरत कहा, "अब तू बूढा भी हो गया है, तो चलना शुरू कर दे, अब तुझे ठहरना नही है।" इस तरह वे मनुष्य को निस्तेज नही बनने देते। यह शास्त्रकारो की निठुरता नही है।

इन दिनो हमको लगता है कि कोई बूढा हुआ तो घर मे उसकी सेवा जरूर होनी चाहिए। लडको को उसकी सेवा करनी चाहिए, उसका सेवा लेने का हक है। वह घर मे बैठे-बैठे बेटो से सेवा ले। पेंशन तो मिलती है—चाहे सरकार के जरिये न मिले, लडको के जरिये मिलनी चाहिए, ऐसी आशा इन दिनो हम करते है और माता-पिता को हम दया-पात्र समझते है। लेकिन हमारे शास्त्रकार पिता-माता को दया-पात्र नही होने देते। वे कहते है कि तुमने तो अपने बच्चे की सेवा की। अब उन बच्चो के बच्चे हो गये। तो तुम्हारे बच्चे अब तुम्हारी सेवा करेगे या उनके अपने बच्चो की सेवा करेगे ? इस वास्ते तुम यहाँ से हट जाओ। तुम्हारा यह काम नही कि बनी-बनाई सेवा लडको से लो और सुखी जीवन बिताओ। यह तुम्हारा काम नही है। जो आत्मीयता दो-चार लडको से तुम्हारी हो गई, वह तो एक प्रयोग हुआ। पहले तो स्वार्थ केवल शरीर मे था। लेकिन शरीर के बाहर जाकर त्याग करने का अभ्यास तुमको हुआ लडको के निमित्त से। अब जरा व्यापक क्षेत्र मे जाओ और दुनिया भर मे जितने लोग है, वे सब अपने कुटुम्ब के है, ऐसा समझ करके बर्ताव शुरू करदो। लडको की सेवा लेकर बिस्तर मे मरना धर्म नही है। इस तरह शास्त्रकार अत्यत निठुरता से कहते है, लेकिन उस निठुरता मे जो सदयता है, वह बडी मधुर है। हमारी तेजोहानि करनेवाली जो दया होती है, वही बदतर है। जिससे हमारी तेजोहानि न हो, ऐसी कठोर वाणी कोई हमको बोलता है, तो

मैं तो उसका उपकार मानता हूँ और उसके हृदय की दया का भान ही मुझे होता है।

इस वास्ते जिन कामों में दस-दस, बीस-बीस साल हमने बिताये, उन कामों का लोभ और मोह रख करके अगर उसीके अंदर सतत, आजीवन और आमरण रहना है, ऐसी हम कल्पना करते हैं, तो मेरे मन में निश्चय है कि हम अनासक्ति को पहचानते नहीं।

नित्य-कर्तव्य से एक ऊँचा कर्तव्य भी होता है। आज सुबह मैं चर्चा कर रहा था। लक्ष्मण से राम ने कहा कि तेरा धर्म है पिता की सेवा करना। मुझे वनवास जाना है। तू भी जायगा तो पिता को ज्यादा दुख होगा। उनकी सेवा में रहना तेरा धर्म है। अगर लक्ष्मण कबूल कर लेता राम की उस बात को, और वाल्मीकि उसी तरह की रामायण लिख डालते कि लक्ष्मणजी दशरथ और कैकेयी-कौशल्या की सेवा में रहे और बड़ी अच्छी सेवा उन्होंने की, तो हममें ऐसा कौन बहादुर था, जो इसमें नुक्स बताता? हम भी ऐसा ही कहते कि हाँ भई, ठीक है। रामचन्द्रजी के साथ जाने के मोह का उसने संवरण किया और पिता-माता की सेवा में वह तत्पर रहा।

भी होता है और उस परम धर्म के साथ अपने छोटे धर्म की तुलना करने का भी मौका नहीं मिलता। जहाँ ऐसा हो कि दोनों सादे धर्म हैं, एक ऊँचा है और एक नीचा है, तो वह धर्म ऊँचा है, इस वास्ते अपना नीचा धर्म छोड़े, वह काम गलत माना जायगा—जहाँ कि सादे धर्मों की तुलना है। पर एक स्वधर्म के साथ जहाँ परम धर्म की तुलना आती है, वहाँ वह विचार नहीं टिकता और सब-कुछ छोड़ना पड़ता है। इसलिए खास करके गांधी-वालों के लिए मैं कह रहा हूँ कि गांधी-वालों ने न मालूम कहाँ से कर्तव्य-भावना का एक बड़ा ही बोझ अपने सिर पर उठा लिया है। मैं समझता हूँ कि यह कर्तव्य-भावना नैतिक मनुष्यों के मन का एक रोग है और ऊँची उड़ान उससे रुक जाती है। यह एक बात ध्यान में रखने की है।

लेकिन इसपर से वही सवाल पूछा जाता है, जो यहाँ सर्व-सेवा-संघ की बैठक में भी पूछा गया था कि एक तो आप हमपर जिम्मेदारी डालेंगे कि खादी का काम करो, वह करना चाहिए, ग्रामोद्योग भी चलने ही चाहिए, इत्यादि। और हम संस्थाएं चलाते हैं तो हमारी प्रशंसा भी होती है कि आपने तो बड़ा अच्छा किया, वहाँ दिल्ली में प्रदर्शन बहुत अच्छा किया। तो यह प्रशंसा तब होती है न कि जब हम वह काम करते हैं ? अब इधर यदि यह आवश्यक हो कि सारे काम छोड़कर भूदान-यज्ञ में लग जायँ, तो दो आज्ञाएं आप हमको। कोई एक बात कहिये।" ऐसा एक सवाल उठा था। यह बड़ा ही सोचने लायक सवाल है। मैंने उसका उत्तर दिया कि मैं नहीं चाहता कि हमारी संस्थाओं के लोग, जो काम कर रहे हैं और जो मुफीद काम है तथा भूदान-यज्ञ के लिए पोषक है, उस काम को वे छोड़ दें और भूदान-यज्ञ में आयें। यह तो मैं नहीं कह रहा हूँ, लेकिन मैं यह भी नहीं कहता कि जिस ढंग से आज वह काम चल रहा है, उस ढंग से वह काम चलाते ही चले जायँ और भूदान-यज्ञ मानो कुछ हुआ या न हुआ, समान ही है, ऐसी ऐंठ में रहें। यह भी गलत होगा।

मैं चाहता हूँ कि उनका काम करने का तरीका ऐसा हो, जिससे

हुआ। हरिजनो ने ज़मीन मागी। उनको देने के लिए ही पहली माग की गई। दान मिला। वह हरिजनो ही में बँटा और फौरन नियम बनाया गया कि जितनी ज़मीन मिलेगी, उसका एक-तिहाई हिस्सा हरिजनो को दिया जायगा, जो कि भूमिहीन होगे। इतना होने पर भी हरिजन-सेवा करने वाले कार्यकर्ताओ को मै इतना उदासीन देखता हूँ—भूदान के लिए, कि मानो कोई चीज ही नही हो रही है। फिर जब बँटवारे की बात आ जाती है, तो एक भाई ने हमको लिखा कि हम सुनते है कि उत्तर-प्रदेश मे कोई बँटवारा शुरू हो रहा है। और शीघ्र ही हिंदुस्तान भर मे भी बटवारा होगा, ऐसा इधर आपके भाषण मे हमने पढा। हम आशा करते है कि उसमे हरिजनो के लिए कुछ रखा होगा, उनका भी स्मरण हुआ होगा। ऐसी आशा रखने वाला एक पत्र उन्होने भेजा। इन भले आदमी को इतना ज्ञान नही कि भूदान-यज्ञ का आदोलन ही शुरू किस तरह हुआ, उसमे हरिजनो पर किस तरह से आशा रखी गई, उनको आर्थिक गुलामी से मुक्ति देने का विचार उसमे किस तरह काम करता है, आदि। यहाँ तक हुआ है कि कई जगह हमको दान देनेवाले ने कहा है कि अच्छी-से-अच्छी ज़मीन दान देते है—पच्चीस एकड, लेकिन एक ही शर्त है कि कृपा करके हरिजनो को यह न दीजियेगा। अब कोई लोभी मनुष्य होता तो कहता कि हाँ, भई, ठीक है, क्योकि हमने यह तो जाहिर नही किया है कि हरेक का जो दान मिलेगा, उसका तिहाई हिस्सा हरिजनो को देगे। ऐसा तो नही कहा है। कहा इतना ही है कि कुल प्राप्त ज़मीन का तिहाई हिस्सा देगे। किसी शख्स की पच्चीस एकड ज़मीन नही देगे हम हरिजन को। दूसरो को देगे वह। कोई लोभी शख्स होता, तो इसी तरह करता। पर हमने कहा कि नहीं, आपका यह दान हम इस तरह नही ले सकते। आप अगर बिना शर्त के दान दे सकते है, तो लेगे। हरिजनो को भी जमीन दी जायेगी, मुसलमानो को भी दी जायेगी, सबको दी जायेगी। जो भी भूमिहीन होगे—सबको, उनको दी जायेगी और हरिजनो को तिहाई हिस्सा तो उन्हे देना है। इस वास्ते इस शर्त पर हम दान कबूल नही कर

सकते। ऐसे तीन-चार प्रसंग आये, यह मुझे याद है। इस तरह सारा चला। लेकिन वे भाई साहब हरिजन-कार्य में इतने मस्त और इतने एकाग्र रहे कि यह सारा उनको पता ही नहीं चला। अब मैं अपने मन में पूछता हूँ कि क्या हरिजन-सेवा करने का यह ढंग है?

ऐसी कई बातें मैं सुना सकता हूँ, पर उससे विस्तार होगा। उसकी जरूरत भी नहीं है। समझ लीजिए कि परम धर्म के आचरण के लिए स्वधर्म को उस ढाँचे में ढालना होता है और जो स्वधर्म उस ढाँचे में न ढाला जाये, उसको छोड़ना होता है।

ये दो बातें मैंने यहाँ पेश कीं। स्वधर्म का पर-धर्म से जब मुकाबला होता है तो ऊँच-नीच नहीं देखना होता है और स्वधर्म से ही चिपके रहना होता है। लेकिन स्वधर्म का जब परम धर्म से मुकाबला होता है तो उस परम धर्म के ढाँचे में स्वधर्म को ढालना पड़ता है। ऐसा न ढाला जाये या न ढाला जा सके, तो उस स्वधर्म को छोड़ना पड़ता है। यह धर्म-रहस्य सब लोगों के सामने मैंने रख दिया है।

सर्वोदयपुरी
२०-४-५४

३ :

श्रद्धा एवं बुद्धि

की है कि बुद्धि तो वह है, जो प्रमाण के बिना किसी चीज को कबूल नही करती और श्रद्धा वह है, जो किसी खास चीज को कबूल करने मे प्रमाण की अपेक्षा ही नही करती। बच्चे को माता के स्तन मे मिलने वाला दूध अपने लिए मुफीद होगा, यह सिद्ध करने के लिए किसी तर्क की, दलील की या प्रमाण की आवश्यकता नही होती। वह उसकी श्रद्धा का स्वाभाविक विषय है और उसी श्रद्धा मे उसका पोषण होता है। वह अगर तर्क-वितर्क करता रहे कि इस स्तन्य मे, इस दुग्ध से मेरा कहाँ तक पोषण होगा, इसमे किन-किन वस्तुओ का क्या-क्या मिश्रण हुआ होगा, जो मेरे शरीर के लिए कहाँ तक लाभदायक होगा, ऐसा अगर वह विचार करता चले, तो उसका शरीर सूखने की स्थिति आ जायगी। उससे उसका पोषण उपलब्ध नही होगा। इस वास्ते कुछ चीजो मे श्रद्धा ही रखनी होती है।

श्रद्धा कहाँ से आती है और बुद्धि कहाँ से आती है? जैसे किसी यत्र मे एक गति देने वाली शक्ति होती है और एक दिशा-सूचन करने वाली शक्ति होती है—यत्र मे ऐसे दो हिस्से होते है, यह तो विज्ञान का विषय है—ऐसे ही मनुष्य के जीवन मे गति देने वाली जो शक्ति है, उसको श्रद्धा कहते है, जो प्राण मे से निर्माण होती है। जो दिशा दिखाने वाली शक्ति है, उसको बुद्धि कहते है और वह मनुष्य की ज्ञान-शक्ति है। ये दोनो शक्तियाँ जरूरी होती है और मैने इस काम का आरम्भ केवल श्रद्धा से किया।

जब मैने देखा कि एक दृश्य सामने खड़ा है कि जहाँ गरीब लोग गुमराह हो गये है और अमीर लोग गुमराह होने से बाकी तो क्या थे, उनकी तो अक्ल ही गुम थी। इनकी तो खैर, राह गुम थी, लेकिन उनकी अक्ल ही गुम थी। ऐसी हालत मे मै पहुँचा तेलगाना मे, और मैने देखा कि इसके लिए जरूरी आदेश मिलना चाहिए। एक दिन अचानक दान मिल गया। हरिजनो की जमीन की माग थी। गाववालो के सामने रखी गई और उसका जवाब मिल गया। माग थी अस्सी एकड की, मिल गई सौ एकड। तब मै उस पर बहुत चिन्तन करता रहा और मान लिया कि यह एक इशारा है। ईश्वर का इशारा है। मै तो उसी

भाषा में बोल सकता हूँ, जो भाषा मेरे हृदय में है, दूसरी भाषा में समझता नहीं। लेकिन उस दिन मैंने बहुत सोचा कि क्या यह काम मैं उठा लूं। मेरा गणित का स्वभाव है और विज्ञान का प्रेम है। इसलिए मैंने हिसाब भी कर लिया कि करीब-करीब पाँच करोड़ एकड़ की जरूरत रहेगी। तो क्या इतना कार्यक्रम मैं उठा लूं? और मांगने से यह हो सकेगा? तो मेरा विचार मुझे कोई मदद नहीं करता था। मेरी हिम्मत नहीं जमी। आखिर में अंदर से आवाज आई कि अगर तू डरेगा इस काम को स्वीकार करने से, तो तुझे सीधे साम्यवाद को स्वीकार करना चाहिए। दो के सिवा तीसरी बात नहीं होगी। अंदर से जब यह एक आवाहन आया, तब इस काम को शुरू कर दिया और आपने देखा कि धीरे-धीरे जो टीकाशील लोग थे वे भी अनुकूल हो गये और यहाँ तक हुआ कि कम्यूनिस्ट, वहाँ मेरा जब प्रचार चलता था तो तेलुगु भाषा में पर्चा निकाल कर लोगों को समझाते थे कि यह एक नया ढोंगी मनुष्य आया है इससे सावधान रहना। तुलसीदासजी ने लिखा है

'संत भेद करनी कठिन वरनि न जाय प्रभु।

मिसाल मानी जायेगी।

बहुत दफा हृदय-परिवर्तन का मखौल उड़ाया जाता है। लेकिन जो लोग इस तरह करते हैं, उन्हींसे मैंने कई दफा कहा है कि मार्क्स ने आपका जो विचार परिवर्तन किया और कराया, वह क्या तलवार लेकर किया था? 'मेरे विचार कबूल करो, नही तो काट डालता हू सिर तेरा' क्या यह आवाहन दिया था? उसने तो एक विचार आपके सामने रक्खा और आपको वह जचा। तो हम समझते हैं कि आप ही विचार-परिवर्तन और हृदय-परिवर्तन के नमूने हैं। तो उस प्रक्रिया पर से हमारा विश्वास नही छूट सकता, आपको देख करके तो और भी बढता है। हमने तो यहाँ तक देखा कि जो विश्वास किसी सनातनी को होता है वेदो के लिए, या किसी मुल्ला को होता है कुरान के लिए, वैसा ही विश्वास मार्क्स के वचनो पर रखने तक की उनकी तैयारी मन की हो गई है, तो वह एक हृदय-परिवर्तन का ही नमूना है, चाहे उसमे जडता हो।

इस तरह भूदान के लिए लोगो के दिलो मे अनुकूलता पैदा हुई और इसमे चाहे कुछ मसला हल करने की शक्ति हो या न हो, दिलो को जोडने की कुछ शक्ति इसमे है, ऐसा भान लोगो को हुआ।

परतु हमारा मतलब यह तो नही है कि 'एक साथे सब सधे' कहते-कहते हम अपने को एक प्रात, जिला या थाने मे कैद कर ले। इससे अधापन आयेगा। तमोगुण मे भी एक प्रकार की एकता होती है। तमोगुण ऐसे अध अद्वैत मे से ही आता है। तमोगुण के बारे मे गीता ने कहा है कि 'एकस्मिन् कार्ये सक्तम्'। हमारी एकाग्रता तमोगुण की कोटि की होगी तो वह मृत्यु का कारण बनेगी। यदि हम एक ही क्षेत्र मे अपने को ऐसे सीमित कर लेते है, तो तमोगुणी बन जाते है। दो-चार माह मे यहाँ का निबटारा न हुआ, तो क्या हम यहा सदा के लिए बैठे रहेगे? पवनार मे तो हम बैठे ही थे। उसीमे ताकत पैदा हुई। यहाँ बारह माह पडा रहना पडे, तो फिर पवनार ही क्या बुरा था? कहाँ तक और किस मनुष्य को कैद रहना चाहिए, इसमे भी एक विवेक है। मैंने अपने लिए ऐसी कोई कैद नही मानी है। जब जहाँ काम का लक्षण दीख पडे, वहा जाना होगा।

गया जिला, जो मैने चुना, उस बारे मे कई लोग कहते हैं कि आपने वह ठीक ही विचार करके पसद किया। लेकिन मैने तो उसमे श्रद्धा से ही काम लिया। इसको अन्धश्रद्धा कह सकते हैं। कहना ठीक भी है। श्रद्धा स्वय अधी ही होती है। कान कहाँ देखते हैं? लेकिन आँख देखती है। बिना प्रमाण के जो मानती है, वह श्रद्धा है। प्रमाण के बिना नही मानती वह बुद्धि है। दोनो की हमे जरूरत है। श्रद्धा बुद्धि की पूरक है। श्रद्धा बिना सोचे चल पडेगी, बुद्धि पहले सोचेगी तब कदम रखेगी। कुछ बाते प्रमाण के बिना न मानने मे गुण है।

गया मे भगवान् बुद्ध पर श्रद्धा रखकर मैने प्रवेश किया और काम शुरू किया। बुद्ध भगवान् के नाम की प्रेरणा उसमे थी। बावजूद सब कठिनाइयो के यहाँ हमारा जितना स्वागत होता है, उतना स्वागत दूसरी जगह पर नही हुआ है। इस वास्ते इसको हमने ले लिया। पर हमारे मन मे ऐसा नही है कि दो-चार साल तक यहीं काम करते रहेंगे। दूसरो को यहाँ रहने के लिए आदेश दे सकते हैं पर स्थानीय कार्यकर्त्ताओ को यह भार उठा लेना चाहिए। सारे देश के काम का जिनपर आधार हो, उन्हे एक क्षेत्र मे सीमित करना या बिना छोड़ देना चाहिए।

इसे चाहे जो नाम दे दीजिये, लेकिन मैंने ऐसी प्रेरणा से ही कुछ कदम उठाये हैं। उसका परिणाम यह हुआ कि जब हमें सिर्फ बीस हजार एकड ही जमीन मिली थी, उस वक्त बापू की प्रेरणा से पाँच करोड का सकल्प किया। मुझ जैसा गणित-बुद्धि वाला तो ऐसा निश्चय कर नही सकता था। पर यहाँ मेरी गणित-बुद्धि ने काम नही किया। बुद्धि तो हिसाब के अनुसार काम करती है। तो जहाँ मेरी अपनी बुद्धि का ही काम नही था, वहाँ मैं दूसरो से क्या सलाह लेता? और मैं खुद अपनी बुद्धि से सोचता, तो भी जो नही कर सकता था, वह दूसरो की बुद्धि से कैसे हो सकता था? बिहार मे जब प्रवेश किया, तब इतना ही तय था कि सब प्रातो का जैसे कोटा है, वैसे ही यहा का चार लाख का पूरा करना है। पर इसके लिए भी वे बडे मुश्किल से राजी हुए। जब हमने सेवापुरी मे कहा कि हमें बुलाते हो, तो इतना स्वीकार करो, तब लोगो ने चार लाख की बात मानी। फिर भी जिस रोज हमने यहाँ कदम रखा, पचास लाख की बात कही। भूमि-समस्या हल करने की ही वह बात थी। कई दिनो तक यह बात सुनने पर मुझसे पूछा गया कि क्या आप वास्तविक रूप मे कह रहे है या हमारा उत्साह बढाने के लिए बडा आकडा बता रहे है? मैंने कहा कि उत्साह दिलाने के लिए भी हम झूठ बात नही कह सकते। तब सोच-विचार कर सबने बत्तीस लाख कबूल किये। यहाँ के काग्रेस वालो ने भी विलक्षण हिम्मत की और बत्तीस लाख का कोटा माना। दूसरे प्रात मे कही ऐसी हिम्मत नही की गई।

जब पद्रह-सोलह लाख हो गये तो बाकी हो ही जायेंगे। जमीन अच्छी है या खराब, यह हम नही सोचते। पहाड भी ले लेते है अष्टावक्र कुब्जा को भी भगवान् ने स्वीकार किया ही था न! और सिर्फ स्वीकार ही नही किया, उसे सुन्दर रूप भी दिया। लोगो की शिकायत है कि मुझे पहाड मिलते है। मै कहता हूँ, मुझे हिमालय ही दे दीजिये, गगा-यमुना भी मेरे हाथ मे आ जाती है।

बाद मे जमीदारो ने भी कहा, "आपका कोटा पूरा करने के लिए हम भी जमीन दे रहे है।" तब हमने उनसे कहा, "हमे बत्तीस लाख

एकड़ अच्छी जमीन चाहिए।" इस तरह हमने बत्तीस लाख में एक नया विशेषण 'अच्छी' जोड़ दिया। जितनी अच्छी जमीन मिली है, उतनी हमारे हिसाब में शुमार कर ली गई है, बाकी का कोटा पूरा करना है। परन्तु बत्तीस लाख की बात कहने से बत्तीस लाख की ध्वनि सारे वातावरण में फैल गई।

आगे मैं अब ऐसा एकाकी काम नहीं करना चाहता, क्योंकि मैं अब यह काम बुद्धि द्वारा करना चाहता हूँ। पहले तो मैंने मिठाई तक बांट कर जमीनें ली। पर एक दिन कह दिया, "अब ऐसे नहीं लूंगा विचार-प्रचार ही करूँगा।' उत्तर-प्रदेशवाले कहते हैं, एक करोड़ हम देते हैं। मैं कहता हूँ, बाबा राघवदास या करणभाई कहते हैं, याने मैं ही कहता हूँ। एक करोड़ की बात तो वहाँ के लोग ही कर सकते हैं।

संकल्प पूरा नही हुआ है, वहाँ नये संकल्प का कोई निर्णय करना ठीक होगा या नही ? मेरे ख्याल से जहाँ पुराना संकल्प पूरा नही हुआ है, वहाँ उसकी पूर्ति मे जो काम करना है, वह करने के बाद ही हम आगे बढ सकते है। यह एक पहलू है । दूसरा पहलू यह है कि हमने कुछ एकड जमीन की प्राप्ति का संकल्प किया। उसके साथ-साथ ठीक विचार समझा करके जमीन प्राप्त करना, यह बात भी मानी हुई थी। लेकिन जहाँ एक आंकडा सामने होता है, वहाँ यह मानना पडता है कि समझाने के तरीके पर शायद उतना समुचित ध्यान न रहे और किसी तरह जमीन मिल गई तो काम हो गया, ऐसा मानने की प्रवृत्ति होती है । इस वास्ते संकल्प के आंकडे बीच-बीच मे बढाते जाने के मार्ग मे यह एक सोचने की बात होती है। फिर भी प्रथम संकल्प ही यदि हम कुछ नही करते, तो काम को चालना ही नही मिलती और देश मे कितनी ताकत का आवाहन हम कर सकते है, इसका और हमारी शक्ति का भी हमे भान नही हो सकता था । इस वास्ते प्रथम एक छोटा-सा संकल्प कर लिया, लेकिन इसके आगे जो भी जमीन हमे प्राप्त होगी, वह पूरा विचार समझा करके हमने प्राप्त की है, इस बात पर अधिक जोर देना चाहिए। कई जगह ऐसा हुआ भी है ।

एक भाई ने मुझसे काफी चर्चा की और कहा कि हम आपका विचार नही समझते, ऐसी बात नही है । हम यह नही कहते कि आप कोई गलत काम कर रहे है, लेकिन यह तरीका ठीक नही है । इससे मसला हल होने वाला नही है । फिर भी हमारे पास कोई सज्जन मांगने आये थे, तो मैने दे दिया। मैने समझाने की कोशिश तो की, पर वे सज्जन समझ सके, ऐसी स्थिति नही थी। तो मैने अपने लोगो से कहा कि इनसे जो दान मिला है, वह लौटा दीजिये, क्योंकि जब वे खुद कहते है कि विचार मुझे जँच नही रहा है, तो किसी ने मांगा और उन्होंने दे दिया, इतने से अपना काम बनता नही है ।

ऐसी एक ही घटना अभी तक हुई है, गया जिले मे । शांति याचना मे बहुत पहले से ही था कि केवल आंकडे के जाल मे हम न फंसे, यह बहुत बडा खतरा रहेगा। इसलिए अपना जो अंतिम लक्ष्य है, वह

बनते हैं, तो हम सतुलन खो बैठते है। हमारा तो साम्ययोग है न !

श्री एम० एन० रॉय के अखबार मे इसी तरह का एक आक्षेप उठाया गया था कि निश्चित मुद्दत मे निश्चित आँकडा हृदय-परिवर्तन से प्राप्त होना चाहिए, ऐसा मानना कहाँ तक उचित है ? हृदय-परिवर्तन की क्रिया को तो वे मानते है, लेकिन वे कहते है कि इन दो का मेल नही बैठता है। पर मेल बैठता है, ऐसा दादा ने 'सर्वोदय' मे एक लेख मे लिखा है कि उसमे विरोध नही है। वह तो ठीक लिखा है, क्योंकि एक कार्यशक्ति भी हमारे काम मे आती है, जब कि हम एक मुद्दत रखते है। उससे हृदय-परिवर्तन को मदद मिलती है, यह उन्होने लिखा है। लेकिन इस तरह निश्चित मुद्दत मे सकल्पो के करने की भी एक मर्यादा है। आपने एक करोड का फड इकट्ठा करने का सोचा और एक करोड सभासद बनाने का भी सोचा। मान लीजिये कि ऐसे ही सकल्प बढाते जाते तो उसमे से कोई शक्ति निकलती, ऐसा नही होता। आरभ मे एक जागृति के लिए जो किया, वह ठीक था। लेकिन इससे ज्यादा हजार प्रकार के सकल्प हम किया करे तो हमारा विकास नही होगा, गलत दिशा विचार को मिलेगी और श्रद्धा अस्थिर बनेगी।

परन्तु इस बार हम कोई बीच का आकडा निश्चित नही कर रहे हैं, इसका मतलब यह नही है कि सेवापुरी मे आकडा निश्चित किया, उसमे कोई नुक्स देख रहे है। इन दो सालो के अनुभव से कुछ नया ज्ञान प्राप्त तो हुआ है, लेकिन वह ऐसा अनुभव नही है कि जिसकी वजह से हम अपने ५ करोड के लक्ष्य मे परिवर्तन करने जा रहे हो। पाँच करोड का जो आँकडा है, वह निश्चित ही है। सभव है कि पाच करोड मे काम पूरा न होता दीखे, तो छ करोड का करेगे। लेकिन पाच करोड का कम-से-कम आँकडा, जो हमने जाहिर किया था, वह निश्चित रूप मे हमारे सामने है। इस वास्ते जमीन के आँकडा का हिसाब इसके आगे भी कायम रहेगा और दानपत्रो का आँकडा भी कायम रहेगा। पर दो सालो मे जो काम और वातावरण निर्माण हुआ, उसका ठीक उपयोग करके हमारे विचारो की जो नीव है, उसको मजबूत बना कर ही अब आगे बढना ठीक होगा, अन्यथा जैसे सगठन

ने किया कि पेशावर तक सीधे चले गये, पर राज्य-व्यवस्था का काम वैसे ही रह गया और जैसे वे आगे गये, वैसे ही उन्हे पीछे लौटना पडा, वैसी ही हालत हो सकती है।

इस वास्ते इसके आगे पांच करोड एकड जमीन जल्द-से-जल्द हासिल करने का तरीका यही हो सकता है कि पूर्ण विचार समझा करके ही जमीन प्राप्त हो, ऐसा आग्रह रखा जाय और बीच मे नये आंकडो का कोई सकल्प न किया जाय, यह सुझाव मैंने कल दिया। जिनका पुराना सकल्प पूरा नही हुआ है, उनको तो वह पहले करना ही है। परतु जिनका वह सकल्प हो गया, उनको अब नये तरीके से बीच का एक आंकडा तय करने की जरूरत नही होनी चाहिए। अपना अतिम एक लक्ष्य है और वह लक्ष्य स्थूल भाषा मे हमने इस वास्ते रखा है कि हम स्थूल भाषा समझ सकते है। अगर केवल सूक्ष्म भाषा ही इस्तेमाल करे तो टटोलने के लिए प[illegible] के लिए, कोई चीज ही नही रहेगी। इस वास्ते स्थूल लक्ष्य सामने रख दिया। परतु मुख्य वस्तु जो हमे करनी है, वह हम स्पष्ट समझ ले कि जमीन की मालकियत की भावना और जमीन की मालकियत हमें हटानी है और वह विचार-प्रचार एव अपने शुद्ध जीवन के आधार पर ही।

इसके लिए जमीन का बँटवारा भी हमे ठीक ढग से करना होगा और जो नई जमीन मिलेगी, वह ठीक समझा-बुझा कर ही मिलनी चाहिए, इसका ध्यान रखना होगा। इस वास्ते हमें प्रचार के जरिये ही वह काम होना चाहिए कि जैसा हम चाहते है वैसा हम जनता को विचार समझा दे।

है, तो फिर उसकी मालकियत भी मत मानो। जहाँ मालकियत छोडने की बात आती है, वहाँ आपके पास निकम्मी चीज है या काम की चीज है, यह सवाल ही नही उठता है। वह चीज आपकी है और उसपर से आप अपना हक छोडते है, यही हम देखेगे।

कठोपनिषद् मे एक कहानी है। उसका अर्थ अक्सर लोग समझे नही है। कहानी यह है कि एक आदमी ने सर्वस्वदान दिया। सर्वस्व-दान दिया, तो उसमे उसका घर भी दान मे गया और घर के अदर जो कुछ था, वह भी घर के साथ चला गया। अच्छी गाये थी, वे भी गई और खराब गाये थी, वे भी गई। यह नही कि उसने कोई खराब गाय ढूंढ करके उन्हे दान मे दी हो। उसने तो सबकुछ दान मे दे दिया था। वह तो केवल 'सर्वस्व-दान देने वाला' था। उसका एक लडका था। उसने देखा कि खराब गाये जा रही है तो उसने सवाल पूछा कि यह आप क्या कर रहे है? दान मे खराब गाये दी जा सकती है क्या? पिता ने उत्तर दिया कि जब दान मे सभी दे दिया है, तो उसमे यह भी गया और वह भी गया। पिता तो 'सर्व ब्रह्म' समझने वाला था और वह लडका 'शुद्ध ब्रह्म, 'केवल ब्रह्म' को समझने वाला था। वह कहता रहा कि जो शुद्ध है, वही दान हो सकता है, दूसरा दान नही हो सकता है। पिता कहता था कि सब दिया, उसमे खराब भी आया। ऐसे दो पक्ष है। पिता ने बहुत समझाने की कोशिश की, दो-तीन बार कहा, फिर भी वह नही समझा। इसके आगे जो हुआ, उसे दोहराने की जरूरत नही है।

इसके आगे हम यह नही करेगे कि आपकी जमीन कैसी है, पहले यह देखे, और अगर अच्छी है तभी दान मे स्वीकार करे, यह हम नही करने जा रहे है। उनको समझायेगे कि हमको वह जमीन चाहिए, जो आप अपने लडके को देते है। यह हमारा फारमूला है। मैने हर जगह यही बात दोहराई है। कौन-सी जमीन हम मागते है, ऐसा जब पूछा गया तो हमने कहा कि अपने लडके को जो जमीन आप देगे, वही जमीन आप हमको दे। आपके घर मे पाच लडके है तो हम छठे है। हम छठा हिस्सा मागते है तो इसका मतलब

जाय, न ली जाय। हमने यह भी कहा है कि हिंदुस्तान मे सबसे बडा दुर्गुण है डर, जो हम कतई नही चाहते। और डरा कर अगर आपसे कोई जमीन मांगता है तो आप कह दीजिये कि जो करना है सो कर लीजिये, हम जमीन नही देंगे।

कहने का साराश यह है कि इसके आगे केवल आंकडो का कोटा रखने की जरूरत नही है। जो आखिर का आकडा है, वह हमारे पास पडा ही है। दूसरा तय करने के लिए एक छोटा-सा आकडा लगता है। दो बिंदु होते हैं तो रेखा बन जाती है। तो, आखिर का लक्ष्य सामने है, इस वास्ते वह रास्ता बन गया और पहले पच्चीस लाख एकड प्राप्त करने की जो बात थी, उससे चालना मिल गई। अब प्राप्त जमीन का बँटवारा करना होगा। कार्यकर्त्ताओं मे उसके साथ ही अगर शुद्धि आती है और अच्छा काम दीख पडता है, तो हम समझते है कि बाकी की जमीन, जो हम चाहते है, वह हमको शीघ्र-से-शीघ्र मिलने वाली है।

हमने गया मे भी इतना अनुभव किया है और उसपर से इस नतीजे पर आये है कि यहाँ तीन लाख एकड की मॉग थी सो तीन लाख न हुए हो और डेढ लाख भी हुए हो, तो भी तीन लाख एकड जमीन यहाँ हो चुकी है, ऐसा हम समझते है। यह इस वास्ते समझते है कि जमीन का वातावरण ऐसा हो गया है कि कोई मागने वाला ठीक ढग से जायेगा, तो उसको जरूर जमीन मिलती ही है। अब इतनी तादाद मे हमारे पास लोग नही, जो सर्वत्र पहुँच सके। इस वास्ते काम मे देरी लगे तो वह कुछ तरीके की कमी नही है। जहाँ हमने यहा की प्राप्त जमीन का वितरण अच्छा किया और उसपर सही काम बताया तो इसके आगे हमे फौरन जमीन मिलने ही वाली है।

पर जो डेढ-पौने दो लाख बची है, उसको मागना भी मै नही छोडूंगा। मै तो कहूँगा कि जमीन का बँटवारा करते समय ही हम वह मिलेगी। जमीन बाँटने को हम जायेगे, तो उस गांव मे कितने भूमिहीन है, उनको कितनी-कितनी जमीन देनी है, आदि हिसाब वहाँ होगा। फिर हिसाब होगा कि जमीन मिली कितनी

है ? हमको दो सौ एकड़ चाहिए और मिली है डेढ़ सौ तो फौरन वहाँ अपील की जायगी कि भाइयो, इन भूमिहीनों में से चंद लोगों को हम दें और चंद को न दें, ऐसा क्यों करवाते हो ? पचास एकड़ और देने की बात है, सो दे दो । जब ऐसी अपील होती है तो उस वक्त पचास एकड़ और आपको मिलने ही वाली है और कुछ भूमिहीनों को जमीन मिल जानेवाली है । इस तरह से आपका तीन लाख का आंकड़ा पूरा हो जाता है । अगर हम यह आग्रह करेंगे कि तीन लाख का कोटा पूरा करके ही फिर आगे जो वितरण आदि करना है सो करेंगे, तो एक नाहक विरोध से हमारी टक्कर होती है, क्योंकि लोग कहते हैं कि जो आपको मिला है उसे पहले बाँट करके तो दिखाइये । उसके बाद हम देंगे ।

जब वे ऐसा कहते हैं, तब बहाना निकालते हैं—भूमिदान न देने के वास्ते, ऐसा मानना गलत है । ऐसा नहीं मानना चाहिए और यह समझना चाहिए कि उनके कहने में कोई सार है ।

है, वह भी करे और फिर जमीन मांगे तो लोगो के पास से अधिक मिलेगी ही। यह रास्ता निश्चित ही है। जहाँ ऐसा रास्ता निश्चित नही हुआ हो या जहाँ वातावरण न बना हो, वहाँ जमीन प्राप्त करने मे, विचार-प्रसार मे जोर लगाये और अपने पूर्व-संकल्प का जो छोटा आंकडा बचा है, वह पूरा करने मे लगे।

हमको कुछ ऐसा अनुभव आया, जिसके कारण हम अपनी पद्धति बदल रहे है, ऐसी बात नही है। जो अनुभव आया, वही आने वाला था, ऐसा पहले से हमने आंख खोल कर माना है। इस तरह कोई नया अनुभव मुझे नही आया, याने मैंने कभी यह माना ही नही था कि जहाँ मांगने जाऊँगा, वहाँ अच्छी-से-अच्छी जमीन ही मेरे हाथ मे आयेगी और खराब उसके पास ही पडी रह जायेगी। लेकिन हम बार-बार दोहराते गये कि अच्छी जमीन का भी हिस्सा हमको मिलना चाहिए। उसके परिणामस्वरूप आप जब जमीन छाँटेगे तो आपको दीख पडेगा और आश्चर्य होगा कि इतनी अच्छी जमीन कैसे मिल गई! जितने प्रमाण मे मिली है, उतने प्रमाण मे कैसे मिल सकी, इसीका आपको आश्चर्य होगा।

हम समझते है कि हमने जितनी आशा रखी थी, उससे बहुत ही ज्यादा अच्छी जमीन हमको मिली, ऐसा हम समझते है। याने हमारी आशा रखने मे हमने पहले से गलती नही की। मुझे इसमे कोई संदेह नही है कि जो छोटे-छोटे दान-पत्र मिले है, वे बहुत सारे अच्छी जमीन के ही है और बडे दान-पत्रो मे भी कई लोगो के दान अच्छे दान है, यह भी मानना होगा। कुछ दान ऐसे भी है कि जहा देने वालो ने हमको यह कहा है कि बाबा, यह हमारी सबसे अच्छी जमीन है। कई उदाहरण ऐसे मेरे सामने है कि जिनमें दाताओ ने कहा है कि हम दान करते है, इस वास्ते दान मे अच्छी-से-अच्छी जमीन देना ही पसद करते है और इसलिए अच्छी जमीन आपको देते है। जितनी जिसकी शक्ति थी, उस शक्ति के अनुसार उसने त्याग किया है। हमे जो अनुभव अभी तक आया, वह बहुत ही अच्छा है। अब इसके आगे जो हम करने जा रहे है, वह पुराने अनुभव की कुछ गलती दुरुस्त करने के ख्याल से नहीं,

बल्कि एक कदम उठाने के बाद दूसरा यही कदम हो सकता है, इस ख्याल से।

अगर ऐसा नही करते है तो एक हद तक जमीन-प्राप्ति का काम आयेगा और फिर फौरन रुक जायेगा। इसके आगे आपको लोग जमीन हर्गिज नही देगे। वे कहेगे कि काफी जमीन आपको दे दी। पाच लाख एकड जमीन दी। आप एक करोड एकड मागते है, तो बहुत अच्छी बात है। पर पाँच लाख मे से आपने बाटी कितनी? एक साल मे पचास हजार एकड! इस रफ्तार से आपको दस साल लगेगे। तो आप ज्यादा जमीन लेकर करे क्या? हम क्यो दे? हमारे पास आपकी जमीन पडी है। आप पहले प्राप्त जमीन अच्छी तरह बाँट कर दिखाये तो दूसरी जमीन आपको हम देगे ही। ऐसा वे कहेगे और जमीन नही देगे पर आपके काम से जहाँ उन्हे सतोष हुआ, वहाँ जमीन मिलेगी ही।

सर्वोदयपुरी
१९-४-५४

५

भूमिहीनों का आन्दोलन और विहार

को देखना होगा। पहले हम दान-पत्र कितने मिले, यह नही सोचते थे। जमीन का कोटा पूरा होने की तरफ ध्यान था। लेकिन इससे काम पूरा नही होता है, यह ध्यान मे आया, तो दान-पत्रो का एक कोटा हमने तय किया। तब हमने कहा कि कितने गावो मे क्या मिला, इसका ध्यान रखो। थोडे प्रयत्न से सब जगह के भूमिहीनो को जमीन मिल सकती है, ऐसा जहाँ है, उन गावो मे हम मीटिग करें। भूमिहीनो की अलग मीटिंग करे। इसमें भूमिवान् भी आये। जिन्होने दान दिया है, वे भी आये। न दिया वे भी आयें। लेकिन खासकर भूमिहीनो की मीटिग की जाय। उनकी माग कितनी है, देखा जाय, हिसाब के साथ। और फिर दूसरी सभा भूमिवानो की की जाय। उनके सामने वह बात रखी जाय। उनकी तरफ से जो जवाब मिलेगा, उसपर सोचने के लिए फिर गाँव वालो की मीटिंग की जाय। इस तरह से मेलजोल के ख्याल से, दोनो पक्षो के बीच अपना विचार रख कर, गाव की समस्या हल करने की जिम्मेदारी गाव वालो पर है, इसका भान कराकर काम किया जाय, ऐसा सुझाव मैंने एक व्याख्यान मे दिया था और कुछ आरभ इन दिनो मैंने कर भी दिया। उसका परिणाम अच्छा आया। यह जब मैंने कहना शुरू किया, तो लोगो ने आक्षेप किया कि इसका परिणाम गलत भी हो सकता है और इसमें से वर्ग-सघर्ष का निर्माण हो सकता है। मैंने कहा था कि किस ढग से और किस उद्देश्य से यह हम करते है, उसपर निर्भर है। हमारा ढग ही ऐसा नही रहेगा कि गाँव मे दो हिस्से है और उनमे आपस के हितो में विरोध है। इस तरह का ख्याल करके हम सभा करने नही जा रहे है। परतु भूमि-हीनो को जगाना—क्योकि भूमि-हीन कितने है, यह हिसाब भी गाँव वालो को मालूम नही है—और उनको जमीन कितनी चाहिए, यह देखना हमारा काम है। भूमिहीनो मे कम जमीन वाले भी मान लेने चाहिए। यह सब हिसाब उनके पास नही है। तो हिसाब का भी ख्याल आयेगा, अपने हको का ख्याल आयेगा और कर्तव्यो का भी ख्याल आयेगा, क्योकि जमीन मांगने मे यह जिम्मेदारी आयेगी कि उसको पडती नही रख सकते, उसको जोतना

पड़ेगा। जमीन मांगना ही केवल कर्तव्य की बात नही है, बल्कि उसके पीछे भी एक और कर्तव्य आयेगा। जिनके पास भूमि है और जिस गाँव मे पहले ही अनुकूल वातावरण हो चुका है, वहाँ इस तरह हम करें, ऐसा मैंने कहा था। कुछ लोगो ने कहा था कि कही जमीदार-वर्ग अनुकूल नही है और किसी तरह से अनुकूलता ही नही है, वहाँ हम भूमिहीनो का आंदोलन करे। पर मैं इस तरह से नही सोचता, बल्कि जहाँ-जहाँ काफी प्रचार और सद्भावना निर्माण कर चुके, वहाँ ही ऐसी सभा की जाय। लेकिन आंदोलन जोरो से उठाया जाय, यह जो पक्ष चाहता है, वह इस अर्थ मे चाहता है कि केवल भूमि वालो के पास जाकर मांगने से काम होगा नही। कुछ प्रयत्न किया और हुआ नही, ऐसा नही। लेकिन इस ढंग से होगा नही, ऐसा उन्होने मान ही लिया। अत मैंने उस पर सम्मति नही दी है।

सब प्रातो का हिसाव देखा जाय तो ज्यादा-से ज्यादा एक-बटे तीन गावो मे हम पहुँचे होगे। तब भी दो-बटे तीन गाव बचे है और जयप्रकाश वावू ने जो बताया वह सही था कि यहाँ मैने जो नारा लगाया, उसका उद्देश्य ही यह था कि एकदम से जोर लगाने पर कुछ मुद्दत मे यह काम हो सकता है, ऐसा सावित हो जाय, तो इस पद्धति पर विश्वास जम जायेगा। मुझे जमीन के बँटवारे की उतनी चिंता नही है, जितनी कि अहिसा का यह तरीका कारगर है, इसपर लोगो का विश्वास हो जाय, इस बात की है। मेरा तो विश्वास है कि यदि बहुत सारे कार्यकर्त्ता इतने जड नही होते और फुर्ती से काम मे लग जाते तो अठारह महीने मे जरूर बत्तीस लाख एकड भूमि हो जाती और अच्छी जमीन भी उसमे काफी होती, इसमे मुझे सदेह नही है। और ऐसा हुआ होता तो आज इस सम्मेलन का रग कुछ दूसरा ही होता। याने सारे देश मे एक निश्चित श्रद्धा जग जाती। आज भी काफी श्रद्धा एक सकल्प के पूरे होने से हुई है, लेकिन जो कोटा माना था, वह पूरा हो जाता, तो विश्वास पैदा हो जाता, इस तरीके पर। फिर तो सवाल केवल गणित का रह जाता कि कितने कार्यकर्त्ता जुटाने है।

अभी तक यह ख्याल है कि जो चद लोग इसमे लगे है, उन्हीका यह काम है। मैं दूसरे प्रात मे जाता ही नही, इसलिए मेरा नाम वे नही लेते, लेकिन जिन्होने इस तरह एक प्रात मे रहने का निश्चय नही किया, उनका नाम लिया जाता है और हमारे प्रात मे आओ, कहकर लोग उन्हे बुलाते है। मैं एक जगह न बैठ कर अलग-अलग प्रांतो मे घूमता तो कैसे होता, यह मुझे पूछा गया, तो मैने कहा कि लोगो को अगर यह मालूम हुआ कि मैं हर प्रात मे जाता हूँ, तो क्या आप लोगो को जमीन मिलती? वे कहते कि विनोबा आयगा, तब देंगे। लेकिन जब हमने तय किया कि हम दूसरी जगह जाते ही नही रहे, तो स्वावलबन का मार्ग कार्यकर्त्ताओ को मिल गया।

इस तरह मेरा ख्याल था कि यहा यह काम पूरा हो जाता, तो सारे देश मे व्यापक आदोलन फैल सकता था। पर जो भी हुआ है, कम नही है। कुछ महीने और लगाने पडेंगे। सचमुच मुझे

ठीक मालूम नहीं, लेकिन जो मिली, उसका आधा हिस्सा भी हम अच्छी तरह बाँट दें, तो लोगों में विश्वास पैदा हो जायगा। जहाँ बँटवारा शुरू होगा, वहाँ और बहुत ज़मीन मिलेगी।

वितरण का एक समारंभ होगा और लोग देते ही जायंगे। यह अनुभव दूसरे प्रांतों में इतना नहीं आयेगा, क्योंकि वहाँ अभी पर्याप्त काम नहीं हुआ है। लेकिन यहाँ लोग पूछते हैं कि आपने ज़मीन जो ली है, उसका बँटवारा तो कीजिये। और लोग तो दान देने को टालने के लिए ऐसा कहते हैं, यह मानना गलत है। उनका कहना ठीक है। मैं समझता हूँ कि भगवान की यह इच्छा है कि आगे का काम ठीक ढंग से हो, इसलिए उसने शुरू में ही तुरंत यश नहीं दिया है।

: ६ :

प्राप्ति व वितरण में आत्मशुद्धि

कइयों ने मुझसे पूछा, "आप दुबारा कब आयेंगे और कब ज़मीन बँटेगी? बहतर है कि आप ही ज़मीन बाँटते भी चले जायँ। पूरी बाँट न सकें, पचास एकड़ मिली है तो बत्तीस एकड़ ही बाँट दें, बाकी की धीरे-धीरे बँटेगी।" यह अगर हो सकता है तो बहुत अच्छी बात है। प्राप्ति और वितरण में बहुत फासला रखना अच्छा नहीं है। लेकिन कानून की तैयारी हो रही थी, कार्यकर्ताओं की संख्या भी परिमित थी। अतः यह सब सोचते हुए उस काम को नहीं उठाया। जो एक संकल्प हमने कर लिया, वह अगर पूरा होता है—जिस किसी तरह वह पूरा हो, ऐसा मानना उचित नहीं है—और या भी मानें कि वह अधूरा है या पूरा भी है तथा अपूरा भी, दोनों है, तो भी मैं तो इतना आश्वासन देता हूँ कि लोगों ने उसे एक ताकत महसूस की और इतिहास में ऐसी बहुत घटनाएँ नहीं हुई हैं। इस तरह का संकल्प चाहे उस हिस्से में पूरा होने के कारण या [illegible] होने के कारण ही दूसरा भी हुआ है, तो भी इस तरह के [illegible] के इतने ज्यादा उदाहरण इतिहास में हमें नहीं मिलते

है। इससे आत्मशक्ति का जो भान हमको हुआ है, वह इसका बड़ा लाभ है।

लेकिन कुछ प्राप्ति के बाद और कानून की जरूरी मदद प्राप्त करने के बाद वितरण का काम फौरन शुरू हो जाना चाहिए, इसमे कोई शका नही है और बिहार वालो से मैंने कह दिया है कि सम्मेलन के बाद कम-से-कम उन जिलो मे, जहाँ पूरा कोटा न हुआ हो, लेकिन अधिक मिला है वहा वितरण शुरु कर देना चाहिए। इसमे अगर हम ढीले रहे तो हमारा काम खतरे मे है, इसमे शका नही। ढाई साल हो गये, फिर भी जमीन नही बँटी है, यह आक्षेप दिल्ली के एक पत्र मे आया था। उसकी एक कटिंग मुझे भेजी गई थी। जिसने जमीन दी थी, उसने ही कहा था कि हमारी जमीन बाँटने के लिए कोई आता ही नही। यह आक्षेप सही है। लेकिन जानबूझ कर अबतक हमने इस आक्षेप को नजरअदाज किया। लेकिन इसके आगे ऐसा नही चलेगा और वितरण मे हमे शक्ति लगानी होगी—कम-से-कम उन जिलो मे, जहा अधिक-से-अधिक जमीन मिल चुकी है। यह मै विधि या नियम नही बता रहा हूँ। जहा भी जमीन मिली है और परिस्थिति अनुकूल दीख पडती हो, वहाँ चाहे थोड़ी भी जमीन क्यो न मिली हो, लेकिन बाटना अच्छा है, ऐसा मालूम होता है तो वहाँ बाँट सकते है।

हैं। आपका दान-पत्र है सो तो ठीक है भाई, लेकिन हम पूछेंगे, प्राप्त किस ढंग से किया? "जिस ढंग से प्राप्त करना चाहिए था, किया", यह उसका उत्तर नहीं हो सकता।

तो उन कार्यकर्त्ताओं की भी हमें चित्त-शुद्धि करनी होगी, जिनसे कि हम काम लेना चाहते हैं। हमारी शुद्धि की बात तो इसमें आ ही रही है।

सर्वोदयपुरी
अप्रैल, १९५४

७ :
कार्यकर्त्ता कैसे प्राप्त हों?

मे जाना चाहिए, वहा मना है, उनमे प्रवेश करना चाहिए, मिलि-टरी मे दाखिल होना चाहिए, यह भी सेवा का साधन होता है, इस तरह उनको प्रेरणा हुई। इस हालत मे आपको कौनसे लोग मिलेंगे, इनका कुछ भान हमको होना चाहिए, ताकि हमको निराश न होना पड़े और कहाँ से लोगो को ढूंढना है, इसका भी मार्ग मिले।

जिनको प्रचलित परिस्थिति से अत्यत असतोष है और यह परि-स्थिति जल्दी बदलनी चाहिए, ऐसी तीव्रता जिनको महसूस होती है, ऐसो मे से ही आपको मनुष्य मिल सकते है और उनमे भी ऐसो मे से ही कि जो अहिसा को मानते है। आज की हालत से जिन्हे अत्यत असतोष है, ऐसे लोग मौजूद है लेकिन उनका इस तरीके पर विश्वास होना चाहिए, तभी वे इधर आ सकते है। इस वास्ते हमारा कार्यकर्त्ताओ की प्राप्ति का क्षेत्र बहुत सीमित है। आज की प्रचलित स्थिति मे देश-सेवा करने वाले बहुत सारे होगे—१०० मे से ९५ सरकार मे। वे प्रामाणिकता से देशसेवा करे तो हम उनको इनाम दे। बाकी जो पाच बचे है, उनमे से कितने आयेंगे, यह आपके तरीके पर लोगो की कितनी श्रद्धा आप जमाते है इसपर निर्भर है। जो कोई सोशलिस्ट बनते है,

एक लडका अभी कॉलिज छोडकर मेरे पास आया। वह मेडिकल कॉलेज का है। पढाई के तीन साल पूरे हुए। दो बचे थे, इसलिए कुछ लोगो ने उसकी मूर्खो मे गिनती की और बहिष्कृत-सा ही कर दिया। परमेश्वर की कृपा है कि वह डावाडोल नही है। लेकिन ऐसा आदमी आया तो उसके माता-पिता उसके खिलाफ बोल सकते है। जिस जमात मे वह आया है, वह सारी जमात कहती है कि यह तूने धर्मान्तर किया। धर्मान्तर करने वालो के लिए जो निंदा होती है, वैसी उसके लिए हुई, ऐसा मैने सुना। इसके साथ मेरे लिए कहा गया कि "आप उसको साथ रहने मे सम्मति देते है, जब कि दो ही साल बाकी रहे है डॉक्टर बनने मे। वह लोक-सेवा कर सकता था, लेकिन आपने सम्मति दी तो आपपर भी हमारी श्रद्धा नही रही।" इस वास्ते मैने इसको धर्मान्तर नाम दिया। इस तरह उसपर आक्रमण हुआ। अब वह मनुष्य हमारे पास आयेगा तो उसको हम क्या देने वाले है? कहेंगे कि पैदल चलो, घूमो और बारिश मे भी घूमो। उत्साह से वह आया तो सही, लेकिन इन कष्टो को सहन करने लायक उसका शरीर बना नही था। इसलिए अब उसके वैराग्य की परीक्षा हो जाती है। वहां कालेज मे तो उसकी अक्ल की परीक्षा हो गई और यहां उसके वैराग्य की कसौटी होगी। वह अगर यह काम न कर सका, तो उधर से भी गया और इधर से भी गया। इस प्रकार जैसे जो कार्यकर्त्ता हमको मिलेंगे, उनको आहिस्ते-आहिस्ते बढाना पडेगा। एकदम कोई हमारे पास आया तो भेजो बाबा की टोली मे, ऐसा नही हो सकता। उसको भी दूसरे कामो मे तैयार करना पडेगा और कुछ तहरीक के साथ भी रखना पडेगा।

था। मैंने कहा था कि गुरु तो है, लेकिन गुरुपत्नी कहाँ है? ऐसी हालत में हमने गुरु को ही सलाह दी कि तुम माता बनो। मराठी में गुरु को 'गुरुमाउली' याने गुरुमाता कहते हैं, तो वे माता बनने की कोशिश करें। शेरघाटी में शिक्षकों ने प्रस्ताव किया कि इसके आगे हम ऐसी कोशिश करेंगे कि गुरु के साथ गुरुपत्नी भी रहे और दोनों मिलकर शिष्यों की सेवा करें।

हमारे ऐसे स्थानों पर लोगों को संग्रह करने का कुछ साधन होना चाहिए, नहीं तो नये आये हुए लोग सूख जाते हैं। माता-पिता से भी वे संतुष्ट नहीं रहे, कॉलेज वालों से भी संतुष्ट नहीं है और कष्ट करते हैं तो शरीर भी खिलाफ बन जाता है। इस हालत में आपके पास पहुँचे तो टिकट के बिना खाना नहीं मिलेगा। अब कार्यकर्ताओं को तो हम तालीम दें, लेकिन पहले हमको ही थोड़ी तालीम हासिल करनी चाहिए और ऐसे कार्यकर्ताओं को प्रेम से और दया से रखना चाहिए।

सर्वोदयपुरी
१६-४-'५४

. ८ .

राज्य-सत्ता 'कहे' में

एक लडका अभी कॉलेज छोडकर मेरे पास आया। वह मेडिकल कॉलेज का है। पढाई के तीन साल पूरे हुए। दो बचे थे, इसलिए कुछ लोगो ने उसकी मूर्खो मे गिनती की और बहिष्कृत-सा ही कर दिया। परमेश्वर की कृपा है कि वह डावाडोल नही है। लेकिन ऐसा आदमी आया तो उसके माता-पिता उसके खिलाफ बोल सकते है। जिस जमात से वह आया है, वह सारी जमात कहती है कि यह तूने धर्मान्तर किया। धर्मान्तर करने वालो के लिए जो चिढ होती है, वैसी उसके लिए हुई, ऐसा मैने सुना। इसके साथ मेरे लिए कहा गया कि "आप उसको साथ रहने मे सम्मति देते है, जब कि दो ही साल बाकी रहे है डॉक्टर बनने में। वह लोक-सेवा कर सकता था, लेकिन आपने सम्मति दी तो आपपर भी हमारी श्रद्धा नही रही।" इस वास्ते मैने इसको धर्मान्तर नाम दिया। इस तरह उसपर आक्रमण हुआ। अब वह मनुष्य हमारे पास आयेगा तो उसको हम क्या देने वाले है? कहेगे कि पैदल चलो, घूमो और बारिश मे भी घूमो। उत्साह से वह आया तो सही, लेकिन इन कष्टो को सहन करने लायक उसका शरीर वहाँ नही था। इसलिए अब उसके वैराग्य की परीक्षा होनेवाली है। वहाँ कॉलेज मे तो उसकी अक्ल की परीक्षा हो गई और यहाँ उसके वैराग्य की कसौटी होगी। वह अगर यह काम न कर सका, तो उधर से भी गया और इधर से भी गया। इस प्रकार ऐसे जो कार्यकर्त्ता हमको मिलेगे, उनको आहिस्ते-आहिस्ते बढाना पडेगा। एकदम कोई हमारे पास आया तो भेजो बाबा की टोली मे, ऐसा नही हो सकता। उसको भी दूसरे कामो मे तैयार करना पडेगा और कुछ सहूलियत के साथ भी रखना पडेगा।

सग्रह किस तरह से किया जाय, यह सोचते हुए हमको ऐसा दीख पडता है कि जो मिल चुके है, उनका सग्रह करना हम सीखे। भूदान-यज्ञ समिति वालो के साथ काम करने के लिए बहुत लोग आते है। उनके साथ जो व्यवहार होता है, उसपर हमे गौर करना चाहिए। उनको सम्मेलनो–सस्थाओ मे अपना घर लगना चाहिए। इस वास्ते मुझे गृहस्थाश्रम का स्मरण आया। शेरघाटी मे मैने इसका जिक्र किया

था। मैंने कहा था कि गुरु तो है, लेकिन गुरुपत्नी कहाँ है ? ऐसी हालत में हमने गुरु को ही सलाह दी कि तुम माता बनो। मराठी में गुरु को 'गुरुमाऊली' याने गुरुमाता कहते हैं, तो वे माता बनने की कोशिश करें। शेरघाटी में शिक्षकों ने प्रस्ताव किया कि इसके आगे हम ऐसी कोशिश करेंगे कि गुरु के साथ गुरुपत्नी भी रहे और दोनों मिल कर शिष्यों की सेवा करें।

हमारे ऐसे स्थानों पर लोगों को संग्रह करने का कुछ साधन होना चाहिए नहीं तो नये आये हुए लोग सूख जाते हैं। माता-पिता से भी वे संतुष्ट नहीं रहे, कॉलेज वालों से भी संतुष्ट नहीं हैं और कष्ट करते हैं तो शरीर भी खिलाफ बन जाता है। इस हालत में आपके पास पहुँचे तो टिकट के बिना खाना नहीं मिलेगा। अतः कार्यकर्त्ताओं को तो हम तालीम दें, लेकिन पहले हमको ही थोड़ी तालीम हासिल करनी चाहिए और ऐसे कार्यकर्त्ताओं को प्रेम से और दया से रखना चाहिए।

सर्वोदयपुरी
१६-४-५४

८.

राज्य-सत्ता 'कहे' में

किया। ऐसी हालत मे फर्क हो-हो करके क्या हो सकता है? पर हां, बात रखने का एक तरीका होता है। सतरे मे कुछ खटाई ज्यादा होती है, नीबू मे और भी ज्यादा खटाई होती है और कोई फल मीठा-ही-मीठा होता है। किसी मे थोडा-बहुत कडुवापन भी होता है। ऐसी ही रुचि होती है। मनुष्यो के 'एक्स्प्रेशन' मे, विचार-प्रकाशन मे, कुछ फर्क हो सकता है, और जितना विचार-प्रकाशन मे फर्क होता है, उतना थोडा सोचने मे भी होता है।

जो बाते उन्होने कही, वे मुझे मजूर है, यह आप लोगो के सामने मै कह देना चाहता हूँ। यह तो समझने की बात है। आप तालियां मत बजाइये। अपने आनद को अपने मन मे ही रखिये। एक बात मै कह देना चाहता हूँ कि जिस ढग से वे बात रखते है, उस ढग से मै अगर बात रखूं, तो गलत काम होगा। इस वास्ते मै एक दूसरे ढग से चीज को रखता हूँ। उनकी एक विशेषता मै बहुत महसूस करता हूँ, जो दूसरे कम लोगो मे है। वह यह है कि उनके हृदय मे तीव्रता है। यानी जिसे हम 'अर्जेसी' कहते है, वह है। अग्नि है हृदय मे। अग्नि होना बहुत ही जरूरी है, पर दिमाग मे अग्नि नही होनी चाहिए। दिमाग ठडा रहे, हृदय गरम रहे, तो बडी ताकत पैदा होती है। उन्होने बात यह रखी कि भूदान-यज्ञ एक सिरा है। एक सिरे मे आपने आरभ किया। लेकिन अगर यह ठीक ढग से चलाया जाय और उसमे दृष्टि पूरी रहे, समग्र दृष्टि रहे, तो उसके परिणामस्वरूप राज्य-सत्ता मे भी परिवर्तन होना ही चाहिए, यह उन्होने कहा और यह विचार वह है, जो मैने मजूर किया है।

पर अब कोई कहेगा कि छ मे चार मिलाओ, इतना बस नही है, उसीमे से दस पैदा करने चाहिए, तो मै इतना ही कहूँगा कि दस पैदा करने की तो कोई स्वतत्र युक्ति ही नही है। छ मे चार मिलाने का नाम ही दस पैदा करना है। अगर छ मे चार मिलाने की क्रिया आप कर लेते है तो परिणाम-स्वरूप जो दस है, वे हो ही जाते है। वह कोई अलग करने की बात नही रहती। लेकिन यह एक विचार

तकलीफ उठाये विना और चुनाव आदि की झझट या झगडे मे पडे विना और अपने समय का उस तरह से क्षय किये विना राज्य-सत्ता पर अकुश रखा जा सकता है, ऐसा मेरा दावा है।

यही, इतना ही, फर्क है। मै पार्लमेट मे जाऊँ और वहाँ कोई विल आये और उसका खडन-मडन करूँ तो मेरी आवाज़ सीधे सरकारी मिनिस्टरो के कानो तक पहुँचेगी और उससे एक परिणाम होगा, यह मै मान सकता हूँ। लेकिन मेरा कहना है कि इस तरह पार्लमेट मे या असेम्वली मे कैदी हो करके और पैरोल पर छूटकर दो-चार महीने घूमने का जो मौका मिलेगा, उतने समय मे देश का दूसरा काम करके जो वज़न मेरे शब्दो को मिलेगा, उससे ज्यादा वज़न मेरे शब्दो को तव मिलेगा, जव मै उन सस्थाओ मे गिरफ्तार न होऊँ, वहाँ कैदी न वनूँ और वारह महीने जन-शक्ति निर्माण करने मे लगा दूँ, और जो मेरा अभिप्राय वनता है राज्य के विविध प्रश्नो के विषय में, वह निस्पृहता से, नम्रता से और निश्चय से अगर वताऊँ तो मै नही समझता कि पार्लमेंट के व्याख्यान का जितना परिणाम होगा, उससे उसका कुछ कम परिणाम होगा।

यह आप लोगो के सोचने की वात है। इतना फर्क अगर आप समझ लो तो उनके और मेरे कथन मे कोई विरोध नही आयेगा, और हम दोनो का हृदय एक है, इसका आपको भान होगा। मै उनको भी आवाहन करता हूँ। मै जानता हूँ कि हरएक की अपनी-अपनी पद्धति होती है। वे कभी-कभी कहते है, "आप जाते है भीख माँगने और परमेश्वर का नाम लेते है। यह अच्छा भी है, क्योंकि आप वैसा अनुभव करते है, श्रद्धा भी रखते है। लेकिन मै तो ईश्वर के नाम से नही चल सकता। मै तो सामाजिक मूल्य और आर्थिक परिवर्तन की भाषा मे कह सकता हूँ।" मै कहता हूँ कि एक ही वस्तु केवल एक ही भाषा मे कहने से लाभ होता है, ऐसी वात तो नही है। विविध भाषाओ मे कहने वाले विविध लोग अगर हुए तो वहुत अधिक वल उस चीज को मिलता है। यह कोई जरूरी नही है कि कृपालानीजी को भूदान-यज्ञ के काम मे कूद पडने के लिए परमेश्वर के साक्षा-

त्कार की ही आवश्यकता है, बल्कि उनको जो अर्थ-शास्त्र का साक्षात्कार हुआ है, वह काफी है और उस तरह से इसपर प्रकाश पड़ेगा तो उनसे भी कम बल नही मिलेगा।

मैं जानता हूँ कि उनकी इस काम के साथ पूरी सहानुभूति है। मै यह भी जानता हूँ कि उन्होने अपने शिष्यो को पूरी आजादी दे दी है इस काम के लिए, बल्कि उपदेश भी दिया है कि यह काम करो। मुझे यह भी मालूम है कि उन्होने बड़े अच्छे शब्दो मे इसका सत्कार किया है, इसपर लेख लिखे है। सब किया है, लेकिन उनकी पार्टी के जिन लोगो पर उनका कुछ वजन है, उन लोगो को अगर वे प्रेरित कर सकेगे, इस श्रद्धा से कि भाई, भूदान-यज्ञ मे काम करोगे, जन-शक्ति के निर्माण मे लगोगे और चुनाव-चिंतन नही करते रहोगे तो कुछ खोओगे नही, बल्कि जरूर शक्ति पाओगे और जो राज्यक्रांति हम चाहते है, वह बिना तकलीफ के हो जायगी, इस ढग से हो जायगी कि पता भी नही चलेगा। इस तरह अगर श्रद्धा उनमे पैदा हो जाय और वह अपने अनुगामियो मे ऐसी श्रद्धा पैदा कर सके और वे इस काम मे जोरो से लग जावे, और इसी तरह से कांग्रेस वाले भी अगर लग जावे, तो मै समझता हूँ कि यह समस्या बहुत ही जल्द हल होगी और उसके परिणामस्वरूप राजनीति पर अत्यन्त उत्तम असर होगा और राजनीति का लोकनीति मे परिवर्तन होगा।

लेनी चाहिए। आज तो इसके फलस्वरूप ऐसे सकेत निर्माण हो गय है, जिनको तोडना भी उनके लिए मुश्किल हो गया है, जैसे आज बहुमत वालो की ही सरकार बन सकती है। बिना किसी राष्ट्रीय सकट के सर्वदलीय सरकार नही बन सकती। मै नही मानता कि देश मे कोई प्रत्यक्ष सकट आने की ही, इसके लिए जरूरत रहती है। अगर हिंदुस्तान की ही बात ली जाय तो क्या यहाँ सकट कम है?

सर्वोदयपुरी
१५-४-५४

९

सर्वसम्मति या सर्व-सहमति से ही काम हो

जब हम समाज के नव-निर्माण की बात करते है तब अन्य बातो के साथ शासन-मुक्त होने की भी बात करते है। शोषण-विहीन की बात तो दुनिया मे बहुत लोग करते है और कुछ वादो का वही निष्कर्ष है। परतु हम सोचते है कि शोषण-विहीन के साथ शासन-मुक्त भी समाज को होना ही चाहिए, तभी शोषण-विहीन समाज की शक्यता या पूर्ति हो सकती है। शासन-मुक्त समाज के बिना शोषण-विहीन समाज नही हो सकता। उसकी शक्यता हो, तो भी उसकी पूर्ति शासन-मुक्त समाज के बिना नही हो सकती, ऐसा भी हमने कहा है। इसलिए हम तो इस निर्णय पर आये है कि शासन-मुक्त समाज ही हमारा उद्देश्य होगा। हमने वैसा कोई प्रस्ताव नही किया है, न हम वैसा प्रस्ताव कभी करते है, परतु हम सबका रुख शासन-मुक्त समाज की तरफ है। ऐसा रुख रखनेवालो के लिए विधान और सकेत मे फर्क ही क्यो होना चाहिए? अगर हम शासन-मुक्त समाज मे अपना आश्रय देखते है, उसीमे अपनी सुरक्षा पाते है, तो शायद विधान ही उठ जाता है और सकेत ही सबकुछ बन जाता है। फिर भी, जैसा अभी जाजूजी ने कहा कि आज हमे कुल देश के लिए सोचना है, सोपाधिक चिंतन करना है, तो अतिम आश्रय विधान के रूप म

मिलता है। इस तरह सोचा जाय तो आज की हालत मे यह गलत नही माना जायगा, परतु क्या हमारी कल्पना के अनुसार अतिम आश्रय विधान है? आज दुनिया के कई अहिसावादी कहते है कि हम परपरा तो अहिसा की ही चलायेगे, परतु कभी मौका आये तो शक्ति-देवी है ही, याने आखिर का आश्रय हिसा माना जाता है। जिस तरह कुछ लोग ईश्वर मे और परमेश्वर मे फर्क करते है, उसी तरह ये लोग कहते है कि हमारा आधार तो अहिसा है, परतु अतिम आधार याने परमेश्वर हिसा है। कही बात अड गई तो जिसका आश्रय हमे अत्यत सुरक्षित मालूम होता है, वह हमारा परमेश्वर होता है। ऐसा तो नही कहते है कि हम हिसा का प्रयोग करेगे, और आखिर मे आधार अहिसा का ही मानेगे बल्कि आज तो यह कहा जाता है कि हम मेल जोल से, अहिसा से काम करेगे, परतु अतिम आश्रय हिसा को मानेगे। इसका कारण यह है कि हम एक समाज मे पले है। फिर हम जितनी उडान उडना चाहे, तो भी सुरक्षा तो जमीन मे ही मालूम होती है। आज के समाज की रचना मे ही सोचते-सोचते हम ऊँची उडान लेते है। परतु आखिर मे मालूम होता है कि हमारा सरक्षण, हमारे आखिरी देवता की दृष्टि से सोचा जाये, तो विधान की कीमत हमारी दृष्टि मे शून्यवत हो जानी चाहिए। यह एक विचार हमने आपके सामने रखा है।

गाँव की बना दे और पाँच साल में सारी मिलें बंद करके ग्रामोद्योग को उत्तेजन दे—जैसे कि आज हम चाहते हैं। वैसा काम करनेवाली सरकार भी हो जाय तो उस हालत में भी हमारे लिए कुछ काम है या नहीं, इसपर सोचना चाहिए। क्या वैसी सरकार आने पर हम सब बेकार बन जायेंगे? उस हालत में सरकार में दाखिल होने के अलावा हमारे लिए दूसरा कोई काम ही नहीं रह जायगा। इसपर हमें सोचना चाहिए। आज की सरकार वे सारे काम ठीक से नहीं कर रही है, इतनी ही हमारी शिकायत नहीं है, बल्कि शिकायत यह भी है कि आदर्श सरकार होने पर भी हमारा काम बच ही जाता है। या तो यह कहना होगा कि कोई भी सरकार हमारा काम नहीं कर सकती। आज की सरकार हमारा काम नहीं कर सकती है, ऐसी बात नहीं, बल्कि आदर्श सरकार भी हमारा काम नहीं कर सकेगी। अगर यह हालत नहीं रही तो आज नहीं कल, हम सारे क्षीण-वीर्य बन जायेंगे। परंतु दंडनीति पर आधारित सर्वोत्तम सरकार भी वह काम नहीं कर सकती है, जो हम चाहते हैं। इसलिए उस हालत में भी हमारे लिए कार्य बच जाता है। टाल्स्टाय ने कहा था कि दो आदमियों में केस चला और छोटी अदालत में एक के खिलाफ फैसला हुआ, तो वह कहता है कि अब मैं ऊपर की अदालत में जाऊँगा। इस तरह करते-करते आखिर की अदालत में भी खिलाफ ही फैसला हुआ तो क्या करोगे? इसका जवाब मिलता है कि तब तो परमेश्वर को मानेंगे। फिर उनसे पूछा जा सकता है कि तब पहले से ही वहाँ क्यों नहीं पहुँचते जब आखिर में परमेश्वर को मानना ही है, तो पहले ही से परमेश्वर को क्यों नहीं मानते? यह सारा द्राविडी प्राणायाम क्यों करते हैं? इसलिए फिर मुकदमा करने का सवाल ही उठ जाता है। जैसे आज की हालत में मुकदमा होता है, मैं वह जानता हूँ। परंतु हमारी दृष्टि से वह सवाल ही उठ जाता है। इसलिए हमारी जो संस्था हम बनाना चाहते हैं, वह संस्था प्रचलित व्यवहार के लिए, चालू व्यवहार के लिए हो तो हम व्यवहार तो करें, परंतु व्यवहारपरायण हम नहीं हैं, इसे ध्यान में रखें। हम तो विचार-परायण हैं, भावनाप्रधान हैं। विचार के कारण जो सारी मुसीबतें पैदा

होती है, वे जरूर पैदा हो। वे हमें मुसीबतें नहीं मालूम होंगी, बल्कि विचार-वर्धक और बुद्धि-वर्धक मालूम हो और हम ऐसी मुसीबतें पैदा करते जायें।

सर्व-सेवा-संघ एक व्यापक संस्था है और ग्रामसेवा-मण्डल छोटी संस्था है। इसलिए दोनों के काम करने के दो तरीके होंगे। परन्तु सर्व-सेवा-संघ भी व्यवहार का प्रयोग करनेवाली आध्यात्मिक संस्था हो। कुछ लोग कहते हैं कि हम एकमत की बात के लिए क्वेकर्स (Quakers) का दृष्टांत लेते हैं परन्तु उनका काम तो आध्यात्मिक ही है और उनके सामने जो सवाल है, वे भी वहीं तक सीमित है, पेचीदे नहीं हैं। इसलिए वे एकमत से काम करते हैं, तो उनके लिए यह शक्य है। हमारे लिए भी उस हालत में वह शायद शक्य होगा। परन्तु उनकी मिसाल अलग है। उनकी मिसाल लेकर विचार करना ठीक नहीं होगा, क्योंकि हमारा काम ही उनसे अलग है। हमारा काम है समाज में एक विशिष्ट विचार प्रचलित करना उसके अनुसार जीवन बनाना। इसलिए उनका मूल स्रोत अत्यन्त निर्मल होना चाहिए। गंगोत्तरी में पानी अत्यन्त निर्मल होता है। फिर आगे चल कर जो होना है, वह होने दो। व्यापक काम में आगे कुछ भी हो सकता है, परन्तु मूल में स्रोत शुद्ध और स्वच्छ होना चाहिए। सर्व-सेवा-संघ मूल स्रोत है, यद्यपि वह एक व्यापक संस्था है। मूल स्रोत में हम अत्यन्त निर्मल हों। उसे हम जितना निर्मल रख सकें उतना रखें। उस दृष्टि से हम

विधान और सकेत मे हम फर्क ही क्यो करे ? इस तरह फर्क करके एक परम आश्रय और एक साधारण आश्रय, ऐसा क्यो माना जाय ? मुझे खास तौर से जो बात कहनी थी, वह विधान और सकेत की थी। अब उसपर सोच कर आप लोग निर्णय कीजिये। सर्व-सेवा-सघ के लिए मैंने जो कहा था कि कम-से-कम, महत्व के विषय मे तो एकमत से काम करो, वह एक बिलकुल व्यावहारिक प्रस्ताव था। जहाँ अनेक सघो को एकत्र करके एक समग्र, पूरा विचार किया जाता हो, वहाँ भी हम इच्छा करते है कि अधिक-से-अधिक एकमत से काम हो, एक परम आश्रय और दूसरा साधारण आश्रय, ऐसा न हो। फिर उसमे विधान और सकेत का भेद न हो। जो भी करना है, एक ही भाषा मे करो। इसमे अनेक सस्थाए घुलमिल जायेगी। परतु कुछ लोगो का कहना है कि इससे उल्टा भी कहा जा सकता है। जहाँ आप अनेक सस्थाओ को एकत्र करने की बात करते है, वहाँ बहुमत का आश्रय जरूर चाहिए। परतु मेरी दलील तो इससे भिन्न है। भले ही हमारा बहुत-सारा काम सरकार उठा ले, चाहे आज की सरकार न उठा सके। तो भी ऐसी सरकार आने वाली है। परतु तब भी हमारे लिए कुछ काम बचेगा ही। उस बचने वाले काम की ओर दृष्टि रख कर हम अपने आज के सब काम करे।

सर्व-सेवा सघ का स्वरूप क्या हो, इसके बारे मे प्रश्न उठा है। सर्व-सेवा-सघ को व्यापक बनाना चाहिए, इसकी जहाँ भूख हमको लगी है—और जहाँ भूख लगती है, वहा माँ के स्तन मे दूध होता है—वहाँ भूदान की समितियाँ भी पैदा हो गई है। याने किस तरह सर्व-सेवा-सघ व्यापक होगा, इसका एक नक्शा ही हमारे सामने तैयार हो गया। जो समितियाँ बनी है, उन्ही एक-एक को देखकर हम सर्व-सेवा-सघ मे ले सकते है। हमारे पास चुनाव के लिए एक क्षेत्र ही मिल गया। कोई हजार-बारह सौ लोग है, सारी भूदान-समितियो मे। उनमे से अगर आपको पाँच-पचास लोग लेने हो तो लीजिये और उन समितियो को आप आत्मसात् करे। इसमे जो आ गये, उनपर सर्वोदय का कितना रग हम चढा सकते है, इसपर अब सारा निर्भर है। और जो लोग आत्मसात् हो सकेंगे उनको आत्मसात करना होगा और उनके साथ

हमे अपना सबध बनाये रखना पडेगा । पक्ष-भेद की दृष्टि छोड कर यह सयम करना होगा ।

पर सघ के विस्तार के बारे मे मुझे जो महत्व की बात लगती है वह यह है कि आज व्यूह-रचना और समूह-शक्ति, ये जो प्रमुख शक्तिसाधन माने जाते है, उससे मै सहमत नही हूँ । अहिंसा इन पर निर्भर नही रहती, आत्मशुद्धि पर निर्भर रहती है । हम देखते है कि सिखो के इतिहास मे पारस्परिक अविश्वास के कारण कितनी हानियाँ हुई है। रामदास स्वामी के मठो का भी ऐसा ही हाल रहा। जो-जो राजनैतिक या धार्मिक सस्थाएँ रही, उनमे ऐसा अविश्वास का वातावरण बराबर रहा है। सगठन न मानने वाला तो एक कबीर ही निकला, जिसने अपने जीतेजी, ऐसी कोई चीज नही छोडी, जो सम्प्रदाय बनती । जो कुछ कबीरपथियो ने किया, बाद मे खुद ही किया। व्यावहारिक सगठन जहाँ नही होता है, वहाँ मत्सर नही होता, ऐसी बात नही है। परतु देखना यह होता है कि शक्ति और सत्ता-प्राप्ति की हमारी वासना मूल वस्तु को ही खत्म न कर दे।

अनेक मिल कर, एक साथ सगठन के रूप मे जो लोग काम करना चाहते है उनको शक्ति-साधना के इन मार्गो से अपने को अलग रख कर पारस्परिक विश्वास का वातावरण ही बनाये रखना चाहिए। सस्थाओ मे परस्पर-विश्वास की अगर कमी रही, तो सारा सगठन ही निकम्मा साबित हो जाता है। अनेक सस्थाओ और सगठनो की यह स्थिति मैने देखी है। अत सगठन के विस्तार की चर्चा करते समय हमे इन चीजो का ध्यान रखना होगा। आज सगठनो मे सारा कारोबार मनोभूमिकाओ पर चलता है, लेकिन अरविंद ने बताया कि जबतक हम 'सुपर ह्यूमैन' बनकर काम नही करते है और मन का विचार काम करते समय नही छोडते है, तबतक दुनिया के मसले हल नही हो सकते । हमको तो मन के ऊपर जो एक अध्यात्मरूपी वैज्ञानिक स्थिति होती है उसके प्रकाश मे ही काम करना चाहिए ।

मसूरी
१८-४-५४

१०

व्रत-मर्यादा

ग्रामोद्योगों को हम भूल ही नही सकते, इसमे कोई शक नही। जब हमने तीन साल पहले खेती पर जोर देना शुरू किया तो एक भाई ने कहा कि खेती भी प्रधान वस्तु है और क्राति का झडा उठाना खेती के आधार पर ही होगा। उसके विरोध मे मैंने कहा था और एक लेख भी उस सबध मे लिखा था कि हमारा क्राति का झडा चरखे का ही रहेगा, क्योकि खेती बढानी चाहिए, उपज बढानी चाहिए, इसमे किसीकी दो राये हो नही सकती। जिसके बारे मे दो राये है, वह है ग्रामोद्योग का विषय। इसलिए हमारा झडा, जो चर्खे का बना है, वही ठीक झडा है। शकररावजी कहते है कि ग्रामोद्योग मे शिथिलता आ रही है। बात तो सही है। अब इसके कई पहलू है। लेकिन साप्रदायिकता की जो बात चलती है, वह इसलिए चलती है कि कोई अगर ऐसा व्रत ले कि मैं फलानी चीज़ नही खाऊँगा, तो यह कोई बुरी बात तो नही है। लेकिन एक शख्स अगर व्रत लेता है तो उस काम को बढावा देने के लिए वह क्या करता है? उसके व्रत के दो प्रकार होगे। बाहर जाने के बाद या तो वह उस व्रत को छोड ही दे, क्योकि वह चीज़ मिलती नही है या फिर पैदल यात्रा आदि प्रचार-कार्य ही छोड दे, इस नतीजे पर हमको आना पडता है। हम व्रत इसलिए नही ले सकते कि अपने को सीमित कर ले, बल्कि इस वास्ते लेते है कि हमारी विचार की धारा तीव्र बने, याने हम जहाँ भी जाये, वहाँ प्रचारक के तौर पर ही जाये। तभी यह व्रत हमारे लिए अनुकूल है और लेना ज़रूरी है। मेरे मन मे भी कभी-कभी यह बात आती है। एक जगह गाय का दूध हमारे लिए आया और उसमें काफी पानी मिला हुआ था। महादेवी ने पूछा कि क्या बात है? कहा गया कि 'हा, हमने पानी डाला तो है। पार्टी मे १०–२० लोग थे और कुल इतना गाय का दूध चाहिए, ऐसी बात थी। लेकिन इतना मिलता नही और आपको तो भैस के दूध से परहेज है, पानी

कहा तक ठीक होगा, एसा विचार उनके मन मे आता है। उमका हमको कुछ निर्णय करना होगा और कार्यकर्त्ताओ को मार्ग-दर्शन देना होगा। मेरा मतलब यह है कि व्रत से हम अपने को सीमित न करे। लेकिन ग्रामोद्योग का काम हमे करना ही होगा। जहा जमीन का बँटवारा हुआ, वहा दूसरा काम सबसे पहले ग्रामोद्योग का आयेगा, इसमे शक नही।

सर्वोदयपुरी,
१६-४-५४

· ११ ·

उद्योग और संपत्तिदान-आन्दोलन

इस सबध मे हमारी जो अर्थ-नीति है, उसपर हम विशेष जोर दे और सकल्प मे उसका कुछ निर्देश अपने भूमि-आदोलन के साथ-साथ हम करे तो बहुत अच्छा है। लेकिन सपत्तिदान-यज्ञ-आदोलन को जोर मिले, इस वास्ते कही से ईश्वर का थोडा इशारा चाहिए। जैसे भूमिदान-आदोलन मे वह पोचमपल्ली वाली बात अगर न हुई होती तो यह आदोलन इस तरह से शुरू नही हो सकता था। किया भी होता स्वतत्र रूप से, तो भी जो आज जितनी स्वाभाविकता से हो रहा है, उतना नही होता। मै इस तलाश मे हूँ और जो मिलते है, उनसे बात भी करता हूँ कि कोई कारखाने वाले मालिक हमको मिले कि जो ट्रस्टी के नाते हम जो करना चाहते है, वह करने को राजी हो, तो ईश्वर का इशारा हमको मिला, ऐसा हम समझेगे। वैसे विचार-प्रचार तो हम करेंगे। वह सवाल ही नही है। कुछ मिलेगा, इसमे भी शका नही है। लेकिन जैसे भूमि के कोई मालिक नही हो सकते, यह हम जोरो के साथ आज कहते है, और इस चीज से इन्कार करने वाला मनुष्य सामने खडा ही नही हो सकता, वैसे सपत्ति के कोई मालिक नही हो सकते, ऐसा अगर मै बोलना शुरू करू तो वह उपनिषद् वाक्य होगा याने वह मान्य वाक्य है। परतु सुन करके उसपर अमल करने की वह चीज है, ऐसा नही होगा। याने वह श्रुति-वाक्य होगा

विधि-वाक्य नही होगा और श्रुति-वाक्य तो 'त्यक्तेन भुंजीथा' कह ही दिया है।

इस वास्ते हमने थोडी आशा रविशंकर जी महाराज से रखी थी कि उनके पजे में, पकड में कोई महाजन आ जाये और सज्जन और महाजन दोनो मिलकर यह समझे कि छटा हिस्सा तो देंगे ही दे लेकिन बचा हुआ ⅚ जो है वह भी समाज का है और हम उसके ट्रस्टी है ऐसा समझ कर उसका विनियोग करने को राजी हो जाय। ऐसे कुछ मनुष्य हमे मिल जाय आपको मिले या जय-प्रकाश को मिले या शंकरराव को मिले किसी को भी मिले तो उनके जरिये उनके आधार पर ईश्वर का इशारा समझ कर हम बात को बहुत जोर दे सकते है। वह इशारा अभी हमको नही मिला है।

नही करते। यह मुझे बारबार लगता है।

संपत्ति वाले अगर अपनी संपत्ति नही देते है, तो संपत्ति बेकार ही हो जाती है। देते है, तो कुछ काम मे आती है। एक भाई से मैंने कहा कि आपके मरने पर ये टैक्स लगाते है। आज तक मृत्यु पर कभी टैक्स लगा था? एक नई घटना यह हो रही है। एक मनुष्य मरता है, तो उसका टैक्स लगता है। तो फिर जीते जी ही आप क्यो नही यह काम उठाते? मतलब यह कि आपके मरने की वासना जनता रखेगी। मैंने यह चीज़ इस अजीब भाषा मे उसे समझाई और कहा, "यह कब मरेगा और कब उसकी संपत्ति हमारे हाथ मे आयेगी', ऐसी वासना जनता रखेगी।" हमने फिर उसे कहा कि आप अपने जीवन मे ही उसका सदुपयोग करो, तो आपको नेतृत्व भी मिलता है समाज का। आखिर धनिक लोग वे है, जिनके पास न केवल धन है, बल्कि अक्ल भी है, क्योकि अक्ल नही होती तो धन आता कहाँ से? इस वास्ते आपके पास धन और अक्ल दोनो होते हुए आज के समाज की परिस्थिति और माग का भान आपको हो जाय और थोडी-सी और अक्ल बढ जाय, तो आपके हाथ मे नेतृत्व आता है, नही तो आप धन भी खोने वाले है और नेतृत्व भी जायगा।

एक भाई आये थे। काफी बाते उनसे हुई। उन्होने कहा कि आपका भूमि का आन्दोलन जैसे-जैसे बढता जा रहा है वैसे-वैसे हम लोग समझ रहे है कि यह चीज़ हमको करनी पडेगी और वैसे ही कुछ मनोभावना हमारी हो रही है। फिर उसकी पुष्टि मे उन्होने कहा कि इससे बहुत ज्यादा तकलीफ भी हमको नही होनेवाली है। यह सुन कर मुझे बहुत खुशी हुई, क्योकि हमारा याने यहाँ के पूजीपतियो का जीवन यूरोप-अमरीका के पूजीवालो के जैसा बहुत खर्चीला नही है। हम काफी सादगी से रहते है। अभी तक हमारी सभ्यता और गाधी-जी के कारण हम बचे हुए है और ज्यादा खर्चीले नही बने है। इस वास्ते परिवर्तन होगा भी तो ज्यादा तकलीफ हमको नही होगी, ऐसा वे बोलते थे। उससे मुझे समाधान रहा कि अगर परिस्थिति निर्माण हो जाय तो ऐसे कुछ लोग मिल जायगे।

परिस्थिति का दवाव जैसा आपको सूझ रहा है कि अगर इनके साथ हम उसे नही जोड देते हैं, तो बात पूरी नही होती, वैसे ही उसका दूसरा पहलू यह भी है कि जैसा कि एक भाई ने कहा, जैसे-जैसे जमीनवाले लोग देने लगते हैं, तो हमको अनुभव यह आया है कि व्यापारी मनोवृत्ति के जो लोग जमीदार है, उनके हाथ से जमीन जल्दी नही छूटती, पर जो राजा-महाराजा हैं, ठाकुर है, याने जो क्षत्रिय-वर्ग माना जाता है, उसके पास हम पहुँचते है, तो वे फौरन जमीन दे ही देते है, खाली हाथ लौटाते नही। यह एक खानदानी बात है। वे समझते है कि आखिर हम राजा है। तो हमारे पास जो कोई मागने आये, हम उन्हे लौटायेगे नही। यह भाव उनके मन मे है।

ग्वालियर मे एक बडे जमीदार से बात हुई। वे राजा थे। वहाँ उनकी जागीरदारी खत्म हो रही थी। उन्होने कहा कि हम तो अभी मर रहे है। इस हालत में आप हमारे पास दान मागने आये है। हम आपको विश्वास दिलाते है कि मरते वक्त भी हम जरूर दान देगे। ऐसा कह कर उन्होने एक प्राचीन गाथा सुनाई कि हमारे क्षत्रिय लोग जिदगी भर दान देनेवाले तो होते है, परतु जब मरने का मौका आता है तब तो अवश्य देकर ही छूटते है। आपकी जो माग है, उसमे यद्यपि हम ज्यादा नही दे सकेगे, बहुत-सी जमीन चली ही गई है, फिर भी जो बची है, उसमे से मरते-मरते भी दान देकर ही रहेगे। ऐसी भाषा वे बोले। खानदानी ऐसी होती है।

इनका यही दवाव आयेगा कि भाई यह राजा दे रहा है वह महाराजा दे रहा है, वह फलाना दे रहा है, ये सब दे रहे है व्यापारी लोग कुछ भी न दे, यह कैसे चलेगा? यह भी एक दवाव उनके मन पर आता है। इस वास्ते भूमिदान पर जोर देना भी उन-पर एक दवाव लाने का प्रकार होता है। यों समझ कर अभी तक हमने इसको चलाया। लेकिन एक प्रस्ताव करके इस चीज को हम रखे तो अपनी शक्ति देख कर ऐसा कोई इशारा मिल जाय तो उसको देखकर, भूमिदान के साथ इसको हम हाथ मे ले सकते है, नही तो हमारी ओर से एक को ही हम समझाते चले जाय तो इसमे यह

काम वनगा , ऐसा हमको नही लगता।

मपत्ति दान के वारे मे हम अवतक काफी वढ चुके है । अव मौका आया है कि भूमि के साथ-साथ सपत्ति-दान का आदोलन चलाया जाय । मपत्ति-दान का जो मुख्य विचार है कि जो कुछ और मपत्ति है, वह भगवान् की है, उसकी हम स्थापना करनी है । उसका साधन मपत्ति-दान है, माधन-दान नही । साधन-दान काम मे मदद करनेवाला है, पर मुख्य विचार तो मपत्ति-दान का है, जो गरीव और अमीर सव पर लागू होता है । मपत्ति की प्राप्ति मे किसी पर अन्याय न हो, प्राप्ति का तरीका गलत न हो, ठीक तरीके से मपत्ति प्राप्त हो, उचित और ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा ममाज को देकर जो वचे, उसका सेवन किया जाय, और जो सेवन किया जाय, वह ट्रस्टी के नाते ही किया जाय, यह मारी वृत्ति इसमे आ जाती है । इस कार्यक्रम को अव चलाना चाहिए, अन्यथा उसके विना हमारी गाडी रुक जाती है । जमीन का विचार जैसे आज फैल गया है कि उसका कोई मालिक नही है, सिवा भगवान् के, उसके समान ही सपत्ति के वारे मे हवा तैयार करनी होगी । अभी यह वूद-वूद दान हासिल होगा, लेकिन कोई मपत्तिमान् प्रतिष्ठित व्यक्ति इस विचार के अनुसार आगे वढते है तो यह काम और आगे वढेगा । इसलिए हमको ऐसे लोगो से सपर्क साध कर यह प्रेरणा उन्हे देनी चाहिए ।

यह काम अव ठीक मौके पर शुरु हो । हम सव लोग इसपर जोर दे और हर कोई चाहे उसके पास अल्प मपत्ति हो या ज्यादा मपत्ति हो, कुछ-न-कुछ देकर ही वाकी का उपभोग करे । यह एक धर्म-विचार, यह एक नीति-विचार लोगो मे फैलाना चाहिए ।

कुरान मे स्वर्ग और नरक के साथ एक और भी गति वताई गई है। उसको वरजग्व कहते है। एक तो है दोजख और दूसरा है जन्नत। वीच मे है वरजग्व। वरजग्व मे जो लोग जाते है, उनके चेहरे का आधा हिस्सा रोता हुआ होता है और आधा हिस्सा मुस्कराता हुआ। आधे मे खुशी होती है और आधे मे दुख होता है। यह एक वीच की हालत है। वहाँ से स्वर्ग का भी दर्शन होता है, नरक का भी। जव वे

स्वर्ग की तरफ देखते हैं तब वे रोते हैं और जब नरक की तरफ देखते हैं तब वे खुश होते हैं क्योंकि वे बीच की हालत में हैं। इस दुनिया में जितने भी प्राणी हैं सारे बरजख में हैं। न कोई दोजख में है न जन्नत में। यानी हमसे ज्यादा दुखी कोई-न-कोई है ही। जैसे हमसे अधिक सुखी भी कोई है वैसे कोई मनुष्य ऐसा नहीं, कोई प्राणी ऐसा नहीं कि जिससे अधिक दुखी दुनिया में कोई नहीं। तो बीच की हालत में हम हैं। इस वास्ते चाहे जितने दुखी हम हों, हमसे भी दुखी जो हों उनके वास्ते कुछ-न-कुछ करने की जिम्मेदारी हमपर है, यह धर्म-भावना हमें स्पष्ट करनी है। इसको 'संपत्ति-दान-यज्ञ' कहते हैं।

सर्वोदयपुरी,
१८-४-५४

१२

ट्रस्टीशिप : पूरे अर्थ में

कि आज भी धनी लोग कुल मिला कर काफी दान-धर्म करते हैं। कुल जोड लगा कर देखे तो शायद छठे हिस्से मे भी वह ज्यादा होगा। छठा हिस्सा देने मे उन्हे बहुत झिझक नही होगी । यह दान सीधा गरीबो को मिलेगा। यही काम छठा हिस्सा हमे मिलने से होगा। परतु हमारी मुख्य चिंता $\frac{5}{6}$ की है। $\frac{1}{6}$ का विनियोग कैसे किया जाय, इसका निर्देश भी हमारा होगा और वैसा निनियोग उनको करना पडेगा । यह जो बात हमने रखी, वही मुख्य तारक वस्तु है, जिसके आधार से उनके सारे कारोबार म हमारा प्रवेश होगा और जब उसे मौका मिलेगा, तब उनके सारे कारखानो का स्वरूप बदलेगा।

ट्रस्टीशिप का इतना ही तो अर्थ नही है कि सपत्ति की जो मालकियत है, वह समाज के लिए, ट्रस्टी के नाते, हमारी है। इतना मानने भर से यह काम नही होगा । परतु सारा धधा किस ढग से चले, मजदूर और मालिक, दोनो को भागीदार माना जाकर उनका अपना-अपना कितना हिस्सा होना चाहिए, आसपास के लोगो के साथ उनका क्या सबध होना चाहिए, मुनाफाखोरी कितनी होगी आदि सारी बाते ट्रस्टीशिप मे आयेगी—अगर उसका व्यापक अर्थ हम करेगे तो। आज जो बदनाम हुआ वह छोटा-सा अर्थ है। वह हमको मदद नही देगा। लेकिन पूरा अर्थ उसका करेगे, तो मेरा खयाल है कि ज़मीन के लिए जो हम कहते है, सपत्ति के भी वे ट्रस्टी बने, ऐसा कहने मे वह काम हो जायगा लगता तो ऐसा है कि ज़मीन के ट्रस्टी बने, ऐसा हमने कहा कहा है? ज़मीन दे ही दो, ऐसा कहा है। पर वैसी भाषा ट्रस्टीशिप में नही बोलते । वह सारा सम्हालने का जिम्मा हम उसका मानते है, पर जहां हमने यह जिम्मा माना, वहा जमीन की मालकियत मिटाने के बराबर शायद यह चीज़ न आती हो, ऐसा जो भास होता है, वह ट्रस्टीशिप का सकुचित अर्थ करने के कारण ही होता है।

लेकिन इसका पूरा अर्थ हम ले तो यह मानना ही पडेगा कि समाज मे जो कुशल होगे, बुद्धिमान् होगे, उनपर अकुशल और अबुद्धिमान् लोगो की रक्षा की जिम्मेदारी कुछ-न-कुछ आयगी और इस तरह रक्षा की ज़िम्मेदारी उठाना, समाज के रक्षक के नाते हर

हालत में बाकी रहेगा ही। जैसे-जैसे बाकी के लोग प्रवीण बनते जायगे, वैसे-वैसे ट्रस्टीशिप की आवश्यकता ही मिट जायगी। इस बारे में मैंने कुछ लिखा है ऐसा लगता है। याने आखिर में ट्रस्ट याने विश्वास इतना ही रह जायगा गुण-रूप में वह चीज रहेगी। तो वह विषय इस प्रकार जरा तात्त्विक होता है। परन्तु ट्रस्टीशिप का हमारे मन में जो पूरा अर्थ है उसको अगर हम ठीक ढंग से रखें तो हमारा काम उससे निभ जायगा। उसमें मैं खुला हूँ। उस शब्द का मुझे कम-से-कम आकर्षण है और इस वास्ते इसमें आप लोग कुछ और छानबीन करें और वृद्धि करें तो मुझे तो बहुत खुशी होगी।

सर्वोदयपुरी
१६-४-५४

१३

समन्वयाश्रम का विचार

है और सारे एशिया का सबंध यहां आता है। अत मेरे मन मे आया कि इसके आगे हम समन्वय करना होगा, बौद्ध और वेदान्त दर्शन का। वह समन्वय कृत्रिम रूप से करने की जरूरत नही, बल्कि सहज भाव से जो हो चुका है, उसीको जीवन मे और दर्शन मे प्रकट करना बाकी रहा है। अगर हम यह कर सके तो बड़ा भारी कार्य होगा। सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक, तीनो दृष्टियो से एशिया के लिए वह महान् काम होगा।

ख्याल यह है कि वहा कुछ जमीन हो और हाथ से थोड़ी खेती की जाय। उसमे दो-तीन घटे लगे और बाकी थाने के काम मे। सर्वोदय-विचार के प्रचार का काम थाने भर के लिए हो और कार्यकर्त्ताओ का केंद्र यहाँ रहे। थाने भर मे वे लोग काम करे, पर घटा-दो घटा कुछ अध्ययन यहाँ हो, जिसमे वेदात और बौद्ध-दर्शन का खास करके, और उसके साथ दूसरे जो भी दर्शन और धर्म है, उनका समन्वय करने की दृष्टि हो। एक छोटा-सा ग्रथालय भी यहां हो जहाँ इसके और सर्वोदय-विचार के अध्ययन के लिए आवश्यक पुस्तके हो। बहुत ज्यादा सग्रह का सवाल नही है। तो एक जागतिक दृष्टिकोण से वहा का सारा अध्ययन कार्य, प्रचार-कार्य और सेवा का प्रत्यक्ष कार्य चले।

इस प्रकार वहा एक केंद्र कायम होगा खेती होगी और सेवा तथा समन्वय का काम होगा।

जो जमीन हमे मिली है, उसमे एक कुआ बनाने की बात है।[1]

यो तो ऐसा दीखेगा कि मै यह कोई नया काम आरभ करने जा रहा हू। नया आरम्भ करने की वृत्ति मुझमे कुछ वर्षों पहले थी, इन दिनो वह वृत्ति नहीं रही है। यह जो आरभ हो रहा है, वह अत्यन्त स्वाभाविक प्रवाह मे आया है। नौ साल पहले जब हम सिवनी जेल मे थे, तब गीता के स्थितप्रज्ञ के श्लोको पर कुछ कहने का मौका आया था। काकासाहब भी हमारे साथ उसी जेल मे उन दिनो थे। वे व्याख्यान पुस्तकाकार निकल गये है। 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' उस पुस्तक का नाम है।

१ कुए का उद्घाटन राष्ट्रपति के हाथो ता० २०-८-५८ को हुआ। यह कुआ प० नेहरू तथा अन्य लोगो की सम्पत्ति-दान की रकम में से बन रहा है।

उसके अंत में 'ब्रह्म-निर्वाण' शब्द की व्याख्या करनी पडी है। उसके सिलसिले मे बौद्धो के 'निर्वाण' और वेदात के 'ब्रह्म-निर्वाण', इन दो शब्दो का समन्वय करने की जरूरत महसूस हुई और वैसा समन्वय वहा पर किया गया। काकासाहब ने शायद वह पहले देखा भी होगा, लेकिन वह चीज फिर से मैंने उनके सामने रखी तो उसे पढ कर उनको अत्यत सतोष हुआ और जिस तरह बौद्ध धर्म का अध्ययन कर उन्होने उसे समझा था, उसी तरह से वह चीज वहा पर रखी गई है, ऐसा उनको प्रतीत हुआ। जब वह विवेचन किया गया था, तब मुझे कोई ख्याल नही था कि बोधगया मे मेरा जाना होगा—किसी सिलसिले मे। यात्रा आदि करने मे मेरा विश्वास है भी, और नही भी है। 'है' इस अर्थ मे कि जिस अर्थ मे अभी मेरी यात्रा हो रही है। 'नही' इस अर्थ मे कि खास स्थानो के दर्शन की तृष्णा मुझे नही है और खास स्थानो मे ऐसी कोई खास चीज होती है, जो दूसरी जगह नही होती, ऐसा विश्वास भी नही है। तो कोई ख्याल नही था कि बोधगया मे आना होगा, वहाँ किसी कार्य का स्वाभाविक सकल्प मिलेगा और उसकी पूर्ति के लिए वहाँ कोई सामान हासिल होगा। कोई जिम्मेदारी आयेगी, ऐसा कोई ख्याल नही था। लेकिन यह सब हुआ, उसके इतिहास में मैं नही जाता।

इस समन्वय-आश्रम के लिए जरूरत महसूस हुई कि बोधगया मे वह जो मंदिर है, जो विश्वशांति के लिए आशा-स्थान माना जाता है, उसी के नजदीक अगर कुछ जमीन मिले तो ठीक है, नजदीक न मिले तो दूर सही, लेकिन नजदीक जमीन मिले तो अच्छा। बहुत ज्यादा जमीन तो चाहिए नही। दान तो इन दिनो हमको जितना मागे, उतना मिलता है। लेकिन विशेष स्थान पर एक थोडी-सी जमीन मिल जाय, तो अच्छा है, ऐसी इच्छा हुई। तो देखा यह गया कि मानो हमारे लिए ही वहाँ किसी ने कोई जमीन रख छोडी हो, ऐसी कुछ जमीन वहाँ मिली। उनके इर्द-गिर्द दूसरी कोई जमीन कोई लेना चाहे तो मिल नही सकती, ऐसी वहाँ हालत है। वह जमीन वहाँ के शकर-सम्प्रदायी मठ की तरफ से बडी प्रसन्नता से दान में मिली। यह सब बहुत ही स्वाभाविक हुआ। उसके करने मे कोई

परिश्रम नही करना पडा, न उसका कोई बोझ सिर पर महसूस हुआ, बल्कि यह आभास जरूर हुआ कि यह एक छोटा-सा काम दीखेगा, लेकिन उसमे बहुत बडी ज़िम्मेदारी आती है।

इसका भान तो हुआ, परतु उसके साथ वह अनिवार्य भी हो गया। याने उसका अगर आरभ नही करते तो अहिसा की दृष्टि से जो कदम उठाना हमको क्रम-प्राप्त है, वह उठाने मे हम झिझक करते है, ऐसा उसका अर्थ होता। इस वास्ते ज़िम्मेदारी समझ कर उसको कबूल किया है, इतना ही हुआ है।

थोडे मे इतना कह दूं कि वेदात और अहिसा, ये दो चीज़े परस्पर-अविरुद्ध है। ये दोनो एक-दूसरे के कार्यकारण है। वेदात मे से सीधी अहिसा प्रतिफलित होती है और अहिसा के लिए बिना वेदात के कोई पक्की बुनियाद नही हासिल होती। वेदात का आधार छोड कर अहिसा का बचाव कितना भी करे, तो भी वह मामला ढीला ही रह जायगा। वह पक्का तभी बनता है, जब उसको वेदात का आधार मिलता है। यह सारी प्रक्रिया गीता के एक श्लोक मे बहुत ही सक्षेप मे कही गई है

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥

जो मनुष्य सर्वत्र परमेश्वर के अस्तित्व को समान रूप में देखता है, यह हुआ वेदात। और उसके परिणामस्वरूप जो हिसा ही नही कर सकता, क्योकि हिसा के लिए जो भी हथियार उठाया जायगा, वह अपने खुद के खिलाफ उठाने-जैसा ही होता है, इस वास्ते आत्महिसा जो नही करेगा, वह परम गति पायेगा। मूल बुनियाद समान-परमेश्वर के दर्शन की अर्थात् वेदात की है। उसपर से जीवननिष्ठा अहिसा की और उसका अतिम परिणाम परम गति, इस तरह एक श्लोक मे सारे विश्व के लिए जो जरूरी समन्वय है—आदि से अत तक, बुनियाद से शिखर तक, उसे गीता के इस अद्भुत श्लोक मे बता दिया गया है।

बापू वेदात के बदले 'सत्य' का नाम लेते थे और उसके साथ अहिसा जोड देते थे। वे कहते थे कि सत्य और अहिसा, ये एक ही द्विदल तत्त्व है। दोनो मिल कर एक ही तत्त्व होता है। इस तरह 'सत्य' शब्द को वे

पसंद करते थे। मैंने सोचा कि सत्य का संशोधन जितनी प्रखरता से वेदांत में होता है, उतनी प्रखरता से और किसी प्रक्रिया में नहीं होता। इस वास्ते 'सत्य' शब्द का अर्थ वेदांत ही हो जाता है। वेदांत याने वेद-सार, तत्वज्ञान का सर्वसार जो कि सत्य है। और यह भी वस्तु वेदांत में ही बताई गई कि वह अंतिम शब्द सत्य ही है और उस शब्द के अंदर बाकी का सार जीवन-विचार निहित है। तो जिसको बापू सत्य कहते थे, वही हिंदुस्तान की भाषा में, आम समाज की भाषा में, वेदांत होता है।

सत्य शब्द परम तत्व का सूचक है और वेदांत शब्द समन्वय का। याने सत्य के दर्शन के अनेक पहलू होते हैं। वे सारे पहलू जहां इकट्ठा होते हैं, वहां किसी एक विचार के अंग का आग्रह मिट जाता है। उसीको वेदांत कहते हैं, जिसका उल्लेख काकासाहब ने आचार्य गौडपाद के नाम से किया था। जहां गौडपाद ने कह दिया, "चाहे आपस-आपस में लड़ते रहियेगा, लेकिन आप हमसे नहीं लड़ सकते। हम आपसे नहीं लड़ सकते। आप सारे हमारे पेट में हैं।"

अदर, उसीकी लीला से हमे ये सारे रूप मिले है। शून्य का भी एक रूप होता है। उसका भी एक आकार दिखाया जाता है। वह भी निराकार नही होता तो हम साकार है, फिर भी शून्य है और वही एक पूर्ण है, इस तरह की भावना हृदय मे रखे। हृदय की सहानुभूति हम आपसे चाहते है।

सर्वोदयपुरी
१८-४-५४

परिशिष्ट

राज्यसत्ता और क्रांति

[आचार्य कृपालानी के १९-४-५४ को प्रार्थना-सभा में दिये जिम भाषण का जिक्र विनोबाजी ने २०-४-५४ के भाषण में किया था, उसका महत्त्वपूर्ण अश यहा दिया जाता है।]

मै आपको इस वास्ते यह कहता हूँ कि हम लोगो ने एक भूल कर ली। आज अगर वैसी भूल फिर कर बैठेगे कि यह आदोलन, यह जो क्राति है, वह भूदान तक ही सीमित है, तो हमारी वह बहुत बडी भूल होगी। विनोबाजी के सामने कहने मे झिझक होती है, क्योकि वे तो ये सब बात जानते है। लेकिन फिर भी हमको वे आपके सामने कहने के लिए कहते है, तो कहना ही पडता है कि अगर आप समझ बैठे हो कि केवल भूदान मे आपकी क्रान्ति पूरी हो जायगी, तो वह नही होगी, जैसे कि हम लोग समझ बैठे कि अग्रेजो के चले जाने मे हमारी क्राति पूरी हो गई। जिनके पास जमीन नही है, उनको पाँच-पाँच बीघा जमीन आपने दे दी, तो उतने मे काम होने वाला नही है। आप पांच बीघा जमीन इधर दे और उधर पांच ताडी की दुकाने खोल दे, तो आपका पांच बीघा क्या करेगा इस बेचारे गरीब का? आगे भी उसके पास पाँच बीघा था। फिर इन लोगो के यहाँ बनिया भी रहता था, जो जमीने गिरवी रख लेता था। और आप इधर उनको जमीन दे और वे उधर जान-गान के फेर मे पडे रहे

कायदा भी महात्मा जी की जिंदगी से बाहर नही। तो, आपको कायदा भी देखना होगा। करबंदी को भी देखना होगा। गवर्नमेंट विलेज-इडस्ट्रीज को भी देखना होगा। इसी तरह आपका यह क्रांति-आदोलन बढता जायेगा। अगर आपने यह समझा कि जो आदमी भूदान का काम कर रहे है, वे पच्चीस बीघा या पचास या पाँच लाख या पाँच करोड बीघा ले आवे और उसे बाँट दे। फिर उतने मे ही हम सबको सतोष हो गया, तो आप समझिये कि यह जो क्राति शुरु हुई, वह फिर वही खत्म हो जायेगी। फिर आपको नया काम शुरू करना पडेगा। तो कायदा भी आपको लेना होगा।

बिहार मे राजा जनक था। क्या जनक राजा ने कायदा छोड दिया था? कायदा भी करता था, वह योगी था, तब भी कायदे मे काम लेता था। एक बडा फिलासफर था, यूनान म। उसका नाम था प्लेटो। वह कहता था कि दुनिया के सवाल तब खत्म होगे, जब धार्मिक आदमी बादशाह होगे और बादशाह आदमी धार्मिक होगे। याने धार्मिक काम तो करना ही है, लेकिन बादशाही का काम भी करना ही है। याने ये दोनो नही मिलेंगे, तो हमारा काम चलनेवाला नही। अगर इस आदोलन को आप पूरा चलाना चाहते है तो आपको यह सब काम करना पडेगा।

और मै आपसे कहता हूँ कि आपको अपनी सरकार अपने हाथ में लेनी पडेगी। तबतक आपका काम पूरा नही होगा। या तो आप सरकार को अपनी बनाये, अपनी सहायक बनाये या कोई भी ऐसा प्रधानमत्री न हो, जो आपके कहने के बाहर जा सके। या तो वह आपका नौकर होकर काम करेगा या आपको वह काम करना पडेगा। अगर आप यह काम नही करते है तो क्राति पूरी नही होगी, यह मै आपको बताना चाहता हूँ।

●

अखिल भारत सर्व-सेवा संघ

(प्रकाशन विभाग)

रचनात्मक साहित्य

अ. भा. चरखा संघ का इतिहास	श्री श्रीकृष्णदास जाजू	३॥)	।≡)
क्रान्तिकारी चरखा	श्री धीरेन्द्रभाई मजूमदार	।)	–)
ग्राम स्वावलम्बन की ओर	श्री बालकोबा	।)	–)
चरखे की तात्त्विक मीमांसा	„	१)	=)॥
कताई	„ दत्तोबा दास्ताने	५)	।≡)॥
बापू की खादी	„ धीरेन्द्रभाई मजूमदार	॥)	–)॥
स्वराज्य की असली लड़ाई	„ „	॥)	–)॥
गोसेवा	„ गांधीजी	१॥)	=॥)
गो-जातीचे संवर्धन (मराठी)	„ य. न. पारनेरकर	॥)	–)
धान की खेती की जापानी पद्धति		।)	–)
मिश्र वनौषधि चिकित्सा		१)	=)
गो-सेवा संघ की विचार-धारा		॥)	–)॥
खाद आन्दोलन क्यों ?	„ जे. सी. कुमारप्पा	॥)	।)
गांधी अर्थ-विचार	„ „	१)	–)॥
स्थायी समाज व्यवस्था (भाग २)	„ „	४)	।)
शिक्षा और ग्रामोद्योग	„	।)	–)
हमें क्या खाना चाहिए	झवेर भाई पटेल	३)	≡)॥
मल पानी		१॥)	=)
हाथ कागज बनाना		४)	।=)
शिक्षा में अहिंसक क्रांति	„ गांधीजी	१॥)	=)
बुनियादी शिक्षा	„ „	१॥)	≡)

प्रौढ शिक्षा का उद्देश्य	शातावहन मार्जरी साइक्स	।।।)	=)
बुनियादी शिक्षा के सिद्धात		१।।=)	=)।।
जीवन शिक्षा का प्रारभ	श्री शाता बहन	१।)	=)
सफाई विज्ञान	,, धीरेंद्रभाई मजूमदार	।।)	-)
वस्त्र पूर्ण (मराठी)	श्री कुदर दिवाण	२)	।)
नयी तालीम और समाज का नवनिर्माण	श्री धीरेंद्र मजूमदार	≡)	-)
Vinoba and His Mission	S. Rambhai	३।।)	।।)।।
Economics of Peace		।।=)	≡)

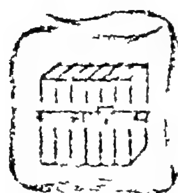
बडे सूची पत्र के लिए लिखिये—

अखिल भारत सर्व-सेवा संघ,

प्रकाशन विभाग, वर्धा।

नई क्रांतिमाला
की
पुस्तकें

१ सर्वोदय का घोषणापत्र
२ सर्वोदय के सेवकों से
३. मानवीय क्रान्ति
४. धर्मचक्र प्रवर्तन
५. हमारी भूमि समस्या का हल
६. सम्पत्तिदान यज्ञ
७. दण्ड निरपेक्ष समाज रचना
८ नई क्रांति
९. नई क्रांति के गीत
१०. भूदान दीपिका
११. सामाजिक क्रान्ति और भूदान
१२ व्यवहार शुद्धि
१३ सर्वोदय की ओर
१४ सामाजिक क्रांति के दस कार्यक्रम
१५ नई तालीम के विचार (प्रेस में)
१६ नई तालीम और समाज का नव निर्माण



नई क्रान्ति

जनसंख्या के
स्थायी प्रभाव पर सुप्रसिद्ध विद्वानों के
के कुछ विचार

नई क्रान्ति

[भूदान-यज्ञ के विविध पहलुओं का विचारकों द्वारा विवेचन]

●

संकलनकर्त्ता

लक्ष्मीनारायण भारतीय

●

१९५४

अ० भा० सर्व सेवा संघ, वर्धा का प्रकाशन

प्रकाशकीय

जनता ने भूदान-यज्ञ-आंदोलन को ज्यों-ज्यों तीव्रता से अपनाना शुरू किया है, त्यों-त्यों देश के विचारकों ने भी इस महायज्ञ में अपनी अंजलि भेंट करते हुए इसके प्रति सक्रिय सहानुभूति व्यक्त की है और जनता से सहयोग की अपील की है। भूदान-यज्ञ का विविध पहलुओं से गहरा और मार्मिक अध्ययन भी इन विचारकों ने समय-समय पर प्रस्तुत किया है। देश के कुछ प्रमुख नेताओं और चिंतकों के विचारों का यह संग्रह पाठकों की भेंट करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है।

आशा है, यह सबके लिए उपयोगी होगा।

सर्व-सेवा-संघ, वर्धा —अ० वा० सहस्रबुद्धे

मंत्री

विषय-सूची



नई क्रान्ति

: १ :

भूमि-समस्या का अहिसात्मक हल

[राजेन्द्रप्रसाद]

भारत की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्याओ मे आजकल भूमि की समस्या है। इसके अहिसात्मक हल का जो मार्ग श्रद्धेय विनोबा भावे ने दिखाया है, उसका अनुकरण देश के लिए आवश्यक है।

मुल्क मे आदिवासियो की एव हरिजनो की बहुत बडी बस्ती है और वे बेजमीन लोग है। विनोबाजी के कहे अनुसार भूमिहीनो को जमीन बाट देने से इन लोगो का उद्धार ही होगा।

आशा और विश्वास है कि यह यज्ञ भी उसी प्रकार लोकप्रिय और उत्साहवर्धक होगा, जैसे भूदान-यज्ञ हुआ है। सब लोग इसमें शरीक होकर पूर्ण रूप से यज्ञ में सहायक हो, यही मेरा निवेदन है।

भूमिहीन गरीब जनता के लिए लोग विनोबाजी के भूदान-यज्ञ में जुट कर जमीनें दे और उस महान् कार्य के प्रति अपनी सक्रिय निष्ठा प्रकट करे, ऐसी मैं लोगो से अपील करता हू।

: २ :

एक क्रांतिकारी आन्दोलन

[जवाहरलाल नेहरू]

मैं भूदान-यज्ञ को अधिक-से-अधिक महत्त्व देता हू। इस काम में हरेक आदमी और दल को बिना किसी झगडे या किसी दल या पार्टी के लिए उससे फायदा उठाने की इच्छा के, सहयोग की भावना से, मदद देनी चाहिए। यह किसी एक दल का आन्दोलन नही है और सभी लोगो को, चाहे उनका किसी भी दल से संबंध क्यो न हो, इसमें हिस्सा लेना चाहिए। जमीन की समस्या देश की सबसे अहम समस्या है और पिछले करीब पच्चीस सालो मे इसपर काग्रेस चर्चा कर रही है। अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ भी इस-पर काफी ध्यान दे रहे है। इस समस्या का हल हमारे लिए सबसे अधिक महत्त्व की चीज है। परम्परा से जो विचार चले आ रहे है उनके अनुसार इस समस्या को सुलझाने के सिद्धात है और हल है, लेकिन हर एक चीज समझदारी भरे शास्त्रीय सिद्धातो के दायरे मे थोडे ही आ सकती है। जिन्दगी का एक हिस्सा है कि जिसपर न किताबे रोशनी डाल सकती है और न उसे समझा ही सकती है। गाधीजी जो कुछ करते थे, वह सिद्धातो मे विश्वास रखनेवालो के लिए हमेशा स्पष्ट नही होता था। लेकिन जब वे गाधीजी के किये का नतीजा देखते थे तो उन्हे लगता था कि उनके सदेह कितने बेबुनियाद थे।

हमारा जीवन बहुत ही मिला-जुला है। अर्थशास्त्र या और किसी शास्त्र के सुनिश्चित नियमो से उसका पूरा-पूरा आकलन करना असभव है। इसलिए किसी-न-किसी अनोखे और अपूर्व मार्ग का सफल होना हमेशा सभव होता है। आचार्य विनोबाजी का आन्दोलन दो वर्ष से बराबर प्रगति कर रहा है उसने यह बात सिद्ध कर दी है। उसके पीछे एक ऐसा भीतरी तत्त्व काम करता है जो सामान्य परम्परागत कार्य-पद्धति से नहीं डाला जा सकता।

आशा और विश्वास है कि यह यज्ञ भी उसी प्रकार लोकप्रिय और उत्साहवर्धक होगा, जैसे भूदान-यज्ञ हुआ है। सब लोग इसमें शरीक होकर पूर्ण रूप से यज्ञ मे सहायक हो, यही मेरा निवेदन है।

भूमिहीन गरीब जनता के लिए लोग विनोबाजी के भूदान-यज्ञ मे जुट कर जमीने दे और उस महान् कार्य के प्रति अपनी सक्रिय निष्ठा प्रकट करे, ऐसी मै लोगो से अपील करता हू।

: २ :

एक क्रांतिकारी आन्दोलन

[जवाहरलाल नेहरू]

मै भूदान-यज्ञ को अधिक-से-अधिक महत्त्व देता हू। इस काम मे हरेक आदमी और दल को बिना किसी झगडे या किसी दल या पार्टी के लिए उससे फायदा उठाने की इच्छा के, सहयोग की भावना से, मदद देनी चाहिए। यह किसी एक दल का आन्दोलन नही है और सभी लोगो को, चाहे उनका किसी भी दल से सबध क्यो न हो, इसमे हिस्सा लेना चाहिए। जमीन की समस्या देश की सबसे अहम समस्या है और पिछले करीब पच्चीस सालो से इसपर काग्रेस चर्चा कर रही है। अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ भी इस-पर काफी ध्यान दे रहे है। इस समस्या का हल हमारे लिए सबसे अधिक महत्त्व की चीज है। परम्परा से जो विचार चले आ रहे है उनके अनुसार इस समस्या को सुलझाने के सिद्धात है और हल है, लेकिन हर एक चीज समझदारी भरे शास्त्रीय सिद्धातो के दायरे मे थोडे ही आ सकती है। जिन्दगी का एक हिस्सा है कि जिसपर न किताबे रोशनी डाल सकती है और न उसे समझा ही सकती है। गाधीजी जो कुछ करते थे, वह सिद्धातो मे विश्वास रखनेवालो के लिए हमेशा स्पष्ट नही होता था। लेकिन जब वे गाधीजी के किये का नतीजा देखते थे तो उन्हे लगता था कि उनके सदेह कितने बेबुनियाद थे।

हमारा जीवन बहुत ही मिला-जुला है। अर्थशास्त्र या और किसी शास्त्र के सुनिश्चित नियमो से उसका पूरा-पूरा आकलन करना असभव है। इसलिए किसी-न-किसी अनोखे और अपूर्व मार्ग का सफल होना हमेशा सभव होता है। आचार्य विनोवाजी का आन्दोलन दो वर्ष से वरावर प्रगति कर रहा है उसने यह वात सिद्ध कर दी है। उसके पीछे एक ऐसा भीतरी असर काम करता है जो सामान्य परम्परागत कार्य-पद्धति से नही डाला जा सकता।

आचार्य विनोवा ने यह एक असामान्य आन्दोलन शुरू किया है। अ भा काग्रेस कमेटी तथा काग्रेस के खुले अधिवेशन ने खुशी-खुशी और उत्साह के साथ इसका समर्थन किया है। लेकिन इसका मतलव यह नही कि चूकि जमीन की समस्या को आचार्य विनोवा ने उठा लिया है, इसलिए सरकार की अव कोई जिम्मेदारी नही रही। भूदान-आन्दोलन एक क्राति पैदा कर रहा है और मुल्क की हवा मे एक परिवर्तन ला रहा है। यह एक ऐसी विचित्र घटना है, जिसको अर्थशास्त्र या दूसरे विशेषज्ञ समझा नही सकते। लेकिन यह आन्दोलन किसी भी हालत मे कानून की जगह नही ले सकता।

इसमें शक नही कि आचार्य विनोवा का यह आन्दोलन एक अहम और पेचीदा मसले को हल करने का कुछ असामान्य-सा रास्ता है। याद रहे कि यह आन्दोलन एक क्रातिकारी आन्दोलन है। हिंसक क्राति के अर्थ में वह क्रातिकारी नही है, परन्तु उसके कारण समाज मे वुनियादी परिवर्तन हुए है। उसने एक ऐसी हवा पैदा कर दी है, जिससे हिन्दुस्तान की सबसे बडी समस्या को हल करना सभव हो गया है। यह एक ऐसा मार्ग है जिसे विद्वान अर्थ-शास्त्री न समझा सकते है और न शायद समझ ही सकते है।

आचार्य विनोवा हवा को इस तरह वदल रहे है कि जमीन की समस्या, जिसका और किसी तरह से सुलझना सभव न था, विना किसी लडाई-झगडे के या कम-से-कम सघर्ष से सुलझाई जा सकेगी। उनका यह आन्दोलन विशुद्ध भारतीय है। उसकी जडे हिन्दुस्तान मे और हिन्दुस्तान की परम्पराओ मे है। ऐसा असामान्य आन्दोलन जब होता है, तो सामान्य गज

से उसका माप नही लिया जा मकता। यह एक नई तजवीज है। इसमे कुछ ऐसी विशेषताये है जो दूसरे देशो की क्रांति मे नही पाई जाती। साफ है कि एक रात मे लोगो के दिल नही बदले जाते। आदमी की कमजोरिया दूर होने मे देर लगती है, इसलिए यह परिवर्तन धीरे-धीरे ही हो सकता है। फिर भी वह निश्चित रूप से और निश्चित गति से होता है। इसलिए हम उसे बहुत महत्त्वपूर्ण समझते है।

भूदान का काम बडा अहम काम है। उससे जमीन की समस्या पर ही असर नही पडता, और भी समस्याओ पर पडता है, उसके नये एप्रोच, नये तरीके की वजह से।

भूदान-यज्ञ-आन्दोलन सिर्फ काग्रेस का ही आन्दोलन नही है, बल्कि समूचे देश का आन्दोलन है। उसमे दूसरे पक्षो के लोग काग्रेस के आदमियो की अपेक्षा अधिक उत्साह से काम कर रहे है। अपनी पार्टी को इससे कुछ लाभ होगा, इस खयाल से हमे आन्दोलन मे भाग लेना गलत होगा।

देखा गया है कि हमारे देश मे कभी-कभी बहुत जटिल और कठिन समस्याओ को हल करने के मौलिक उपायो का आविष्कार होता है, जिससे हमारी शक्ति बढती है। इसलिए इस आन्दोलन की अपूर्व पद्धति को हमारे अर्थशास्त्री नही समझ पाते। परन्तु वह लोगो के हृदय को बहुत अच्छी तरह पकड लेता है। दूसरे कुछ देशो मे जमीन का मसला हल करने के लिए खून बहाना पडा, परन्तु इस भूदान-यज्ञ-आन्दोलन ने बगैर खून बहाये शातिमय अहिंसात्मक सहयोग के रास्ते से जमीन की समस्या को हल करने का रास्ता दिखा दिया है।

अत भूदान-यज्ञ सही तरीके का आन्दोलन है और हर एक आदमी का फर्ज है कि वह पूरी तरह इसके महत्त्व को समझे और इसमे मदद दे।

देश भर मे बडी-बडी यात्राए करके विनोबाजी ने हमारी जनता मे एक नई जान डाली। भूदान-यज्ञ के सिलसिले मे उनकी आवाज देश भर मे गजी, बहुतो ने उसको सुना और बहुतो ने उसका यथाशक्ति जवाब दिया।

मैं आशा करता हू कि इन महान कार्य को और भी बडाने की कोशिश हम सब करेगे।

अब विनोबाजी ने एक और नई बात देश के सामने रखी है और भूमि-हीन किसानो को बसाने के लिए और उनकी सहायता के लिए सम्पत्ति-दान-यज्ञ शुरु किया हैं विशेषकर नये कुए बनाने के लिए उन्होने कहा है। किसान को खाली भूमि मिलने से बगैर किसी और सहायता के, बहुत लाभ नही होता। कुओ की सारे देश मे बडी जरूरत है। मैं आशा करता हू कि सब लोग विनोबाजी के नये सन्देश पर विचार करेगे और विशेषकर कुए बनाने मे मदद करेगे।

: ३ :

भूदान-यज्ञ का महान् लक्ष्य

[कि घ मशरूवाला]

हिंदुस्तान की ही नही, वरन् लगभग सारे एशिया की, सबसे गम्भीर समस्या जमीन के बटवारे की है। रूस और चीन ने यह समस्या भारी रक्तपात और दूसरे प्रकार की क्रूरतापूर्ण पद्धति अख्तियार करके हल की है। ब्रह्मदेश इडोनेशिया, इडोचायना, थाई वगैरा देशो मे ये ही पद्धतिया आजमाई जा रही है। हिंदुस्तान मे भी तेलगाना और दक्षिण भारत के कुछ हिस्सो ने उनका आरम्भ हो चुका था। उत्तर भारत मे काश्मीर ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद कानून के बल पर इस समस्या को हल करना शुरु किया है और बहुत कुछ कामयाबी हासिल की बताई जाती है। पेप्सू (पटियाला और पजाब-सघ) ने जमीन-मालिको से जबरदस्ती जमीन छीन लेने के प्रयत्न शुरू हुए है।

इन सबका कारण क्या है ? किस कारण सभी देशो ने इस प्रकार के आदोलन का प्रारम्भ हो गया है ? सभी देशो मे लगभग एक ही से कारण हैं। इन सभी देशो मे हजारो वर्षो से सरमायेदारी (फ्यूडल्) पद्धति चलती

आई है। कोई सरदार सारे देश को या देश के किसी हिस्से को जीत लेता और उसका राजा वन वैठता। वाद में अपने मुख्य-मुख्य मददगारो में अमुक राज-कर देने की शर्त पर जमीन वाट देता। वे लोग जमीन के मालिक हो वैठते और उस भाग की किसान-जनता जमीन की मालिक न रह कर पट्टेदार या आसामी वन जाती।

यह पुरानी पद्धति थी। उसमे अग्रेज सरकार ने दूसरी दो रीतिया दाखिल की। वगाल, विहार, उत्तर-प्रदेश आदि कुछ प्रातो मे लगान वसूल करने की झझट से वचने के लिए उसने वडी-वडी स्थाई जमीदारिया कायम की। ये जमीदारिया सरकार को नियत लगान दे देती और अपने इलाको के किसानो से यथासभव मनमाना लगान वसूल कर लेती। सरकारी लगान से जितना अधिक वसूल हो जाता, वह सव उनका अपना हो जाता।

दूसरा प्रकार साहूकार जमीन-मालिको का। साहूकारी तो अग्रेज सरकार के पहले भी थी। जिसका किसी साहूकार के यहा खाता न हो, ऐसा शायद ही कोई किसान रहा होगा। परन्तु कानून या रूढि का कुछ ऐसा वन्धन रहा कि चाहे जितना कर्जा चढ गया हो, तो भी साहूकार उसकी वदौलत जमीन का मालिक नही वन सकता था। जमीन का प्रत्यक्ष कब्जा, उपयोग और मालकियत तो किसान की ही रहती थी। अग्रेज सरकार ने कर्जे की वसूली मे ऐसी सहूलियत कर दी कि जिससे कर्ज की वसूली मे जमीन का मालिक वनने का अधिकार साहूकार को मिल गया। खुद जमीन जोत न सकने पर भी साहूकार सैकडो एकड के मालिक वनने लगे। इसमे भी जहा-जहा वनिया-साहूकार की जगह किसान-साहूकार होता, वहा उसकी नीयत मूल किसान को निकाल कर जमीन अपने हाथ मे जिन तरीको से आ सके उन तरीको को काम मे लाने की होती थी। लोगो मे यह कहावत है कि वनिया किसान को जिदा रखकर चूसता है, लेकिन किसान-साहूकार तो उसकी जान ही ले लेता है।

इस प्रकार तरह-तरह के उपायो के कारण दस से वीस प्रतिशत आदमियो के पास सत्तर मे अस्सी प्रतिशत जमीन हो गई और वचे हुए

सत्तर से अस्सी प्रतिशत लोगों के पास सिर्फ बीस से तीस प्रतिशत जमीन रह गई। इन सबके बाद खेती पर ही गुजर-बसर करनेवाला कृषि-मजदूरों का वर्ग संख्या में इन दोनों वर्गों से कहीं अधिक बढ़ गया।

एक तरफ से जनसंख्या की वृद्धि और दूसरी तरफ से जमीन का ऐसा असमान बटवारा इन दोनों बातों का परिणाम इसके सिवा क्या हो सकता था कि जमीन तथा साधनों के होते हुए भी खेती की उपेक्षा हो, अन्न की कमी हो तथा भुखमरी और असंतोष बढ़े ? इस तरह स्तब्ध और निस्सहाय होकर सदियों तक मानव दैन्य वहन करके अपने करम पर हाथ रखकर भले ही सहन करता रहा हो परन्तु उसका यह चुपचाप पड़ा रहना उसी तरह का है कि मानो प्लास्टिक या गटापरचे का सामान पड़ा हो। किसी एक जगह चिनगारी पड़ने की ही देर है। उसके पड़ते ही सारा सामान सुलग उठता है और सब खाक होकर ही रहता है। कम्युनिज्म को एक चिनगारी ही समझना चाहिए। यह आग सुलगने के बाद कोई कानूनी उपाय उसका शमन नहीं कर सकता उसका शमन तो सत्य को स्वीकार करके स्वय-प्रेरणा से न्याय करने से ही हो सकता है। भूदान-यज्ञ इस धर्म के प्रति सबको जागृत करने के लिए है। जैसा कि विनोबा कहते हैं, इस यज्ञ के निमित्त से पृथ्वी स्वय पुकार कर कह रही है कि अब मुझे आजाद होना है। मुट्ठी भर आदमियों के कब्जे में नहीं रहना है। मेरी छाती पर जितने बालक हैं, उनमें से जितनी मेरी सेवा करना चाहते है, उन सबका सतोष मुझे करना है। यह नया मनु शुरू हो रहा है, ऐसा समझो।

रसहीन हुई भूमि, दयाहीन हुआ नृप।
नहीं तो होता न ऐसा, बोल माता रो पड़ी॥

उसने तुरन्त अपनी नीयत दुरस्त कर ली। उसने मान लिया कि राजा के लिए भी उसके अधिकारो की मर्यादा है।

सभी जमीन-मालिको को यह पाठ सीखना चाहिए। जो खेती की ही मिहनत-मुशक्कत करते आये है, उन्हे यावच्चद्रदिवाकरौ कोई उज्ज्वल भविष्य दिखाई ही न दे, ऐसी परिस्थिति नही ठहर मकती। पिता ईश्वर, देवी प्रकृति या माता धरती, इन तीनो मे से एक भी उसे सह नही सकता। इसलिए अब ये खेत उन पुराने लोगो के हाथो मे नही रहना चाहते, जो उनकी सुध तो नही लेते, लेकिन उपज को ही हडप लेते है। वे अपने सच्चे सेवको के हाथो मे जाना चाहते है। वर्तमान युग का यह आदेश है, ऐसा समझ कर हरेक को उसके अनुकूल हो जाना चाहिए। इसीमें मानवहित तथा दीर्घ दृष्टि है।

इसके लिए छोटी इकाइया हो या बडी इकाइया हो, कितना बडा खेत हो तो वह आर्थिक दृष्टि से लाभदायी हो सकता है, इत्यादि की चर्चा में उलझने की जरूरत नही है। इसमे सन्देह नही कि कोई भी काम समाज में परस्पर सहयोग से ही पूरी तरह कुशलतापूर्वक सफल हो सकता है, परन्तु सहयोग उत्पन्न होने के लिए कुछ अनुकूल परिस्थितियो की जरूरत होती है। आज की सहयोगी समितिया जितनी सफल होनी चाहिए उतनी नही होती। कारण यह है कि जिन लोगो मे सहयोग कराया जाता है, उनकी स्थितिया असमान है। बडे-बडे किसान और छोटे किसान तथा पट्टेदारो के बीच सहयोग कायम करने के प्रयत्न मे मलाई तो बडे-बडे उडा लेते है और छोटो को छाछ ही नसीब होती है या वह भी नसीब नही होती। सहयोग करनेवालो को एक दूसरो की एक-सी जरूरत मालूम होनी चाहिए और सबके मन मे एक-दूसरे के लिए उपयोगी बनने की भावना पैदा होनी चाहिए। जमीन के अत्यन्त विपम बटवारे मे यह सभव नही है।

रजिस्टर्ड फार्म बनाकर या मजदूरी से खेती कराने की दूसरी कोई व्यवस्था कायम करके सब किसानो को बारोजगार बनाने से सहकार उत्पन्न नही होता। उलटे इससे वर्ग-विग्रहवाद ही बढेगा। कुदरती सकटो के

अलावा असतुष्ट लोगो के हाथो अन्न के भडार लूटे और जलाये जाने के दुष्कर्मो का बाजार गरम होगा

केवल समान स्वार्थ हो जाने से भी सहयोग नही होता। समान हित के साथ-साथ सबकी समान प्रतिष्ठा और सबके बीच समान मित्र-भावना तथा सुख-सुविधा का इतना समान बटवारा हो कि जिससे किसी को दूसरे के प्रति ईर्ष्या न हो—ऐसे त्रिविध अग होगे तभी सहकार सफल होगा।

भू-दान इस तरह के सहकार के लिए योग्य मनोभूमिका बनानेवाला यज्ञ-कार्य है। तर्कवादो मे उलझ कर हम भुलावे मे न पडे। निश्चित रूप से कभी-न-कभी जमीन का जो बटवारा होने ही वाला है, उसे हम ही विवेक से काम लेकर स्वयप्रेरणा से कर डाले।

: ४ :

जीवन-मूल्यों के संजीवन का आन्दोलन

[चक्रवर्त्ती राजगोपालाचार्य]

यह आन्दोलन हमारे राष्ट्रीय जीवन-मूल्यो के सजीवन का आन्दोलन है। सारे देश में यह एक सार्वजनिक यज्ञ के रूप मे चलाया जा रहा है। पश्चिम के कम्यूनिज्म-विरोधी राष्ट्र भी सहार के साधन बढाने मे लगे हुए है। ऐसे समय भारत उन्हें शातिमय और अहिसात्मक क्राति का सच्चा रास्ता दिखा रहा है। यज्ञ हमेशा सकटो के निवारण के लिए और सबके कल्याण के लिए होते रहे है। भूदान-यज्ञ भी इसी अर्थ मे एक जनव्यापी यज्ञ है। अपने पास जो कुछ हो, उसमे से दूसरो को हिस्सा देने की प्रेरणा यह पैदा करता है। मनुष्य मे धार्मिकता जगाता है। इसलिए इसमे एटम बम से भी अधिक सामर्थ्य है।

इतिहास में इस तरह का अपनी इच्छा से भूमिदान पहले कभी नही हुआ। यह आन्दोलन अपूर्व है। उसमें किसी तरह की जोर-जबरदस्ती के लिए

कोई गुंजाइश नही है। जो लोग हिसा से जमीन का बटवारा कराना चाहते है, उनके मार्ग से यह मार्ग बिलकुल भिन्न है। इसलिए कार्यकर्त्ताओ को शाति रखनी चाहिए। जो लोग दान नही देते, उनको भला-बुरा नही कहना चाहिए, उन्हे कोसना नही चाहिए। उनपर अनुचित दवाव डालकर उनकी कठोर आलोचना भी नही करनी चाहिए। जो दान मिले, वह स्वेच्छा से मिले। उसमे कानून या हिसा की धमकी नही होनी चाहिए। मै तो कहता हू कि जो देते है, उनको एक नमस्कार करो और जो नही देते, उन्हे दो नमस्कार करो।

जिनके पास जरूरत के लिए भी काफी जमीन नही है, उनसे जमीन क्यो ली जाय, ऐसी मुझे शका हुई। परन्तु इसमे भी एक दृष्टि है। जो लोग गरीव है, उनमे भी उदारता होनी चाहिए। अपने पास जो है, उसमे दूसरो को हिस्सेदार बनाने की वृत्ति उनमे भी बढनी चाहिए। नही तो वे अपनी सपत्ति वढाने की फिक्र मे रहेगे। यदि वे सोचेगे कि जब हमारे पास अधिक होगा, तब हम देगे, तो वे कभी नही देगे। सपत्ति वढाने की धुन उनपर सवार होगी। सग्रह के लिए लोभ की वृत्ति की जरूरत रहेगी और जैसे-जैसे सग्रह वढेगा, वैसे-वैसे लोभ भी वढेगा। पर आज, जब कि वे गरीव है, दूसरे गरीवो के लिए उनके मन मे सहानुभूति है। आज वे आपस में आसानी से एक-दूसरे को दे सकते है।

जिन लोगो को जमीन मिली है, वे उसे अपनी सम्पत्ति न समझे। उसे भगवान् की देन, समाज की सपत्ति समझे। उसमे खूब खाद दे, खूब मेहनत करे, खूब सुधार करे। इस जमीन को गाधीजी का प्रसाद माने। आपस मे लडाई-झगडा न करे। कोयम्बतूर के किसान जमीन के इच-इच मे से खूब पैदावार निकालने के लिए प्रसिद्ध है। लेकिन एक-एक इच के लिए लड-मरने मे भी मशहूर है। अब उसी इलाके मे भूदान मिला है और भूमिहीनो को जमीन बाटी गई है। अब तो झगडे का मुह काला होगा।

: ५ :

जन-सम्मत क्रांति

[सर्वपल्ली राधाकृष्णन]

भूमि की समस्या आज बरबस हमारा ध्यान खींचती है। कुछ लोग कहते हैं कि जमींदारों को खत्म करके किसान जमीन का कब्जा उनसे जबरदस्ती ले लें। जमीन की समस्या हल करने का यह एक मार्ग तो है। परन्तु भारत की सारी परम्परा और प्रकृति, उसका संविधान तथा गांधीजी की प्रक्रिया, इनके प्रतिकूल है। इस मसले को हल करने में भारत जनतन्त्र की पद्धति का अनुसरण कर रहा है। परन्तु आचार्य विनोबा भावे का मार्ग इससे भी अधिक उदात्त है। उन्होंने जंगल के नियम का त्याग कर दिया है और प्रेम के नियम को अपनाया है। विनोबा ने कानून का भी आश्रय नहीं लिया। उनका सारा आधार प्रेम के ही श्रेष्ठ न्याय पर है। इस तरह वह देश को मूलगामी परिवर्तन के लिए तैयार कर रहे हैं। यह सामाजिक और आर्थिक क्रांति सत्ता के प्रयोग या बल-प्रयोग से नहीं होगी, बल्कि सम्मति से होगी। यदि भारत अपनी समस्या इस प्रक्रिया से हल कर सका, तो वह सारी दुनिया के लिए एक आदर्श पेश करेगा। दुनिया को यह मालूम हो जायगा कि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन सार्वत्रिक सत्तावादी प्रक्रियाओं से या सर्वसत्तावादी सरकारों के द्वारा सफलतापूर्वक नहीं किये जा सकते, किन्तु जनतन्त्रात्मक उपायों से ही किये जा सकते हैं।

: ६ :

तीन महान् आंदोलन

[काका कालेलकर]

भारतीय जीवन में तीन आन्दोलन मेरे खयाल से ऐसे हैं, जिनमें राष्ट्र ने अपने दृढ़ संकल्प को व्यक्त किया है। पहला था, अस्पृश्यता-

निवारण, दूसरा शराब-बंदी और तीसरा है, भूदान-आन्दोलन।

ये तीनो अपनी सफलता के लिए राष्ट्र-व्यापी नैतिक अपील पर निर्भर रहे और खयाल था कि वाद मे इम सफलता पर कानून की मुहर लगा कर उसे स्थायी रूप दिया जाय।

पर जवतक शराव-बन्दी का आन्दोलन अपरिपक्व स्थिति मे था, तवतक उसे कानून का रूप देने की सलाह गाधीजी ने कभी नही दी। उन्होने तभी आग्रह किया, जव राष्ट्र की अधिकाश जनता उसकी हिमायती वन गई थी। यह तो उन्होने नही माना था कि इम सुधार को कानूनी रूप देकर सरकारी तन्त्र के हाथ मे सौपने के वाद तुरन्त ही जनता का नैतिक उत्साह ठण्डा हो जायगा।

सामाजिक सुधारो का काम कुछ अलग बुनियाद पर खडा होता है, यह वात शायद हम लोग समझ नही पाये हैं। 'वाकी सव कुछ' कानून करेगा, ऐसी अपेक्षा हम नही रख सकते। हा, कानून राष्ट्र की सकल्प-शक्ति की वहुत कुछ मदद जरूर कर सकता है, लेकिन सकल्प-शक्ति को, नैतिक उत्साह को अपने काम से कभी नही रुकना चाहिए। यह तो प्रवाह के विरुद्ध नाव खेने जैसा है।

भारतीय सस्कृति हमेशा शराव-बन्दी के पक्ष मे रही है। यहा नीचे की ओर खिचाव उतना नही है, जितना कि अमरीका मे। प्रवाह का जोर लगर को उखाड नही देगा, फिर भी मुकाम पर पहुचने तक नाविको के मजवूत हाथ अगर डाड न मारते रहे, तो कुछ भी प्रगति नही होने वाली है।

अस्पृश्यता-निवारण का सविधान द्वारा मजूर किया जाना उस आन्दोलन की पराकाष्ठा थी। पर ससार को प्रभावित करनेवाली हमारी इम सफलता ने लोगो का नैतिक उत्साह फीका कर दिया। अत हरिजन-सवर्ण के वीच की खाई तवतक नही पट सकती, जवतक लोगो का नैतिक उत्साह समाज-सुधारक जीवित नही रखते।

शराव-बन्दी के महान् सुधार के वारे मे भी यही करना पडेगा। यह

एक नैतिक आन्दोलन है और कानून का आधार होते हुए भी इसी रूप मे चलाया जाना चाहिए ।

आज प्रश्न यह है कि अपने देश के सस्कारी, धनी और सुखी लोगो को कैसे जाग्रत किया जाय ? वे लोग, जो केवल पैसो के पीछे पडे रहते है, न सुख भोगते है, न सस्कारी बनते है, उनको किसी समय जाग्रत किया जा सकता है, क्योकि वे लोग यह तो महसूस करते है कि उनके जीवन मे बहुत-सी त्रुटिया है । लेकिन जो लोग धनी है और साथ ही सस्कारी भी है, वे अपने जीवन पर इतने खुश रहते है कि फिर उनको झक-झोरकर जगाना भी मुश्किल होता है । अच्छे और सच्चे राष्ट्र-सेवको की वे लोग समय-समय पर कद्र भी कर सकते है । अच्छे कामो को पहचानकर उन कामो के लिए दान भी देते है । वे सिर्फ उस विराट सामाजिक अन्याय को समझ नही सकते, जिसके कारण उनका धनी, सुखी और सस्कारी जीवन निभता है ।

रूस मे भीषण सामाजिक क्राति हुई । इससे शिक्षा लेकर अनेक देशो ने समाज-सत्तावादी राज्य-व्यवस्था अपनाई । रूस की विचार-पद्धति दुनिया में फैलती देखकर अमरीका कापता है ।

अब दूसरी ओर दुनिया की पिछडी हुई जातिया विप्लव की तैयारिया कर रही है । अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया, जहा देखो वहा सामाजिक मथन चल रहा है । हमारे यहा 'भूदान-यज्ञ' शुरू हुआ है । यह कुछ सुखी लोगो के दान का प्रकार नही है । सवाल यह है कि हम इस यज्ञ के द्वारा होनेवाली क्राति के अगुआ या साथी होगे कि शिकार ?

यह आन्दोलन भी जरूर जोर पकडने वाला है । कोई सन्देह नही है कि समय के अनुकूल होते ही राष्ट्र आवश्यक कानून भी बना देगा । फिर भी भूदान-आन्दोलन के पीछे जो सर्वोदय की चेतना है, उसे अपना काम करते ही रहना चाहिए ।

: ७ :

भूदान-यज्ञ की व्यवहार-दृष्टि

[श्रीकृष्णदास जाजू]

राजनीतिक स्वराज्य मिल जाने के वाद आम जनता के लिए आर्थिक और सामाजिक स्वातन्त्र्य प्राप्त करने का प्रश्न देश के सामने जोरो के साथ उठा। राजनीतिक क्षेत्र मे हरएक वयस्क को समान 'वोट' मिलने का अधिकार प्राप्त होने व उसके अमल मे आने के कारण आज की चहु ओर चलनेवाली आर्थिक और सामाजिक विपमता सहन होना सभव नही रहा। सदियो से गरीवो का शोपण हो रहा है और भारत की दरिद्रता एक कहावत वन गई है। स्वराज्य मिले छह वर्प वीते, पर उसकी रोशनी गरीब की झोपडी मे अब भी नही पहुच पाई है। इस दशा मे भारत की आर्थिक समस्या हल करना ही सर्वोपरि काम हो गया है। महात्माजी ने अहिंसा की विचारधारा के अनुसार स्वराज्य-प्राप्ति के प्रयत्न के साथ आर्थिक पहलुओ पर भी जोर दिया था और गुलामी की दशा मे भी जो कुछ वन आया, कुछ मात्रा मे, कर दिखाया। परन्तु स्वतन्त्र हो जाने के वाद राजसत्ताधिकारी अपने को उस मार्ग से जाने मे असमर्थ पाने लगे। जगत् भर मे, विशेपत पूर्वी जगत् मे, जो आर्थिक विपमता हटाने की पुकार मची, उसकी प्रतिध्वनि भारत मे भी गूजने लगी। प्रश्न उठा कि समस्या हिंसा से हल हो या क्रातिकारी कानून से, या अहिंसा के मार्ग से? हिंसा के मार्ग का अनुकरण करना उपयुक्त और सभव नही था, श्रेयस्कर भी नहीं था। क्रातिकारी कानून मे भी कुछ हिंसा आ ही जाती है और उसके पीछे लोक-मत का आधार रहे विना उसका निभना भी कठिन है। इतने मे ईश्वर ने विनोवाजी द्वारा भूदान-यज्ञ का प्रारम्भ करवाया। जमीन वालो से जमीन प्राप्त करना और उसे भूमिहीनो को देना, यह तो इस यज्ञ का एक स्थूल अर्थात् वाह्य अग है। मुख्य वात तो धर्म-चक्र-प्रवर्तन की अर्थात् अर्थ-सम्वन्धी नैतिक विचारधारा को देश मे दृढ मूल

करने की है ताकि भारत सदा अपने सारे प्रश्न अहिंसा के मार्ग से ही हल कर सके और सर्वोदय-समाज की स्थापना हो सके। अब भूदान-यज्ञ काफी प्रगति कर चुका है और उसका स्वरूप तथा उसकी विचारधारा समझदारों के खयाल में आ गई है। यहां भूदान-यज्ञ के सिद्धांतों की लंबी चर्चा में न जाकर हमें उसके व्यावहारिक पहलुओं पर ही विचार करना है।

बुद्धिमानों के मन में एक शंका-सी है कि क्या जमीन की पूरी समस्या भूदान-यज्ञ द्वारा पूर्ण रूप से सुलझ जायगी? परन्तु पिछले दो वर्षों में भूमि के बारे में जो हकीकतें सामने आई हैं उस ओर ध्यान देते हुए हमें भूदान-यज्ञ से काफी आशा बढ़ती है। जिनके पास अधिक जमीन है, वे महसूस करने लगे हैं कि अब अधिक जमीन उनके पास नहीं रहेगी। जमीन-बिक्री का सिलसिला बड़े जोरों से चल पड़ा है और अब जमीन छोटे टुकड़ों में बिक बिक कर उन्हीं के हाथों में जा रही है जो खुद अपने परिश्रम से खेती करेंगे। दूसरों की जमीनों पर जो काश्त करते रहे, उनसे भविष्य में बननेवाले कानूनों के अनुसार जमीनें वापस नहीं ले सकेंगे इस खयाल से बड़े पैमाने पर बेदखली शुरू हो गई थी वह भी अब अनेक राज्यों में मुलतवी हो गई है और उसके बन्द होने की भी आशा है। प्लैनिंग कमीशन ने यह सिद्धांत मान लिया है कि जमीन के बारे में सीलिंग मुकर्रर हो और अधिक जमीन किसी के पास न रहे। हैदराबाद-राज्य-विधान-सभा में इसी आशय के एक विधेयक पर विचार हो रहा है। आगे-पीछे अन्य प्रदेश-राज्यों को भी ऐसा ही कुछ कदम उठाना होगा। विनोबाजी तो 'सीलिंग' का सिद्धांत नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि भारत में 'फ्लोअरिंग' चलना चाहिए। जो स्वयं किसानी करके अपनी-अपनी आजीविका चलाना चाहे, और जिनके पास आजीविका के लिए दूसरा साधन न हो, उसे पेट भरने जितनी जमीन मिलनी चाहिए। इस प्रकार जमीन के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष बटवारे के साधक जो वातावरण अभी बन रहा है,

निर्माण भी वेग से हो रहा है। पर हमे मुख्य बात तो यह करनी है कि अर्थ-सवन्धी और धन की खानगी मालिकी के बारे मे जनता की विचारधारा ही वदलनी है, ताकि देश मे नैतिक अर्थशास्त्र की स्थापना हो सके। यह काम भूदान-यज्ञ और सपत्ति-दान-यज्ञ से ही हो सकते है।

भूमि-दान मे मिली हुई जमीन और उसका वटवारा कानूनन पक्का होने के लिए एक विशेष कानून की जरूरत थी। यह सुविधा अभी मध्य-प्रदेश सरकार एव अन्य सरकारो ने भूदान-यज्ञ-कानून वना कर दी है। भूमि प्राप्ति की अपेक्षा भूमि वितरण का काम वहुत जटिल है। उसके लिए वहुत-से कार्यकर्ताओ की आवश्यकता होगी, समय भी काफी लगेगा। जिनको जमीन दी जायगी, वे उसका उपयोग किस तरह कर रहे है, यह भी देखना होगा। भूदान-यज्ञ के व्यावहारिक स्वरूप पर अनेक टीकाए हो रही है। यज्ञ के कारण जमीन के छोटे-छोटे टुकडे होगे, जिनसे लाभ के वदले हानि होगी, जिसको जमीन दी जायगी, वह उतने से अपना गुजर चला सकेगा या नही, भिन्न-भिन्न स्थानो पर जो छोटे-छोटे टुकडे मिलते है, वे किस प्रकार वाटे जायगे या एकत्र किये जायगे, छोटे टुकडो की काश्त कैसे होगी, जो साधनहीन है, वे अपना खेती का काम कैसे निभा सकेगे, खराव जमीन का क्या उपयोग होगा, गोचर-भूमि कम तो नही हो जायगी, इत्यादि अनेक प्रश्न किये जाते है। मेरे खयाल से इनका उत्तर देने का उत्तम तरीका प्रत्यक्ष वटवारा होगा और वटवारे मे जो अनभव मिलेगे, उनके आधार पर भविष्य मे यज्ञ का काम चलाने का ठीक रास्ता भी दीख पडेगा। वटवारे से यज्ञ को वल भी मिलेगा। इसलिए वितरण का काम यथासभव जल्दी करना है। वितरण के वारे मे विनोवाजी ने कुछ मोटे नियम सुझाये है और मार्ग दर्शन किया है। हम अपना काम उस मुताविक करने का प्रयत्न करेगे।

भूदान-यज्ञ का काम पक्षातीत रखा गया है। साम्यवादी दल और एकाध अन्य समुदाय को छोडकर अन्य सव पक्षवाले यज्ञ का समर्थन कर रहे है, यथाशक्ति सहयोग भी दे रहे है। अपेक्षा रखी गई है कि वे जव

इस काम मे सहयोग देते है तो अपना-अपना पक्ष भूल कर सामान्य सामाजिक कार्यकर्ता के नाते काम करेंगे और इसमे अपने पक्ष-विशेष के लिए कोई लाभ प्राप्त करने की कोशिश नही करेंगे। वितरण का काम भी इसी नीति से होगा। उसे निष्पक्ष हाथो मे रखने का प्रयत्न किया जायगा और जिनके सुपुर्द किया जायगा वे निष्पक्ष भाव से ही यह काम करेंगे।

वितरण के काम में सरकारी कर्मचारियो की मदद की भी हमे बडी आवश्यकता रहेगी। राजस्व-कर्मचारियो की मदद के बिना वितरण का काम आसानी से चल न सकेगा। परन्तु स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष वितरण का काम तो वितरण-बोर्ड के और तहसील-कमेटियो के सदस्य ही करेंगे, ताकि राजस्व-कर्मचारियो पर कोई दोष न आवे।

वितरण के काम मे देहात मे काम करनेवाले छोटे-छोटे कर्मचारियो के सहयोग की भी आवश्यकता रहेगी। लोगो का खयाल है, और कुछ अशो में यह अनुभव भी है कि कर्मचारियो पर जब काम सौंपे जाते है, तो कई दफा अन्याय या पक्षपात भी होता है। आगे-पीछे सरकारी जमीन का भी किसी-न-किसी रूप मे बटवारा होगा ही। अब भी कुछ प्रदेश-राज्यो में किसानो को सरकारी जमीन देने का काम कुछ अशो मे चल रहा है। भूदान-यज्ञ-प्रचार के मेरे प्रवास मे कुछ जगह लोगो ने शिकायत की कि इन जमीनो के बडे-बडे चक श्रीमानो या बुद्धि-जीवियो को दिये जा रहे है, जो खुद अपने श्रम से खेती नही करेंगे। और जब गरीबो को कुछ जमीने मिलती है, तो उन्हें कुछ पैसा खर्च करना पडता है। भय है कि सरकारी तन्त्र के द्वारा ऐसे काम होने से बटवारे मे देर तो होगी ही, उसके अलावा छोटे कर्मचारियो द्वारा गरीबो को शायद तग भी होना पडे। अत सरकारी जमीन का देना भी भूदान-यज्ञ की जमीन की तरह ही किया जा सके तो गरीबो को बहुत सुविधा होगी।

तो उसे नाप कर अलग टुकडा वनाना। यह काम दान-दाता या वोर्ड को कर लेना वहुत मुश्किल होगा और उसमे समय भी वहुत लगेगा। इसलिए वह सरकारी अधिकारी द्वारा ही होना ठीक रहेगा। इसके अलावा जिनको जमीन दी जायगी, या वडे-वडे चको पर जो किसान वसाये जायगे, उनको सरकार की ओर से कुछ सुविधाये मिलना जरूरी होगा। इनके वारे में सोच-विचार कर यह वोर्ड अपने मतव्य सरकार के सामने यथासमय पेश करेगा। आशा है कि सरकार वे सुविधाये उपलब्ध कर देगी।

इसका काम चलाने के लिए अनेक कार्यकर्त्ता रखने होगे तथा अन्य खर्च भी करने होगे। आशा की जाती है कि कार्यकर्त्ता लोग अपना-अपना काम सेवा-भाव से करेगे। फिर भी ऐसे अनेक काम होगे, जिनके लिए कुछ-न-कुछ खर्च करना ही पडेगा। काम लम्बे समय तक भी चलेगा। हम विश्वास रखते है कि सरकार इस वोर्ड को भरपूर आर्थिक मदद देगी। सामाजिक कार्यकर्त्ताओ से भी प्रार्थना है कि वे इस महान् क्रांतिकारी कार्य मे प्रत्यक्ष कार्य द्वारा सहयोग देकर यज्ञ सफल वनावे।

: ८ :

नई क्रांति की संयोजक दृष्टि

[दादा धर्माधिकारी]

हमे गाधी और अहिंसा का वाद नही चलाना है, क्योकि वाद के साथ विवाद चलता है। वाद सग्राहक नही वन पाता। वाद में व्यावर्त्तकता (Exclusiveness) आ जाती है। १९३७ मे गाधी-सेवा-सघ के सावली-अधिवेशन के समय वापू से कहा गया था कि आपके विचारो को शास्त्रवद्ध करना जरूरी है। तव वापू ने कहा था "शास्त्र भले ही वने, परन्तु किसी वाद या सम्प्रदाय की स्थापना मैने नही की। ऐसा कोई उपद्रव करने मै नही आया हू।" इसीलिए व्यापक दृष्टि से उन्होने विचार किया।

पहले लोगो का ध्यान प्रचुरता की ओर गया। उसमे फिर यत्र आदि साधनो की तरफ इतना ध्यान गया कि आपसी सहयोग पर से हमारा ध्यान हट गया। अन्त मे विपुल उत्पादन साध्य बना और स्वय मनुष्य उत्पादन का साधन बन गया। जो साध्य था, वह साधन बन गया और इससे उत्पादन सामाजिक मूल्य न रह गया। व्यक्तिगत शक्ति, प्रतिभा और गुण को भाव-रूप सामाजिक मूल्य मे परिणत करने से क्राति होती है। वस्तु का मूल्य बढा, मनुष्य का घटा और उत्पादन का साधन बनकर आदमी भी वस्तु बन गया।

बाद मे वस्तु सौदे की चीज बन गई, जिसका प्रतिमूल्य—बदला मिले, वह सौदा। सपत्ति की व्याख्या भी बदल गई। बाजार की ऐसी परिभाषा बन गई कि जिसका उपयोग हो वह सपत्ति नही, सम्पत्ति वह, जिसका प्रतिमूल्य—बदला मिले। उत्पादन की इस पद्धति के परिणाम-स्वरूप खाने-पीने से लेकर आत्मा तक, सब कुछ बाजारू सौदा बन गया। मन्दिर मे देवता का चरणोदक, नैवेद्य और स्वय देवता तक, सब-कुछ बिकता है। यह है पूजीवाद का परिणाम। यही पूजीवाद के आन्तर-विरोध का मूल है। पूजीवाद का पर्यवसान मनुष्य को पदच्युत करने मे हो रहा है। सामन्तशाही मे मनुष्य का सबन्ध मनुष्य के साथ था। अब वस्तु के साथ हो गया और यत्रयुग मे यन्त्र के साथ हो गया है। यत्र के साथ सम्बन्ध होते ही मनुष्य बहुत कुछ यान्त्रिक बन गया है। स्थापत्य, नगर-रचना, कला सब यत्र के अनुसार नये सिरे से बने है। इसलिए अब क्राति की जरूरत निर्माण हुई है।

प्रचुरता के लिए उत्पादन पर जोर दिया गया। उत्पादन की प्रेरणा के रूप में फायदा आया। इसका जो तत्त्वज्ञान बना, वह उपयोगिता-वाद कहलाया। इसका सूत्र था, 'हरेक अपने-अपने को सभाले, तो सबको सभाल लेगे।' विनोबा उपयोगितावाद को फायदावाद कहते है। जब कोई उनसे यह पूछता है कि इससे क्या फायदा, उससे क्या फायदा, तो वह कहते है कि अब एक कदम आगे बढकर यह अन्तिम प्रश्न पूछा जाय कि 'फायदे

से क्या फायदा है ?' वकिमवावू ने इसे उदरवाद कहा था। सुप्रसिद्ध उदार-मतवादी जान स्टुअर्ट मिल फायदावादी था। इस तत्त्व के तात्पर्य को गणित मे रखा जाय तो होगा 'अ+व+क=अवक, अर्थात् तीन रकम के जोड के वरावर तीन रकम का गुणाकार। इसमे शास्त्रीय दोप है। कहना तो वह यह चाहता था कि तीनो को तीनो का स्वार्थ देखना चाहिए। तीन का अर्थ तो तव सिद्ध होता है। यह नही हुआ तो निरकुश स्पर्धा चली। इसका भी सिद्धात वना। परन्तु अव तो पूजीवाद ने निरकुश प्रतियोगिता का सिद्धात छोड दिया है और पेटेट आदि के अकुश स्वीकार किये है। ऑलीवर क्रॉमवेल के एक चरित्रकार फेडरिक हारिस ने इस अर्थशास्त्र को स्वार्थ-विज्ञान कहा है। दो स्वार्थों के वीच जवतक अधिक विरोध नही था, तवतक यह चला, परन्तु अव इसके दुष्परिणाम आन्तरविरोधी के रूप मे प्रकट हो रहे हैं। इसके मूल में खरावी यह है कि एक की मुसीवत दूसरे का मौका वनता है। स्वार्थ-शास्त्र का सूत्र था—"कम काम, ज्यादा दाम।"

इसके वाद कार्ल मार्क्स आये जो दरिद्र और वचित मानव के लिए पहले पैगवर सावित हुए। इसके पूर्व किसी ऋषि-मुनि, सत या द्रष्टा ने जो वात नही कही थी, वह इन्होने कही। पहले सव कहते थे कि अमीर अमीर रहता है, गरीव गरीव। गीता ने सर्वसग परित्यागी होने के लिए कहा, परन्तु समाज ने निराकरण करने को नही कहा। हमारे यहा सव शास्त्रो ने इस विपय मे जो कहा है, उसका आशय है—दरिद्रान् भर कौतेय! (हे कौतेय! दरिद्रो का भरण कर)। ईसाई धर्म मे कहा है—"अमीर को दान का मौका मिले इसके लिए गरीवी का निर्माण किया है।" यह तो भगवान पर 'वैपम्य और नैर्घृण्य' का दोप लगाने जैसा है। दान को प्राचीनो ने सग्रह का प्रायश्चित्त माना है। प्राचीन सस्कृति और धर्म इस मुकाम तक पहुच कर ठिठक गए, क्योंकि ये सव विपमता पर आधारित थे। मार्क्स ही वह पहला व्यक्ति हुआ, जिसने कहा कि गरीवी-अमीरी भगवान ने नही वनाई। यह नैसर्गिक तो है, परन्तु अपरिहार्य नही है। नियति या विधि-विधान नही है। यह परिहार्य है। इतना ही नहीं, वल्कि

इसका अन्त अवश्यभावी है। इनका अन्त भी नियति ही है। इससे अधिक बडी आशा गरीब के लिए और क्या होगी। मार्क्स ने नये अर्थशास्त्र का मूल्य बताया—"जितनी ताकत उतना काम, जितनी जरूरत उतना दाम।" उसने पुराने अर्थशास्त्र को अनर्थशास्त्र या विपत्ति-विज्ञान कहा है—साइस ऑफ ह्यूमन मिज़री। विनोबाजी ने भी मार्क्स के इस वाक्य को शायद बिना पढे ही दोहराया है, "यह सपत्ति नही, विपत्ति है, यह ले-लेकर मै सपत्तिवालो को बचाना चाहता हू और बोझ हलका करना चाहता हू।"

नये सूत्र के अनुसार समाज-रचना करने की बात आते ही यह प्रश्न खडा होता है कि इसमे उत्पादन की प्रेरणा कहा से आयगी ?

जरूरत (need) और माग (demand) मे फर्क है। जरूरत कृत्रिम रूप से पैदा नही हो सकती, माग हो सकती है। अत मार्क्सवाद में प्रश्न पैदा हुआ कि जब जरूरत के मुताबिक दाम मिलेगे, तो हमे जितनी जरूरत होगी, उतना ही काम भी करेगे। "जितनी जरूरत उतना दाम, जितनी जरूरत उतना काम"—रूस मे इस सूत्र का प्रयोग करते समय व्यवहार मे मालूम हुआ कि जितनी ताकत उतना काम विरला ही करता है—उतना ही करता है जितना करना पडता है। किसी को दक्षता या क्षमता बढाने की चिंता नही थी। इसीलिए वहा स्टोकोनोव ने नया सूत्र कहा 'जितना काम उतना दाम।' यहा से कदम पीछे को लौटने लगा और समाजवादी क्राति कुठित होने लगी। तब मुनाफे की प्रेरणा—लाभ की वृत्ति—के बदले दूसरी क्या लाई जाय ? इस तरह प्रेरणा की पहेली खडी हुई। धर्म की पाप-पुण्य की जो मूल प्रेरणा थी वह गई, मुनाफे की आई थी, वह भी गई। अब नई प्रेरणा आये तो कहा से ? समाजवादी ने दो प्रेरणाए बताईं लोक-प्रशसा, शाबाशी या (लोकैषणा) और समाज-सेवा की अन्त प्रेरणा, लोक-सेवा अर्थात् लोगो की तारीफ के चिह्न, के रूप में तमगे, सेहरे, चाद आदि दिये जाने लगे। रूस के अनुभव के मुताबिक खेलो आदि में तो यह प्रेरणा चलती है, परन्तु उत्पादन मे पर्याप्त काम नही देती।

समाजवादियो मे यद्यपि अब केवल आदर्शवादी और विज्ञानवादी जैसे दो वर्ग नही रहे, परन्तु पुराने जमाने मे जो यूरोपियन समाजवादी माने जाते थे उनमे से एक अग्रगण्य सत सायगा थे । उन्होने कहा था, **"काम हमारी जरूरत न रहकर गुण बनना चाहिए।"** जरूरत तो टाली जा सकती है, परन्तु गुण या चरित्र तो नही टल सकता। पूजीवाद मे तो काम या तो दाम के लिए होता है या बेगार के लिए। इसलिए उसमे रुचि नही रहती ।

यहा फुरसत की समस्या खडी होती है । फुरसत मे वही काम हो सकता है जिसमे रुचि हो । डाक्टर पडे रहने की सजा दे तो तबियत ऊब जाती है । आराम सजा हो जाती है । और यदि आदमी अपनी मर्जी से वालीवाल खेले, तो उस मेहनत के बारे मे कहेगा, यह तो मनोरजन है, सजीवन है । फुरसत मे मनोरजन चाहिए ।

एक समाजवादी सूत्र था—फुरसत ही आजादी है । दूसरे की इच्छा के अनुसार मिलनेवाला आराम भी काम है और अपनी इच्छा से होने वाला काम भी आराम है । जैसे मनोरजन मे सामाजिकता का विकास है, वैसे ही विकृति भी आती है । फुरसत मे मनोरजन के लिए गुलेल से पक्षी मारने का खेल भी होता है । मनोरजन के साधन पर से सस्कृति की परीक्षा होती है । सास्कृतिक कार्यक्रमो मे मनोरजन का अर्थात् अभिरुचि का सामाजिकता के मूल्यो के साथ अनुबध होता है । इस तरह समाजवाद का यह एक प्रश्न था कि आदमी के काम मे अभिरुचि कैसे पैदा की जाय ? यदि आनद के लिए उद्योग से आत्मा की व्यवस्था करनी पडे तो उसके लिए अनुत्पादक परिश्रमो का आयोजन करना होगा । उनको बढाना पडेगा । इनमे से असामाजिकता उत्पन्न होगी । गाधी ने अभिरुचि और सामाजिकता, उत्पादक श्रम और शौक का सयोग किया । उन्होने स्पष्ट परिभाषा मे कहा कि 'काम हमारा व्रत है'। व्रत मे रुचि और पवित्रता दोनो आ जाती है, इस प्रकार गाधी ने बधुत्व-सम्बधी सयोजन की नीव डाली ।

व्रत मे दो वस्तुए है पवित्रता की भावना और स्वेच्छा की प्रेरणा। व्रत मे विवशता नही, सयम है, और सयम से शक्ति बढती है, लाचारी से घटती है। उदाहरणार्थ जब विषय-भोग की शक्ति और साधन विद्यमान हो, तब जो सयम पाला जाता है वह ब्रह्मचर्य कहलाता है। आजीवन कैदी ब्रह्मचारी नही माना जाता। इसलिए स्वेच्छक सयम से शक्ति बढे, ऐसा व्रत गाधीजी ने पसन्द किया और परिश्रम को व्रत कहा। उसके बिना जीवन का विकास नही। उत्पादन के साधनो पद्धति और सबधो मे से सस्कृति प्रकट होती है। जीवन और जीविका का सबध पार्वती और परमेश्वर वाणी और अर्थ की तरह अभिन्न है। लडाई के कारण लोग साम्यवाद को उसके शुद्ध रूप मे नही देखते किन्तु शुद्ध रूप मे उसका अन्तिम सवाल यह है कि काम मे से सास्कृतिक गुण-विकास किस तरह हो। गाधीजी ने व्रत को व्रत बनाकर काम मे से व्यक्तित्व और सस्कृति का विकास साधने की रीति सिखाई। इस तरह उत्पादन भी सामाजिक मूल्य बन गया।

डीन आव केटरबरी के शब्दो मे कहा जाय तो 'साम्यवादी' को जीवन-मात्र के लिए आदर था। स्टालिन के आने के पहले ही मास्को की तीसरी इटरनेशनल में साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् मे तय हुआ कि युद्ध को असभव करने के लिए राष्ट्रवाद और पूजीवाद को खतम करेगे।

परन्तु सरक्षण के सयोजन से शाति का सयोजन नही हो सकता। यह मनोवृत्ति का प्रश्न है। विद्यार्थी लडेगे तो एक-दूसरे पर पुस्तके फेंकेंगे और पुजारी लडेंगे तो शालिग्राम फेककर मारेंगे! और गाधीवादी लडेंगे तो एक-दूसरे को चरखे के तकुए भोकेंगे! युद्ध की मनोदशा मे उत्पादन के सारे साधन युद्ध के आयुध बन जायगे। परशुराम की घास काटने की कुल्हाडी, बलराम का हल, और कृष्ण का सुदर्शन-चक्र व रथ का पहिया युद्ध में मानव सहार के साधन बन गए थे। आज चुनाव में भी गाधीजी का ही क्या शस्त्र के रूप मे प्रयोग नही किया जाता? युद्ध की मनोवृत्ति के फलस्वरूप कला, साहित्य, सस्कृति ये सब लडाई के हथियार बन जाते है।

इसका नाम है, युद्ध के लिए सयोजन। हमारी प्रतिज्ञा तो युद्ध बद करने की है। प्रतिज्ञा एक और सयोजन दूसरा, यह नही चलेगा। अत बधुत्व के लिए सयोजन करना होगा। इसमे मनुष्य केन्द्र मे रहेगा। मनुष्य की शक्ति और गुण का अर्थात् मनुष्यता का सरक्षण और सस्कृति का विकास हमारा साध्य है। इस दृष्टि से दो आवश्यकताए है (१) मनुष्य-शक्ति और पशु-शक्ति का अधिकतम उपयोग, (२) दूसरो को जिलाने के लिए उत्पादन हो, शोषण के लिए नही।

पहली बात यह है कि मनुष्य के विकास की बलि देकर यत्र का विकास न किया जाय। दूसरी बात यह है कि उत्पादन दूसरे के जीवन को समृद्ध करने के लिए किया जाय। उसमे से अपरिग्रह का व्रत निष्पन्न होता है। विलास को सार्वत्रिक बनाते ही वह विलास नही रह जाता, यह सच है। किंतु सबको पूडी मिले इसके लिए हमे शायद रूखी रोटी भी छोड देनी पडे। अमरत्व का मार्ग मृत्यु के दरबार मे से होकर जाता है। नचिकेता यम के पास ही तो अमरता सीखने गया था न! क्रातिकारी के तप और सयम द्वारा ही सद्गुण सार्वत्रिक होगे। दुर्गुण सार्वत्रिक नही हो सकते, यह सृष्टि का सबसे कल्याणकारी नियम है। उसे गुण का आश्रय, आधार खोजना पडता है। बुराई को बचाव की जरूरत होती है।

इस दृष्टि से अपरिग्रह शाश्वत मूल्य है, उसे बचाव या समर्थन की जरूरत नही रहती। परिग्रह अशाश्वत है। उसमे स्तेय है। मार्क्स, गाधी, विनोबा, तीनो ने सग्रह को स्तेय कहा है।

खादीग्राम मे विनोबाजी ने अपनी तप पूत भाषा मे कहा था, "अपरिग्रह आजतक व्यक्तिगत शुद्धि का व्रत था। उसे अब सामाजिक शक्ति मे बदल देना है।"

बापू की अपरिग्रह की बात ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के रूप मे आई। इसके दो रूप है एक सक्रमण काल के लिए, दूसरा शाश्वत।

साम्यवादी सक्रमण-काल के लिए किसान-मजदूर की तानाशाही चाहते है, परन्तु इस तानाशाही का अत किस तरह हो, यह वे नहीं बता

सकते। वे कहते है कि गुणात्मक परिवर्तन एक कुदान से आवेगा। यह किस तरह, इसका भी खुलासा नही है। ऐसा माना गया है कि यह सब नियति से होगा। कर्म-विपाक और पुरुषार्थ मे कोई अनुबंध है या नही ? नियति बलवान है या पुरुषार्थ ? इसका जवाब नही है। हम भी इसे शब्द-व्यूह की पहेली (क्रासवर्ड पज़ल) की तरह छोड दे। इसी तरह पहले जड हुआ या पहले चेतन, इसका फैसला नही हो सकता। दोनो है और जड के ऊपर चेतन का आज प्रभुत्व है इतना निर्विवाद है।

हम पूछते है कि जिस दिन राजसत्ता विलीन होगी, उस दिन को नज़दीक लाने की प्रक्रिया कौन-सी है ? इसके लिए गांधीजी ने कहा, "प्रत्येक मालिक अपने को ट्रस्टी समझे।" उत्पादक उत्पन्न को अपनी मिल्कियत न समझे। चमार सब चप्पलो का मालिक नही है। चमार भी अपने उत्पादन और सग्रह का ट्रस्टी होगा। पूजीवादी भी अपनी आमदनी और पूजी का ट्रस्टी होगा। परतु ट्रस्टी के बोझ को क्रमश हलका तो करना ही पडेगा न ? इसके लिए दान का कदम है, सपत्ति का विसर्जन, अनुत्पादक व्यवसायो का विसर्जन, इसका नाम सपत्ति-दान है। मध्य काल मे सपत्ति धरोहर मानी जाती थी। शाकुतल की भाषा मे आज सपत्ति-धारी को अपनी थाती का न्यास का 'प्रत्यर्पण' करना है, क्योकि हम प्रति-हरण (Expropriation) नही चाहते। गरीब-अमीर दोनो की शक्ति बढाने के लिए इस प्रत्यर्पण की प्रक्रिया को दान कहा है। आगे चलकर मालिकी का ही विसर्जन करना है। पहला कदम, उत्पादक उत्पादन के साधनो का मालिक बने, दूसरा कदम, उस मालिकी का भी विसर्जन हो। घर की गृहस्थी छोड कर सब कुछ बाल-बच्चो को सौपकर हरिद्वार चला जाना व्यक्तिगत अपरिग्रह है। वह अब पर्याप्त नही है। अब तो सारा परिग्रह और सारा उपार्जन समाज को सौप कर समाज मे रहकर सामाजिक अपरिग्रह साधना है।

पूजीवाद सयोजन-रहित था। सयोजन की बात समाजवाद के साथ आई। एक बार मैने बधुत्व के लिए सयोजन (Planning for Brother-

hood)की वात की। मार्गरेट कज़िन्स ने आपत्ति करते हुए कहा कि 'ब्रदरहुड' नही, (Brother + Sister = Broster) = वधु-भगिनित्व कहो। मुझे शव्द जचा नही, परतु सकेत जचता है। स्त्री पहले कुटविनी थी, अव नागरिक वन गई है। रूस ने मातृत्व को नागरिकता से सपन्न तो किया, परतु वहा भी स्त्री को सरक्षण कैसे दिया जाय, यह प्रश्न अभी तक ज्यो-का-त्यो है। वे स्त्री-पुरुप को समान बनाने के लिए पहले कानून वनाते चले गए, परतु फिर वदलते गए। १९४४-४५ मे सह-शिक्षण वद किया गया और उसका स्पष्टी-करण यह दिया कि अव स्त्री-पुरुप एक ही आर्थिक स्तर पर आ गए है, इस-लिए सहशिक्षण की जरूरत नही है। यह मूल प्रश्न शेप ही रह गया कि स्त्री समाज मे निर्भय होकर कैसे जिये। जवतक ब्रह्मचर्य सामाजिक मूल्य के रूप मे प्रतिष्ठित न होगा, तवतक इस समस्या का समाधान सभव नही है। गाधीजी ने जो ग्यारह व्रत वताये, वे सव सामाजिक मूल्य ही थे। वह केवल व्यक्तिगत गुणो की वात नही थी। अगर गाधी ने सामाजिक मूल्यो की स्थापना न की तो गाधी ने कुछ नही किया। अग्रेज सरकार दूसरो के राजनैतिक और प्रतिकारात्मक आदोलनो की अपेक्षा गाधी के ग्रामो-द्योग जैसे चटनी-कचूमर के कार्यक्रमो से अधिक डरती थी, क्योकि ऐसे कार्यक्रमो के द्वारा गाधीजी व्यक्तिगत गुण को सामाजिक मूल्य मे बदल कर क्रातिकारी सामर्थ्य उत्पन्न करते थे, नही तो इस देश मे मुह पर मच्छरदानी वाधने तक सूक्ष्मता से हिसा-अहिसा का विचार करने वाले लोग भी क्या नही थे? उपवास भी क्या कम होते थे? परतु गाधी के उपवास से सिहासन डोल उठते थे। गाधी के प्रत्येक व्रत का सामाजिक अनुवध रहता था, इस कारण उसका प्रचड प्रभाव पडता था। गाधी का ब्रह्मचर्य कोई पुराना ब्रह्म-चर्य नही था। पुरुप के लिए स्त्री-देह अभिलापा का विपय न रहे तो स्त्री निर्भय हो जाय। स्त्री स्वतत्रता मागती है, कानून देता भी है। परतु कानून उसे वास्तविक शक्ति नही देता। अत स्वतत्रता स्त्री का एक नया गहना वन गया है जो उसके सकट को वढाता है। कमजोर के जितने जेवर अधिक, उतना खतरा अधिक। स्त्री के जीवन मे भी इस सामाजिक ब्रह्मचर्य का

स्थान पुरुष के समान ही है। प्राचीन काल में तो प्रौढ़ कुमारिका को 'वृषलि' कहते थे और उनके हाथ का पानी भी नहीं पीते थे। ब्रह्मचर्य विग्रह या सन्यास स्त्री के लिए स्वायत्त नहीं थे। इस तरह स्त्री को समान भूमिका पर लाने की दृष्टि से सामाजिक समता के साथ ब्रह्मचर्य का अनुबंध है। अतः वह सामाजिक मूल्य है। अस्तेय और अपरिग्रह का अनुबंध उत्पादन की प्रेरणा के साथ है। इसलिए इन व्रतों को सामाजिक मूल्य का रूप प्राप्त हुआ है।

अब प्रश्न यह है कि इन मूल्यों की स्थापना मुट्ठी-भर लोग करेंगे कि सब करेंगे? प्रतिवर्तनवाद (Behaviourism) या जैसी बाह्य स्थिति होगी वैसे लोग बरतेंगे—ऐसा माननेवाले तानाशाहीवादियों की रीति से मुट्ठी भर लोग परिस्थिति पैदा करते हैं और बाकी के सब परिस्थिति का अनुसरण करते हैं। जैसे मालिक कुत्ते को सिखाता है, वैसे ही थोड़े से लोग बाकी सबको सिखाते हैं। इसका नाम है एक वर्ग की तानाशाही। सर्कस में एक आदमी होता है, बाकी सब पशु होते हैं। परन्तु इस व्यवस्था में थोड़े व्यक्ति और जनता, दोनों समान भूमिका पर रहेंगे या नहीं यह आज का अंतिम प्रश्न माना जाता है।

गांधीजी ने इस सबंध में कहा कि परिस्थिति को बदलनेवाले आदमी थोड़े ही होंगे, परन्तु वे दूसरों को अपनी बराबरी के मानव मानेंगे। यह हुई साम्ययोगी भूमिका। इसके बिना ये 'थोड़े' स्वयं एजेण्ट, कर्ता बन जाते हैं, और दूसरे उपादान द्रव्य बन जाते हैं। 'हम कलाकार, 'तुम मिट्टी,' 'हम मूर्तिकार तुम मिट्टी'—इसके बदले होना यह चाहिए कि परिस्थिति को बदलनेवाला भी मनुष्य और परिस्थिति के साथ बदलनेवाला भी मनुष्य ही है। क्रांति की प्रक्रिया में क्रांतिकारकों का यह व्रत होना चाहिए कि परिस्थिति के साथ बदलनेवाले भी हमारे बराबरी के साथी हों। परिवर्तन स्थिति का संकेत है, युग-चिह्न है। किन्तु उसके साथ पुरुषार्थ की जरूरत है और क्रांति की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें सबके पुरुषार्थ के लिए अवकाश हो। क्रांति की प्रक्रिया सर्वसुलभ और

सार्वत्रिक होनी चाहिए। इसलिए कानून और शास्त्र, जो कि सार्वत्रिक कही नही हो सकते, सार्वत्रिक क्राति के साधन नही है। इसलिए इस भूदान-यज्ञ की क्रातिकारी प्रक्रिया मे शस्त्र का निषेध है और सत्ता की आवश्यकता नही मानी जाती। हमें तलवार से परहेज़ है और हम कानून के कायल नही। भूदान-यज्ञ के ये विशेष लक्षण है।

: ९ :

सर्वोदय का लक्ष्य-साधन

[जयप्रकाश नारायण]

भूदान-यज्ञ-आन्दोलन केवल जमीन मागने और बाटने का कार्यक्रम नही है। सर्वोदय की कल्पना की, एक सपूर्ण क्राति की यह पहली सीढी है। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक, सभी क्षेत्रो मे क्राति लाना इस आन्दोलन का उद्देश्य है। क्राति की इस प्रक्रिया को अच्छी तरह समझना चाहिए। सर्वोदय समाज कायम करने की कल्पना में बहुत-सी बाते है। इनमे से कुछ मुख्य बाते मैं यहा बताना चाहता हू।

सर्वोदय मे सबका भला होगा, सब सुखी होगे, ऊच-नीच का भेद न होगा, न्याय होगा, शोषक न होगे और समता होगी। यह समाज ऐसा होगा जिसमे सत्ता जनता के हाथ मे होगी और वही उसका सचालन करेगी। केन्द्रीय शासन या तो न होगा, यदि होगा भी तो बहुत कम। जीवन से सबधित अधिकाश विषयो का शासन गाव के द्वारा होगा, उससे कम जिले के द्वारा, उससे भी कम प्रात के द्वारा, और सबसे कम केन्द्र द्वारा। सत्ता भी इसी मात्रा और क्रम मे विभिन्न क्षेत्रो मे रहेगी। यह सब शोषणविहीन समाज मे ही हो सकता है, ऐसे समाज मे जिसमें केवल आर्थिक शोषण ही नही, बल्कि किसी भी तरह का शोषण न हो।

प्रश्न है कि समाज शोषणविहीन कैसे बनेगा? शोषणविहीन समाज में मेहनत करनेवालो को मेहनत का पूरा फल मिलना चाहिए। यह तभी

सभव है जब कि छोटे-छोटे उद्योग घर-घर चलाये जाय, और बडे उद्योग कामवालो के हाथ मे रहे। यह आर्थिक विकेन्द्रीकरण हुआ। इसी तरह राजनीतिक सत्ता का भी विकेन्द्रीकरण हो और गाव के लोग अपना प्रबन्ध खुद करे। इसका थोडा सकेत अभी किया जा चुका है। इसके लिए गाव को स्वावलबी बनना होगा, केन्द्र पर निर्भर नही रहना होगा। आवश्यकता पडने पर केन्द्रीय शक्ति का उपयोग गाव करेगा, परन्तु उस शक्ति की ओर बराबर नजर नही रखेगा। एक मिसाल ले। रेल मे खतरे की जजीर होती है। खतरे के समय उसे खीचते है, उससे काम लेते है, पर उसकी तरफ लोगो का ध्यान बराबर नही लगा रहता है। इसी तरह गाव स्वावलबी रहे। राज्य रहे तो उसपर बराबर ध्यान नही लगा रहे, मौका आने पर उसकी शक्ति का उपयोग हो।

आज समाज मे प्राय ऐसे लोग है जो स्वार्थ-परायण है। वे अपने हित और लाभ की बात ही ज्यादा देखते है। सर्वोदय इस वृत्ति को छुडाना चाहता है। उसमें दूसरो के स्वार्थ का खयाल रखना होगा। मनुष्य का स्वभाव जैसा आज दीखता है, उसे बदलना होगा। जीवन के मूल्य बदलने होगे। इस तरह हम देखते है कि व्यक्ति को बदलना है। यदि व्यक्ति न बदलेगा, तो एक बार शोषण बन्द होने पर फिर शोषण आ जायगा। यह बडा उद्देश्य है, पर हम वहा पहुच सकते है। भूदान की प्रक्रिया वहा पहुचने का साधन है, क्योकि इस बडे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किसी काम को शुरू करना होगा। जमीन की समस्या का सबध करोडो आदमियो से है। इस समस्या को हल करना है। नही करने से दूसरी तरह के जो नुकसान होगे वे तो होगे ही, भयकर आग भी ला सकती है, जैसे तेलगाना मे हुआ। भूदान-यज्ञ इसी समस्या को हल करने का साधन है, और इस तरह उसका सबध भी करोडो आदमियो से है।

दूसरी बात। विनोबाजी समाज को जो समझाना चाहते है वह भूदान के द्वारा समझा सकते है। वे इस तत्व को समझाना चाहते है कि जो कुछ है वह हमारा नही है समाज का है। भूदान के द्वारा यह समझाना है। यदि

उद्योग-धधो, कारखानो के वारे मे कहे कि ये समाज के है, तो उनके मालिक यह सोच सकते है कि इन चीजो को हमने अपनी मेहनत और अक्ल से वनाया है, फिर ये समाज के कैसे हुए ? उनका ऐसा सोचना गलत है, लेकिन वे इस तरह से सोच सकते है। परन्तु जमीन तो किसी आदमी की वनाई हुई नही है, भगवान की वनाई हुई है। भगवान के नियम मे न्याय यह है कि जो भूमि पर काम करता है वह उसी की है, क्योकि "सबै भूमि गोपाल की" ऐसा कहा है। इस तत्व को हम भूमिदान के द्वारा समझा सकते है, क्योकि यह हमारी पुरानी सस्कृति के अनुकूल है। पुराने जमाने मे तो जमीन गाव की होती थी। बीस-बीस वर्षों पर परिवार की सख्या के अनुसार गाव की पचायत गाववालो के बीच जमीन बाटा करती थी। इसके पीछे यह सिद्धान्त है कि जरूरत से अधिक जमीन हम न रखे।

इसी तरह कोई दूसरा धन भी जरूरत से अधिक हमे नही रखना चाहिए। कोई भी आदमी अकेले धन नही पैदा करता है। धन सारे समाज के सहयोग से बनता है। कपडे के कारखानो मे जो धन होता है, उसे पैदा करने मे कपास पैदा करनेवाले किसान से लेकर अनेक व्यक्तियो का सहयोग रहता है। फिर, धन किसी के पास इकट्ठा कैसे होता है ? हम देखते है कि पानी पडता है तो वह समतल जमीन पर नही टिकता, पर गढे मे भर जाता है। वैसे ही सामाजिक व्यवस्था मे गढे होते है। वहा धन इकट्ठा हो जाता है। अब विनोबाजी ने सम्पत्ति-दान का काम उठाया है। उसका आशय भी यही है कि जरूरत से ज्यादा कोई न रखे।

अब प्रश्न यह है कि जरूरत कितनी है, यह फैसला कौन करे। विनोबा-जी कहते है कि आप खुद करे। अलग-अलग आदमियो की अलग-अलग जरूरत हो सकती है। पर उसमे थोडा-बहुत ही फर्क होगा। आदमियो में भी भेद होता है। कोई नाटा, कोई लम्बा, किसी की अगुली बडी, किसी की छोटी। पर यह अन्तर एक डेढ फुट के भीतर ही का होता है। पर समाज में आज हम देखते है कि भेद बहुत अधिक है। किसी को पचास-साठ रुपये

मासिक मिलते हैं, तो किसी के पास लाखो करोडो है। यह आपत्तिजनक है। करोडपति की आवश्यकता भी सीमित ही रहती हैं। वह दस मन नही खाता या सैकडो धोतिया नही पहनता। इस दृष्टि से यदि लोग अपनी-अपनी आवश्यकता निर्धारित करना चाहे, तो आसानी से कर सकते हैं। उन्हे यह याद रखना होगा कि जो कुछ है, समाज का है। जमीन के विषय मे भी दस-पाच बीघे का फर्क हो तो खलेगा नही, पर हजारो बीघे का फर्क होता है तो वह आपत्तिजनक हो जाता है। भूदान और सपत्ति-दान के जरिये ये सारे विचार समझाये जा रहे हैं।

कुछ लोग यह आपत्ति करते है कि दान माग करके समाज को बदलना सभव नही है। गरीब सगठित हो, तभी समाज बदलेगा और उसके लिए हिंसा का उपयोग करना ही होगा।

हिंसा से समाज बदल सकता है, पर हम उसे जैसा बनाना चाहते है, वैसा वह नही बनेगा। हिंसा से न्याय और समता का समाज नही होगा। हा, कुछ लोग जनता की छाती पर बने रहेगे। हिंसा के द्वारा काम करने से उनकी जीत होगी, जो हिंसा करने में चतुर होगा। भारत की जनता के पास हिंसा का साधन नही है। अत यह निश्चित है कि जो ज्यादा हिंसा करेगा वही जीतेगा। रूस में देखिये क्या हो रहा है? क्रान्ति होने को ३६ वर्ष हो गये। लेनिन ने कहा था कि हम जनता को हथियार देगे। पर, अब हथियार मे भी बहुत विकास हो गया है। अब बन्दूक का जमाना नही रहा। एटम बम का जमाना है। अत जनता को यह सब हथियार देना सभव नही है। ऐसी स्थिति मे हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारे सामने दो रास्तो के बीच चुनाव करने का सवाल नही है। एक ही रास्ता अहिंसा का है। हिंसा से समता हो ही नही सकती। रूस मे ३६ वर्षों के बाद भी सत्ता मुट्ठी भर आदमियो के हाथो मे है। स्टालिन के बाद तीन आदमियो ने अपने हाथ मे सत्ता ले ली—मैलेन्कोव, मोलोटोव और बेरिया। इस विषय मे जनता ने कोई फैसला नही किया था, बल्कि इन्ही तीन व्यक्तियो ने कमरे मे बैठकर फैसला किया था। पीछे

चलकर बेरिया और मैलेन्कोव मे भी प्रतिद्वन्द्विता हुई। पुलिस विभाग के अफसर बेरिया के साथ थे और फौज के अफसर मैलेन्कोव के साथ हो गये। फौज के अफसर किसका साथ दे, इसका फैसला करने मे उन्हे कुछ समय लगा। जब उन्होने यह निर्णय कर लिया कि मैलेन्कोव का समर्थन करना चाहिए, तब सारा अधिकार उसके हाथ मे आ गया, क्योकि पुलिस से फौज मजबूत होती है। फिर बेरिया गिरफ्तार हुआ, तब कही जनता को जाकर पता चला कि अधिकार मैलेन्कोव के हाथ मे है। भारत मे भी यदि हिंसा होगी तो ऐसा ही होगा। सर्वोदय समाज ऐसा नही चाहता। हम पार्टी भी नही चाहते। सर्वोदय-राजनीति का विकास इस तरह करना है कि पार्टी हो ही नही। अत हिंसा का सवाल ही नही उठता।

दूसरी बात। हिंसा से मनुष्यत्व कत्ल हो जाता है। लाखो वर्ष मे मनुष्य पशुता से मनुष्यत्व की ओर जाता है। हम उसे फिर पशुता मे गिराना नही चाहते। हिंसा भी दो तरह की होती है। एक सगठित हिंसा और दूसरी व्यक्तिगत हिंसा। सगठित हिंसा के द्वारा जब हम किसी समस्या को हल करना चाहते है तो उसमे भी नियमो का पालन करना पडता है। पर अस-गठित हिंसा मे तो कोई नियम नही रहता। आदमी गिर जाता है और पशु के समान व्यवहार करता है। यह सारा व्यवहार हमारी सस्कृति के विरुद्ध है, क्योकि हमारी सस्कृति शान्ति की हामी रही है। लेकिन हम यह भी नही भूल सकते कि आज की समाज-व्यवस्था मे भी हिंसा है। वर्त्तमान समाज हिंसा पर ही खडा है। और, इस हिंसा की प्रतिक्रिया हिंसा के ही रूप मे प्रगट होनेवाली है।

यह भी आपत्ति की जाती है कि इस तरह से क्रान्ति नही होगी। जैसा कि ऊपर बतला चुके है, हमे मनुष्य का स्वभाव बदलना है, नये मानव का निर्माण करना है। यही क्रान्ति है। यह काम भूदान-आन्दोलन के द्वारा हो रहा है, और यह आन्दोलन इस तत्व के आधार पर चल रहा है कि मनुष्य का हृदय-परिवर्तन हो सकता है। हृदय-परिवर्तन होना इसलिए सभव है कि हम सब एक है, एक ही परमात्मा के

कण है। आइने पर धूल पड जाती है, तो वह धुधला हो जाता है। धूल पोछने पर वह फिर चमक जाता है। वैसे ही, आदमी पर सस्कार की धूल जम जाती है। इस धूल को हटाना होगा। मनुष्य स्वभावत अच्छा है, बुरा नही। यदि वह बुरा होता, तो बुरे आदमी को ही पूजता। पर वह अच्छे को ही पूजता है और उसके सामने उसका सिर झुकता है। अब देखिये अनुभव क्या कहता है। हैदराबाद मे जब विनोबाजी को रामचन्द्र रेड्डी से जमीन मिली, तो लोग कहने लगे कि एक आदमी के देने से क्या हुआ, सब लोग तो वैसे नही देगे। विनोबाजी ने कहा कि मनुष्य स्वभाव मे विश्वास रखकर ही हम काम चला रहे है। आज हम सभी देख रहे है कि इस आन्दोलन का ज़ोर किस तरह बढ रहा है, किस तरह इसके विचारो का प्रचार हो रहा है, और किस तरह लाखो एकड जमीन मिल रही है।

भूदान का काम करनेवालो को गाधीजी की कार्य-पद्धति समझ लेनी चाहिए। वह पहले व्यक्ति को समझाते थे। फिर जिस चीज का अन्त करना चाहते थे, उसके पक्ष में अगर कोई विचार हो, तो उसे इस बात का प्रचार करके खत्म करते थे कि उस चीज के पीछे कोई नैतिक आधार नही है। विचार-प्रचार के द्वारा उस चीज को लोगो की नजर मे नैतिकता-विहीन साबित करते थे। तीसरी बात, आन्दोलन करके उस चीज के समर्थको पर नैतिक दबाव डालते थे। इसीलिए विनोबाजी गरीबो से भी जमीन मागते है। उससे शक्तिशाली लोकमत बनता है। गया जिले मे भूदान के काम से मैं घम रहा था। एक गाव में एक किसान ने, जिसके पास बहुत कम जमीन थी, अपनी जमीन दी। मैंने यह कहकर जमीन लेने से इन्कार करना चाहा कि आपके गुजर-बसर के लिए वह जमीन काफी नही है। तो उस आदमी ने कहा कि मैं इस यज्ञ मे अपनी आहुति दूगा ही, और यदि आप नही लेगे तो मै अनशन करूगा। उस आदमी को देखकर इस काम में मेरा विश्वास बढा और मै समझ गया कि यह काम असफल नही हो सकता। इस उदाहरण से शिवि और दधीचि की कथाए याद आ गई। चौथा काम गाधीजी का यह

होता था कि वे अन्त मे अनीति से असहयोग करते थे। गाधीजी ने बताया, शोपक के साथ शोपित सहयोग करता है। वही सहयोग देना बन्द कर दे तो अनीति और शोपण का अन्त हो जायगा।

अग्रेज सरकार के साथ गाधीजी इस पद्धति को किस तरह काम मे लाये, यह हम देख चुके है। आज समाज बदलने का काम है। इस काम मे इस पद्धति का उपयोग किस तरह होगा, यह पता नही चलता था। अब विनोबाजी भूदान-यज्ञ के द्वारा यह बतला रहे है। भूमिपतियो को भूमि छोडने को समझा रहे है। जमीन की मालकियत का कोई नैतिक आधार नही है, विचार-प्रचार द्वारा इस भाव को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न कर रहे है। आन्दोलन द्वारा सम्पत्तिवानो पर नैतिक दबाव डाल रहे है। यदि भूमिहीनो के दिमाग मे यह बात आ गई कि भूमिपतियो के साथ असहयोग करने की जरूरत है, तो विनोबाजी के कहने पर वे असहयोग भी करेगे। वह लड़ाई कैसी होगी? वह वर्ग-सघर्ष नही होगा, नैतिक-सघर्ष होगा। लेकिन मेरे कहने का यह अर्थ नही है कि आप गावो मे जाकर सत्याग्रह शुरू कर दें। वैसा करने से भूदान का काम बिगड जायगा। मेरा विश्वास है, यदि हमने काम किया तो सत्याग्रह करने की जरूरत नही होगी और काम किये बिना सत्याग्रह करने का अधिकार भी नही होता।

कानून की बात भी अक्सर कही जाती है। यह याद रखना चाहिए कि कानून से जीवन-परिवर्त्तन नही होगा, सर्वोदय-समाज नही बनेगा। अच्छा काम करने के लिए कानून की जरूरत नही होती। आदमी कानून से धर्म नही करता। माता बच्चो को कानून से दूध नही पिलाती। लोकमत के बिना कानून पगु रहता है। महात्माजी कहते थे, "हृदय-परिवर्तन के बिना कानून किताब मे ही पडा रह जाता है।" आज बेदखली हो रही है। कानून कहता है कि बेदखली नही होनी चाहिए। उसके बावजूद ऐसा हो रहा है। कानून से अस्पृश्यता उठा दी गई है, फिर भी वह समाज मे है। कितनी उम्र मे लडके-लडकियो का विवाह हो, इसके लिए 'शारदा कानून' बना, पर वह कितना अमल मे आता है वह हम सभी जानते है। यदि विचार नही बदला

और कानून से जमीन बटी भी तो बाबू लोग भूमिहीनो को जमीन नही लेने देंगे।

भूदान-आन्दोलन में तीन तरह के लोग काम कर रहे हैं। नये लोग रचनात्मक कार्यकर्ता और राजनीतिक दल के लोग। राजनीतिक दल के जो लोग इस काम मे आये है, उनमे बहुत से यह सोचते हैं कि हम उस काम मे अपनी पार्टी को कितना मजबूत बनाते हैं। इस तरह काम करने से काम नही होगा। पक्ष तो साधन होता है, साध्य नही। अगर पक्ष का यह उद्देश्य है कि अच्छा समाज बनाया जाय, और वह उद्देश्य पूरा हो रहा हो, तो फिर पक्ष की बात क्यो सोचना चाहिए ? दूसरे लोग भी उस काम मे मदद दे रहे हैं तो खुशी होनी चाहिए। यदि यह मनोवृत्ति नही है तो यह काम छोड देना चाहिए।

विनोबाजी पक्षातीत राज्य-व्यवस्था की बात बता रहे हैं। वे कहते हैं कि विविध दलो के रहने की जरूरत नही है, और सब लोगो को मिल कर काम करना चाहिए। पाश्चात्य देशो की विचार-धारा का, खासकर, समाज-वाद का, कहना है कि समाज में विभिन्न प्रकार के स्वार्थ होते हैं और राज-नीतिक पार्टिया उन स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसलिए क्राति के लिए पार्टियो की जरूरत है, हर गाव में तो हम पार्टियो के आधार पर चुनाव नही चाहते। जो बात गाव के लिए ठीक है, वह देश के लिए भी ठीक है और विनोबाजी हमें यही बता रहे हैं और उसका प्रयोग कर रहे हैं।

इस काम में समय का भी सवाल है। इसे ध्यान में रखना चाहिए। अनन्तकाल तक यह काम नही चलाना है, थोडे समय में ही इसे पूरा करना है। अत कार्यकर्ता भाइयो, आप चेतो। देश में आग लगी है। इसे बुझाना है। नही तो आप जलोगे और देश भी जलेगा। विनोबाजी को देखिये, मौत के दरवाजे से लौटकर चातुर्मास मे भी नही बैठे। पुराने जमाने मे भी चातुर्मास मे सत लोग आराम करते थे।

कार्यकर्ताओ को सिर्फ पद की ओर ध्यान नही लगाना चाहिए। पद तो साधन-मात्र है। कार्यकर्ताओ को उद्देश्य के लिए जमकर काम

करना है, नही तो आप कार्यकर्त्ता किस वात के ? सब जानते हैं कि धर्म दो प्रकार के होते हैं—नित्य और नैमित्तिक । भूदान आज का नैमित्तिक धर्म है । इसलिए विनोवाजी कहते है कि इस नैमित्तिक धर्म में सबको लग जाना चाहिए । यहा तक कि रचनात्मक कार्यकर्त्ताओ को भी उन्होने कहा कि अपने काम को सक्षेप करके वे इसमें लग जाय । हम सभी लोगो को यह अच्छी तरह समझ लेना है कि यदि यह काम नही चला तो सब डूब जायगा ।

भूमिहीनो को देने के लिए ३२ लाख एकड अच्छी जमीन विहार में प्राप्त करना है । इस प्रसग मे यह भी याद रखना चाहिए कि एक ही आदमी नौकरी, व्यवसाय या वकालत भी करे और जमीन भी रखे, यह नही चल सकता । विनोवाजी जव इस काम के वारे मे सोचते है, तो गभीर हो जाते है । उन्होने कहा कि हमे ऐसा कदम उठाना होगा कि हम तो हसते रहेगे और आप रोयेगे । इसका क्या अर्थ ? वे शायद अपने वलिदान की वात सोच रहे हैं । कार्यकर्त्ताओ को इन सारी वातो पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए । इस काम को फुरसत से करने की वात तो मन मे आने ही नही देना चाहिए । विचार समझने के लिए स्वाध्याय करना चाहिए और इसके लिए गाधी साहित्य, विनोवा-साहित्य, गीता-प्रवचन, 'सर्वोदय' मासिक, 'भूदान-यज्ञ' साप्ताहिक आदि पढना चाहिए ।

: १० :

आध्यात्मिक क्रांति का कार्य

[जे वी कृपालानी]

अवतक लगता था, वापू के जाने के वाद उनसे जितना सीखा है, वह सव भूल चुके । परन्तु भूदान का काम देखकर लगता है कि महात्मा की आत्मा हमारे वीच विनोवाजी के द्वारा काम कर रही है और गाधीजी का काम चल रहा है, वन्द नहीं हुआ है । उनका काम केवल परदेसी राज को

ही हटाना तो नही था। हम जो राजनीतिज्ञ हैं, वे उसी को क्रान्ति समझते थे। परन्तु उनके सामने तो क्रान्ति का यह एक अव्वल कदम था। वे स्वराज्य की ताकत से गरीबी का सवाल हल करना चाहते थे। वे कहते थे कि गरीब होना ही पाप है। जो जोर-जबर्दस्ती से किसी को गरीब करता है, वह पापी है। परमेश्वर के नाम पर अगर हम गरीबी को अपनाये, तो वह धर्म होगा। गरीबी अच्छी है, पर किसकी ? जिसमे ताकत ही नही है, उसकी गरीबी अच्छी नही है। गरीबी उनके वास्ते अच्छी है, जिनके पास खाने-पीने को है, फिर भी वे अपने को गरीबो के साथ मिला लेते है एव अपने पास जो कुछ है, उसे दूसरे को दे देते है। उसीकी गरीबी धर्म है । पर जो गरीबी ठूसी जाती है, उसमे पाप है। उसमे दूसरे को गरीब बनानेवाला भी पापी है और उसको बरदाश्त करनेवाला भी पापी है। जब हम बरदाश्त करते है, तो जालिम को दबाव डालने का मौका मिलता है। अगर हम अपने को रुई का तकिया बना लें, तो जो चाहे उसे लात मारेगा। लेकिन गाधीजी कहते थे कि अपना शरीर ऐसा सशक्त बनाओ कि जो लात मारे, उसी का पैर टूटे। अगर हम जुल्म बरदाश्त करते है, तो समाज के प्रति अन्याय करते है।

चरखे के बारे में कहा जाता था कि वह अर्थशास्त्र के बरखिलाफ है। वे लोग यह तो नही देखते थे कि यह चीज इसानियत के बरखिलाफ जाती है या नही। बल्कि अर्थशास्त्र के बरखिलाफ क्या है, इसे वे देखते थे। लेकिन अर्थशास्त्र बनाया किसने ? गीता ने कहा है कि जो एक अग को लेकर उसका सारा शास्त्र बना देते है वे तामसी होते है। पैसा जिंदगी का एक टुकडा है। उसीको लेकर सारा जीवन बनाना ज्ञान नही है अज्ञान है। वह तामस ज्ञान है। हमारी जिन्दगी तो एक है सपूर्ण है, अलग-अलग नही है। पैसा कमाना और चीजे बनाना उसका एक अग है। लेकिन उसके पचासो दूसरे अग भी है। हम अपने माता-पिता से, भाई-बहनो से कैसे बरताव करें, यह भी उसका एक अग है। अर्थशास्त्र का कायदा है कि सस्ते-से-सस्ता

खरीदो और महगे-से-महगा बेचो। लेकिन अक्सर ऐसा नही होता। आप तरकारी लेने जाते हैं, तो हमेशा यह नही सोचते कि कहा पर तरकारी सस्ती मिलती है। बल्कि आप रोज जहा लेने जाते है, वही चलने लगते है। अकाल मे भी यही खयाल नही करते कि कैसे अधिक-से-अधिक पैसा मिले। दुनिया मे आदमी को केवल पैसा बचाने का खयाल नही होता, दूसरे भी खयाल होते है। धर्म-नीति, भाई-बदी और समाज का भी खयाल होता है। गाय का मास सस्ते-से-सस्ता मिलने पर भी क्या कोई हिन्दू उसे खायगा? और सुअर का मास सस्ते-से-सस्ता मिलने पर भी क्या कोई मुसलमान उसे खायगा? नही, क्योकि दूसरी भी चीजे वह सोचता है। लेकिन ये लोग समझते है कि अर्थशास्त्र माने ही मनुष्य का सारा जीवन। वैसे ही ये राजनीतिज्ञ भी सोचते है कि राजनीति ही मनुष्य का सारा जीवन है। इसी तरह शरीर-शास्त्रज्ञ और मनोवैज्ञानिक भी सोचा करते है। ये सब एक-एक टुकडे को अलग-अलग लेकर फिर उन्हे सारे इसान की सपूर्णता (टोटैलिटी) को लगाना चाहते है। यह सारा तामसिक ज्ञान है और इसी ज्ञान से महात्मा ने हमे बचाया था।

जिंदगी के पचासो पहलू होते हैं। उनको इकट्ठा कैसे करना, इसीकी रीति को धर्म-नीति या स्पिरिचुअलिटी (आध्यात्मिकता) कहा जाता है। सबसे ऊपर नीति है। अनीति मे फायदा होता है, तो भी वह 'अन-इकानामिक', अनार्थिक है, क्योकि उससे आपको और ससार को नुकसान पहुचता है।

जो पढे-लिखे आदमी होते है, उनका एक अजीब तरीका होता है। साधारण आदमी तो कोई बात जल्द समझ लेता है, पर इनको विद्वत्ता-भरी दलीले चाहिए। बच्चा भी समझता है कि दो और दो मिल कर चार होते है। पर पडित को यही बात समझाने के लिए पचास पन्ने लिखने पडेगे। जो स्पष्ट दीखता है, वही पडित को समझाने के लिए दलीलो से साबित करना पडता है। उसके लिए तो 'इन्टलेक्चुअल जिम्नेस्टिक,' बौद्धिक कसरत चाहिए। भाषा के भी दो-तीन अर्थ होते है। जैसे विनोबाजी ने कहा कि कुछ लोग उनसे कहते है कि तुम भय दिखाकर जमीन लेते हो। पर एक भय

वह है, जिससे लाभ ही होता है और एक भय वह है, जिससे नुकसान होता है। बुराई का फल बुरा होता है, ऐसा कहने मे कौनसा भय और कौनसा डर दिखाया गया ? चोर का डर दूसरा होता है। लेकिन जिस शब्द के दो माने होते हैं, उसका सदर्भ भी न लगा कर कह देते हैं कि तुम भी भय दिखा रहे हो। मैं कहता हू कि आप आखो से देखो तो नही कि विनोबा कैसे सहज आता है, सहज जाता है और कैसे दान मागता है ? लेकिन यह तो नही देखते और कहते हैं कि विनोबा भय दिखा रहा है। उनकी सारी जिन्दगी तो भय म ही जाती है, परन्तु कहते है, विनोबा भय दिखाते हैं। वैसे ही शर्म भी दो प्रकार की है। बेशरमो को शरम भी जरूरी हो जाती है।

हवा और पानी का जैसे कोई दाम नही है, वैसे ही जमीन का भी कोई दाम नही होना चाहिए। पुराने जमाने मे जमीन पर किसी की मालकियत नही थी और जमीन गाव की होती थी, व्यक्ति की नही। गाव की पचायत टुकडे करके किसानो को पाच-सात बरस के लिए खेती करने के लिए जमीन दे देती थी और फिर वापस लेकर फिर से वह बाटती थी। यह पुराना रिवाज था। परन्तु बाद मे आदमी ने जमीन घेर ली। यह जमीदारी भी अग्रेजो के जमाने में बढी है, और किसपर किसकी मालकियत है, यह प्रश्न भी उसी समय से उपस्थित हुआ है। अग्रेज भी यह फैसला नही कर सके कि जमीन किसकी है, सरकार की है या किसान की है या जमीदार की ? जमीन तो किसी की भी नही थी, इसलिए किसको कितना भाग दे, यही तय किया गया। जमीन के बारे में पहली बार अग्रेजो ने कानून बनाया। इसके पहले कोई भी कानून नही था। जब हम पहले बिहार में रहते थे, तो हमारे घर के आगन में से इधर-से-उधर लोग आते-जाते थे। उस समय हमको लगता था कि इग्लैण्ड मे ऐसा होता, तो उनपर केस हो सकता था। लेकिन यहा तो लोग ऐसे चले जाते है, जैसे हमारा यह घर ही नही हो। लेकिन फिर हमारी समझ में आया कि यहा पर कोई 'रिजिड रूल' (कडा कानून) नही है, सब इलेस्टिक (लचीला) है। किसकी मालकियत है, इसमे लोग नही पडते थे, बल्कि किसका क्या फर्ज है, यही देखते थे।

यह काम क्रान्तिकारी है। राजनीतिक मानी मे नही। सबसे छोटी क्राति होती है, राजनीतिक और आर्थिक, और मबसे भारी क्राति है स्पिरिच्युअल, आध्यात्मिक क्राति। लोग इस बात को नही समझते कि पहले मूल्य (वैल्यूज़) परिवर्तन होते है। क्या सही है, क्या गलत है, यह तय होता है, तब क्राति आती है। विराट् स्वरूप मे पहले मूल्य बदलते है, बाद मे राजनीतिक और आर्थिक क्राति आती है। यह आध्यात्मिक क्राति है। इसलिए यह "ड्रेड्फुल पोलिटिकल और इकानामिक रेवोल्यशन" है। फ्रेच-क्रान्ति के पहले विचारको— तत्त्वज्ञो ने समझाया था कि "मैन इज़ बार्न फ्री एण्ड इक्वल," (मनुष्य आज़ाद और बराबरी के नाते से पैदा होता है।) तब बाद मे क्राति हुई।

विनोबाजी तो धार्मिक दृष्टि रख करके सबको समता का अर्थ बता रहे है, लेकिन यह धार्मिक दृष्टि न रखी जाय तो भी बात तो वही होगी।

प्रश्न यह है कि सारी सपत्ति बनी कैसे ? कोई एक व्यक्ति किसी टापू मे बैठकर सपत्ति नही बना सकता। सपत्ति तो समाज बनाता है। समाज को छोड दे और व्यक्ति से कहे कि सपत्ति बनाओ, तो वह बना नही सकता। मै अकेला हू। मेरे पास साधन भी है। मै सपत्ति बनाना चाहता हू। समझिये कि मै मिल बनाना चाहता हू। पर वह कैसे बनेगी ? धरती से धातु निकालनी होगी। वह क्या अकेले निकाली जा सकती है ? फिर यत्र बनाने होगे। वे भी अकेले नही बनाये जा सकेगे। हमे रूई की जरूरत पडेगी, तो वह कहा से आयगी ? मान लीजिए, हमने कपडा भी बना लिया। पर अगर रेल और रास्ते नही है तो कपडे कहा और कैसे पहुचायगे ? अगर देश मे शान्ति नही है, तो रेल और रास्ते होने के बावजूद भी नही पहुचाये जा सकेगे। जब सब चीजे होती है तभी सपत्ति पैदा होती है। विनोबा के शब्दो मे कुछ देवता हमारे पास होते है, उनके साथ काम करने से हम धन बना सकते है।

पर्जा, खाना, कपडा, दवाई, पढाई ये सारी बाते समाज ही करता है। समाज के इस काम का फायदा अगर कोई व्यक्ति उठाये तो वह चोरी

होगी। आखिर चोरी क्या है ? किसी चीज का हम दाम देते है तो वह चोरी नही होती। दाम न देने को चोरी कहते है। जो समाज का बनाया हुआ है, उसे अगर हम अपना माने तो वह चोरी होगी। लेकिन आज जो प्रथा चल रही है, उससे यह किसी को मालूम नही हो रहा है। मै जब कभी विहार मे जाता हू, तब भोजन परोसते समय देखता हू कि भात, दही, तरकारी, घी सब एक ही हाथ से निकाल कर परोसते है । उन्हे खयाल नही रहता कि यह स्वच्छता के खिलाफ है, क्योकि जिस समाज मे वे रहते है, उसमे वैसी प्रथा चल पडी है।

क्रांति किसे कहते है ? क्रांति यानी हमारी जो आदते है, जिन्हें हम देख रहे है, जो चुभती नही है, उन्हे नई निगाह से देखे। जो क्रांतिकारी होता है, वह हर चीज को नई निगाह से देखता है।

हमने एक बार क्रांति की। स्वराज्य प्राप्त किया। पर हर चीज को नई निगाह से देखने और खोजने का काम क्रांति करनेवाले करते है। ज्यादा लोग तो एक बार क्रांति करके सो जानेवाले होते है।

तो, विनोबाजी का कहना ही ठीक है। वे देश मे जो क्रांति करना चाहते है वह शुरु होती है जमीन से। इसका अर्थ यह नही कि वह जमीन से ही खत्म हो जाती है। अगर जमीन से खत्म होती है, तो वह क्रांति ही जमीन के साथ खत्म हो जाती है।

मान लीजिये, कि सबको पाच-पाच एकड जमीन मिल जाय और वही हमारा काम खत्म हो जाय, पर हमारी सरकार ऐसी हो सकती है जो गरीब का बोझ बढाती जाय और सरकार का टैक्स देने मे वह जमीन नाकाफी हो जाय और पाच-दस साल मे जमीन गिरवी (रेहन) रखनी पड सकती है। भले ही कानून उसके खिलाफ हो, किसी-न-किसी प्रकार ऐसा होगा। पाच एकड जमीन है, पर बच्चो की पढाई नही होती, तो वे बेवकूफ रहेगे और वह पाच एकड वे खत्म कर देगे। या उस पाच एकड जमीन को रखने के लिए पचासो बातें करनी होगी। इसलिए सबको केवल जमीन दिला देना ही क्रांति नही है। इसके साथ विनोबाजी ने जो बाते बतलाई

वे सब करनी होगी । ग्राम-ग्राम मे हमारी योजना होगी और गाम वाले खुद योजना बनायगे । अगर योजना मे गलती हो, तो वह उन्हे ही भुगतनी पडेगी । इसलिए हर चीज को नई नजर से देखना होगा । इनमे महात्मा गाधी का सारा प्रोग्राम आता है ।

अगर आप मिल का कपडा पहनते है तो वह कहा से आता है ? कानपुर से, अहमदाबाद से या दिल्ली से आता है । आपने मिल का कपडा पहना यानी क्या किया ? पाच एकड मे जो फसल आई उसका एक हिस्सा आपने शहर मे भेज दिया, जहा बहुत सपत्ति पडी है । इसमे स्वदेशी का पालन नही होगा । स्वदेशी का अर्थ यह नही कि सपत्ति विदेश में ही न जाय, बल्कि यह भी है कि शहर मे भी न जाय ।

इसमे कोई शक नही कि नया समाज पैदा करने का प्रयोग हो रहा है । यह सब हो रहा है, इसलिए मुझ जैसा आदमी और जयप्रकाशजी इसमे दिलचस्पी ले रहे है । इसके साथ-साथ दूसरे सब काम देहात के सब लोग मिलकर करदे तो जल्द-से-जल्द काम हो सकता है । कोई माने या न माने, जमाने का एक धर्म होता है । उस धर्म से कोई बच नही सकता । आज के जमाने का धर्म यह है कि यह न माना जाय कि अमुक ऊची जाति का है इसलिए उसका मान अधिक हो और उसका वेतन अधिक हो । अमुक नीची जाति का है, इसलिए उसका तिरस्कार हो और उसे वेतन कम दिया जाय । धनिक और गरीब का भेद अब चलनेवाला नही है । औरतो को परदे मे रखना अब नही चल सकता । अगर आप बच्चो को मार-मार कर सिखाना चाहे तो वे सीखेगे नही, बल्कि जिद्दी हो जायगे, क्योकि इस जमाने का धर्म दूसरा है । हम तो मार खा-खा कर पढे, पर आज वैसा नही हो सकता । जमाने की माग के मुताबिक जो काम किया जाता है, वही फलीभूत होता है ।

बिहार मे दो-दो बीघा जमीन के वास्ते आपस मे भाई-भाई झगडते थे और गला काटते थे । बिहार मे दो कट्ठा जमीन नही मिलती थी, जान मिलती थी । जमीन का मोह यहा सबसे ज्यादा था । पर आज उसी बिहार

में जमीन मिल रही है। लोग जमीन देते है, क्योकि यह जमाने की माग है। इसी जमाने की माग को लेकर विनोबाजी आपके पास आये है। वे प्रेम से जमीन मागते है। यह काम, कोई शक नही कि सरकार नही कर सकती। सरकार इतनी जबरदस्त क्राति नही कर सकती। हा, सरकार को इससे लाभ जरूर मिल सकता है।

विनोबा को तो सब तरफ परमेश्वर दिखता है, पर हमें तो अपने में भी परमेश्वर का दर्शन नही होता। हम परमेश्वर का नाम क्या ले? परमेश्वर का नाम तो वही ले सकता है, जो परमेश्वरमय हो गया हो।

महात्माजी कहते थे, जो सही राजनीति है और जो सही अर्थशास्त्र है वही सही धर्म है। लेकिन मैं उस जबान से आपके साथ बात नही कर सकता। मैं अर्थशास्त्र की दृष्टि से ही सोचता हू।

जब जग होते है, तभी राष्ट्र पर आफत आती है, ऐसी बात नही है। मनुष्य यह नही समझता कि हर रोज आफत आती है, अगर देश गरीब है। बच्चो की पढाई नही होती, बच्चे बीमार पडे है, तो उन्हें दवा नही मिलती यह सारे सकट निरन्तर आते रहते है। पर निरतर सकट आने के कारण हमें वे महसूस नही होते। उन सकटो को दूर हमें करना है और इसलिए जरूरी है कि भूदान-यज्ञ को जल्द-से-जल्द सफल बनावे।

: ११ :

विश्व-शक्ति का आवाहन

[शकरराव देव]

भूमिदान सब दानो में श्रेष्ठ है। वह लोगो में धार्मिकता का विकास करता है। भूदान-यज्ञ का सदेश जन-मन के लिए एक गम्भीर एव जागतिक अपील है, इसमे कोई शक नही है।

हमारी सास्कृतिक परम्परा के अनुसार प्रेम का वातावरण ही हमारे

लिए आर्थिक समता का अनुकूल मार्ग है। पाश्चात्य सभ्यता मे जकडे जाने पर भी हमारे हृदयो मे सत्य, अहिसा, दया आदि का गहरा प्रभाव है। लोग विना सोचे-समझे कह देते है कि महात्मा गाधी का जन्म आकस्मिक था तथा स्वतन्त्रता तो जागतिक परिस्थिति से ही मिली है। लेकिन भूदान-यज्ञ सिद्ध करता है कि हममे अहिंसात्मक क्राति के बीज पडे है और आवाहन से वे प्रकट होते है। विहार के चन्द राजाओ ने विना काश्त की सारी जमीन व काश्त का $\frac{1}{6}$ भाग सहर्ष विनोवा के चरणो मे सौंप दिया। यह मिसाल क्या दर्शाती है ? क्या हमारे भीतर अहिंसा की प्रेरणा नही है ?

जो विश्व-शक्ति (उसे आप कुछ भी समझें) भूदान-यज्ञ के द्वारा भारत में कार्य कर रही है, वह मानव के लिए अहिसा का आदर्श पेश करना चाहती है। यह मान लेने पर सव वाते आप-ही-आप समझ मे आ जाती है।

और विश्व-शक्ति जड नही, प्रगतिशील है। साम्यवादियो की समझ में यह वात आ जानी चाहिए। सौ वर्ष पहले मार्क्स ने जो कुछ कहा था, वह आज भी मानना ही चाहिए, यह आग्रह बुद्धिमानी का नही है।

सभी चाहते है कि कार्य द्रुत गति से हो। जयप्रकाशजी व नेहरूजी भी इसमे एकमत है। सभी कानून वनाने पर जोर देते है। लेकिन जो अच्छा कार्य समय पर नही होता, वह बेकार हो जाता है। (Justice delayed is justice denied)। आचार्य कृपालानी कहते है कि यह सक्राति-काल है। ऐसा होते हुए भी जन-तन्त्र समय पर कार्य करने से दूर ही रहे है। जवाहरलालजी तो कहते थे कि जन-तत्र मे द्रुत गति से क्राति होनी चाहिए। लेकिन वह नही होती, तो फिर क्या यह स्वय जन-तत्र को ही चुनौती नही है ? इसीलिए तो विश्व के तिहाई भाग ने इसे तोड डाला है, क्योकि आज के जनतत्र इसके अनुसार काम नही कर रहे है।

अतएव यह कहना कि कानून धीरे-धीरे बनेगा, उचित नही। दुनिया लाल होगी या श्वेत, सब कुछ भारत पर ही निर्भर है। महान् सम्राट् अशोक के धर्म-चक्र को झडे मे प्रतीक बनाकर हमने साम्यवादियो की हिंसा-शक्ति की चुनौती स्वीकार की है। यह भारत की परम्परा का ही कारण है कि उसने

यह चुनौती स्वीकार की, जब कि इंग्लैंड व अमरीका सदृश राष्ट्रों की भी शक्ति नहीं कि इस चुनौती का सामना कर सके।

कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि "देख जिनके लिए तू इतना मोह कर रहा है वे तो विकराल काल की दाढ़ों में पहले ही चले जा रहे हैं। तू तो निमित्त मात्र है।' इसी प्रकार हम भी कहते हैं कि भूमि तो समाज की होने ही वाली है। फिर आज जो विश्व-शक्ति के व्यापार में एक सौ एकड़ में से पांच डेसीमल भूमि देते हैं, उनके लिए क्या कहा जाय ? ईसा ने कहा है, "हे पिता, ये नहीं जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं।" हम और क्या कह सकते हैं—सिवा इसके कि ये लोग अज्ञानी हैं, ये नहीं जानते हैं कि क्या हो रहा है ? हमें इनपर क्रोध नहीं है, दुख होता है।

कार्यकर्ता भी अपने हृदय से पूछें कि वे कितना कार्य कर रहे हैं ? अबतक आपने भूमि प्राप्त करने में कितनी प्रगति की ? आप यदि अपने आपसे पूछेंगे तो आपको पता चल जायगा कि आपने गंभीरतापूर्वक कार्य नहीं किया। क्या इस प्रकार हम विश्व-शक्ति का अपमान नहीं कर रहे हैं ?

यदि हम बारह हजार एकड़ का हिसाब मिलाने में ही संतोष मान लें तो काम होनेवाला नहीं है। कर्म का इतना महत्व नहीं, जितना उसके पीछे जो बुद्धि है, उसका है। दल वाले संकल्प करते हैं, किन्तु व्यक्तिगत रूप से संकल्प नहीं करते। इसका अर्थ है, दिमाग तो कहता है, किन्तु दिल राजी नहीं है। कार्यकर्ताओं को प्रथम अपना भाग अदा करके अपनी शक्ति के अनुसार संकल्प करना चाहिए, तथा श्रद्धा-पूर्वक सिद्धि के लिए प्रयत्न करना चाहिए, तब ही काम बढ़ेगा। विनोबा कैसे काम ले रहे हैं ? अबतक उन्होंने बिहार के पलामू जिले का कोटा पूरा करने को कहा था। कोटा पूरा हो गया। लोग समझने लगे चलो काम खत्म हो गया। लेकिन विनोबा अब कहते हैं, मुझे ४०,००० दान-दाता दो। तो इस प्रकार 'निमित्त' संकल्प करके वे कार्य को आगे बढ़ा रहे हैं। सैनिक बनना है, तो संकल्प करके सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए।

ससार मे अबतक जितनी भी क्रातिया हुई, सब भौतिक (फिजीकल) हुई जैसा कि अमरीकावाले भी मानते है। उनका जामा तो बदला, लेकिन शरीर नही बदला। फिर आत्मा की बात तो दूर रही। पर भूदान-यज्ञ एक आध्यात्मिक क्राति है। शरीर व आत्मा ही बदल जाय, ऐसी इसकी योजना और शक्ति है। विश्व-शक्ति का यह आवाहन है। यह राजनीति ही है।

पाश्चात्य विचारो की ओर झुके हुए लोग कल्याणकारी राज्य को अपना ध्येय मान कर ही सतोप कर लेते है, लेकिन हम तो सर्वोदय-समाज मे विश्वास करनेवाले है। हम पूरे जीवन की उन्नति नैतिक व आध्यात्मिक बल से ही कर सकेंगे और उसकी प्रगति भारत मे ही सभव है, क्योकि यह उसकी परम्परा है।

सुख का अर्थ इन्द्रिय-सुख नही, आत्म-सुख है। इसको भूल जाने से ही ससार मे सुख घटता जाता है, दुख एव सघर्ष बढता जाता है, क्योकि मनुष्य शरीर-सुख के लिए भौतिक सामान पाने को सघर्ष करेगा। इससे स्नेह घटता व द्वेप बढता जाता है। मनुष्य का सच्चा विकास नैतिक व आत्मिक विकास ही है।

यह सुख कैसे प्राप्त किया जाय ? यह तब ही सभव है, जबकि हम श्रम करे। किन्तु श्रम से पैदा हुए धन पर श्रमिक का ही अधिकार हो। अतएव आवश्यक है कि खानगी मालिकी समाप्त हो, जिससे कि दीन और धनी का भेद दूर हो जाय। गाधीजी के कथनानुसार अन्न-वस्त्र के उत्पादन के साधनो पर श्रमिको की ही मालिकी होनी चाहिए। शहरो को यह हक नही है कि वे गाव की जमीन के मालिक बने रहे। यह जीवन का विरोधाभास है। यह जनतत्र मे चल नही सकता। हम इसे अनुचित, अन्याय, पाप व जुल्म समझ कर छोड दे। अब यह सहन नही किया जा सकता।

सर्वोदय के अन्तर्गत तो सबके पेशो का मूल्य समान होना चाहिए, जिससे रहन-सहन का स्तर करीब-करीब समान हो। श्रमजीवियो को कम व बुद्धिजीवियो को अधिक मजदूरी, यह अब सहन नही किया जा सकता। देश और समाज मे शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा अब होनी ही चाहिए। जमीन

पर जोतनेवालो का हक सब पेशो का समान मूल्य और शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा, यदि ये तीन आधारभूत बाते हम मान लेते है तो फिर उत्पादन के साधनो पर लोगो को मालिकी बनाये रखने की इच्छा नही होगी।

: १२ :

भूदान की पृष्ठभूमि

[धीरेंद्र मजूमदार]

भूदान एक क्रातिकारी कार्यक्रम है। दुनिया के दूसरे क्रातिकारी कार्यक्रम किताबो मे ही रहते है, क्योकि क्रातिकारी पुरुष किताब के बाहर की बात करता है पर गाधीजी ने तो युग-क्राति के लिए ही जन्म लिया था। जब उन्होने स्वावलम्बी समाज की बात कही तो पढे-लिखे लोग समझ ही नही पाते थे क्योकि ज्योतिषी, कृषि और अर्थशास्त्री सभी इसे किताबो मे ढूढना चाहते थे। लेकिन वह किताबो मे कहा मिलती! कुछ समय बाद जो बाते गाधीजी कहा करते थे वे धीरे-धीरे सही होने लगी, तो लोगो का ध्यान आकर्षित हुआ और कुछ लोग भक्त भी बनने लगे। लेकिन चूकि उनकी सारी जीवन-दृष्टि किताबो से प्रभावित रही है, इसलिए बीच-बीच मे गाधीजी की बात किताबो पर से घटित करने की कोशिश करते थे। उनकी इस कोशिश का एक कारण और भी था कि वे जिस पढे-लिखे समाज से आये थे, वह समाज अलग मानता था, उन्हे अच्छी नजर से नही देखता था। उन लोगो को उनकी किताबी भाषा में समझाने के लिए जरूरी था कि उनकी भाषा में ही गाधीजी की चीज रखी जाय। अन्त में उन्होने स्वावलम्बन को विकेन्द्रीकरण का नाम दे दिया। सचमुच जिसे गाधीजी स्वावलम्बन कहा करते थे, वह केवल विकेन्द्रीकरण नही, लेकिन 'हेनरी फोर्ड' जैसे विद्वानो ने विकेन्द्रीकरण किताबो मे दिया है। इसलिए उस किताबी भाषा में पढे-लिखे लोगो को वही सूझा।

ठीक इसी प्रकार भूदान-यज्ञ के प्रवर्त्तक की दृष्टि क्या है, उसे भी

किताबी भाषा मे ढूढने की कोशिश चली । शुरू मे लोगो को भूदान-यज्ञ पर विश्वास भी नही था । लेकिन जब लाखो एकड जमीन मिलने लगी तो पढे-लिखे लोगो की दृष्टि उधर जाना स्वाभाविक था । उन्होने आज कल भूदान-यज्ञ का रूप भूमि का पुन -विभाजन सोच डाला । लेकिन पुनर्विभाजन और भूमिदान दोनो मे महान अन्तर है ।

विकेन्द्रीकरण राज्य की ओर से होने पर भी वर्ग-तानाशाही चल सकती है । स्वावलम्बन होने पर तो लोकशाही ही कायम होगी । इसके उदाहरण जापान और चीन हमारे सामने है । आज हमारी सरकार सीलिग की बात करती है, जापान मे तो तीन एकड तक भूमि विभाजित हो गई है । लेकिन क्या वहा लोकशाही है ? इसी प्रकार चीन मे भी भूमि-वितरण हुआ है । किन्तु वहा भी दलपति-शाही ही चल रही है, जिस तरह विकेन्द्रीकरण होने पर भी ग्रामोद्योग और खादी स्वावलम्बन की होगी, ऐसा सर्वथा जरूरी नही । उसी प्रकार भूमि का पुनर्विभाजन सर्वोदय समाज-रचना का रूप लायगा ही, यह कहा नही जा सकता । इसलिए जरूरी यह है कि ये जितने आदोलन है, वे साधन रूप है और उनका साध्य है जनतात्रिक समाज-रचना, यह बात आप समझे । चूकि हम स्वावलम्बन अथवा भूदान-यज्ञ सर्वोदय समाज-रचना के लिए क्रातिकारी कार्यक्रम मानते है इसलिए सर्वोदय समाज-रचना की रूपरेखा क्या होगी, यह समझना जरूरी है ।

आजकल क्राति शब्द का बहुत अधिक प्रयोग होने लगा है । क्राति का अर्थ क्या है, इसमें भी काफी भ्रम है । अक्सर सघर्ष को ही क्राति मान लेते है, लेकिन क्राति का अर्थ है चीजो की धारणा, पद्धति और मूल्याकन तथा ढाचे मे परिवर्तन करना । इसके लिए हम उदाहरण ले । मान लीजिए गाव के जीवन मे बहुत-से खून-खराबे हुआ करते है । क्या उन्हे हम क्राति कहेगे ? अथवा एक जमीदार को हटाकर दूसरे जमीदार को लगा देने में क्राति हो जाती है । वह तो केवल आदमी बदलता है । एक इतिहास का भी उदाहरण लीजिए । फ्रास की राज्य-क्राति के बारे मे तो आपने पढा

ही है। वहा जनता ने राजा को मार कर पार्लियामेंटरी शासन कायम किया। अब आप कह सकते है कि वहा एक बडा परिवर्तन हुआ, क्या वहा की राज्य-पद्धति, उसूल, सगठन और राजनैतिक सचालन मे कोई परिवर्तन हुआ ? आप कह सकते है कि राजा के स्थान पर प्रतिनिधियो के आने से राज्य का भार कम हो गया, लेकिन थोडी गहराई से सोचेंगे तो आपको मालूम होगा कि पहले जितनी जनता राज-आश्रित रहती थी उससे अधिक आज आश्रित हो गई है। क्योकि राजा की सृष्टि ही किसलिए हुई यह भी समझने की चीज है।

जब राजा नही था तो लोग अपनी व्यवस्था स्वय चलाते थे और जन-शक्ति पर सारा कार्य चलता था। जब जनगण ने अपना आत्म-विश्वास खो दिया अर्थात् जनशक्ति पर से भरोसा उठ गया तो राज-शक्ति की शरण ली गई। प्रजा ने अपना अधिकार राजा के हाथ मे सौप दिया। यह दड-शक्ति धीरे-धीरे जितनी ही केन्द्रित होती गई, जनता उसकी वज्रमुष्टि में बधती गई। आखिर उससे ऊबकर राजा को हटाने की कोशिश चलने लगी और आज प्रजा-प्रतिनिधियो द्वारा सर्वत्र शासन चलाने पर जोर दिया जाने लगा और उसीको हम स्वतत्रता कहने लगे। किन्तु इस प्रकार के प्रजातत्र में जनता के जीवन पर दडशक्ति का अधिक-से-अधिक कब्जा होता गया। यहा तक कि छोटी-से-छोटी चीजो के लिए भी दडशक्ति पर निर्भर रहना पडता है। याने चाहते थे स्वतत्रता और हुआ कुछ उल्टा। तब फिर सही स्वतत्रता क्या होगी, इसका स्पष्टीकरण होना चाहिए।

हम लोगो ने अग्रेजो से जो लडाई लडी थी, वह आजादी के लिए। लेकिन वह आजादी केवल राजनैतिक नही, बल्कि राजनैतिक और आर्थिक दोनो तरह की थी। इसलिए गाधीजी ने इन दोनो प्रकार के ढाचे को बदलने की बात कही थी। अर्थात् दडशक्ति के मूल में जो शासन और शोषण होता है, उसका वे अन्त करना चाहते थे। और इसके लिए दोनो दिशाओ मे अहिंसात्मक क्राति करना चाहते थे।

आर्थिक क्षेत्र मे उत्पादन के दो मुख्य अग पूजी और श्रम है। 'जेम्स वाट'

ने स्टीम इंजन चला कर एक बहुत बड़ी क्रांति की। जहा जीवन के आर्थिक उत्पादन का तरीका श्रम पर निर्भर था वहा क्राति हुई। किन्तु इस दिशा मे हम धीरे-धीरे यहा तक बढते जाय कि सारा जीवन आर्थिक पूंजी पर ही निर्भर हो जाय तो पतन होना निश्चित है। इसी प्रकार रूस ने भी कुछ दूसरा तरीका निकाला। उन्होने उद्योगो का केन्द्रीकरण किया और सारी सचालन-शक्ति एक मुट्ठी मे कर ली। लेकिन इस तरीके को क्राति नही कहा जा सकता। इसे तो कोरा सघर्ष कहा जा सकता है। गाधीजी जो क्राति करना चाहते थे, उसका उद्देश्य अहिंसक समाज कायम करना था। अहिंसा शब्द खुद हिंसा का प्रतिरोधी है। और हिंसा तो स्वय लक्षण मात्र है। उसका मूल रोग शोषण है। जो लोग बडी-बडी अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो की चर्चा मे हिंसा के उपचार की बात करते है, वे पेट के मरीज को सर दर्द की मालिश मात्र करके अच्छा करना चाहते है। इसलिए जो हिसा बन्द करना चाहते है उन्हे शोषण बन्द करने का उपचार करना चाहिए। प्रश्न यह है कि हिंसा कैसे होती है? यदि शोषण की क्रिया मे रुकावट होती है अथवा रुकावट होने का डर होता है तो हिंसा प्रकट हो जाती है। इसलिए जरूरी हुआ कि हिंसा रोकने के लिए शोषण रोका जाय और वह तभी हो सकता है जब शोषणहीन समाज कायम किया जाय। मैने ऊपर कहा है कि दडशक्ति से शारीरिक और मानसिक शोषण होता है। इसलिए दड का अस्तित्व मिट जाने पर ही अहिंसक समाज-रचना की कल्पना हो सकती है। इस प्रकार का समाज जिसमे पूर्ण दडशक्ति समाप्त हो जाय और जनशक्ति पर ही समाज कायम हो, बहुत दूर का आदर्श है।

आदर्श तो अन्तिम स्थिति होती है। कोशिश यह होनी चाहिए कि धीरे-धीरे दडशक्ति कम होती जाय और जनशक्ति का विकास होता जाय। कुछ लोग पूछते है कि इस प्रकार का अहिंसक समाज क्या हो सकता है। इस सम्बन्ध मे गाधीजी का कहना था कि आदर्श रेखागणित का बिन्दु मात्र है। वह तो काल्पनिक है। लेकिन वह इतना यथार्थ भी है कि छोटा नही जा सकता है। क्योकि रेखागणित की बिन्दु और बिन्दु मे बनी

रेखा के अतिरिक्त कोई स्थिति नही है। इसलिए दड-निरपेक्ष समाज कायम करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। आज हमारे यहा दण्ड-सापेक्ष समाज आधारित है जिसका हमने ऊपर जिक्र किया है कि राजा के समय से आज जनता अधिक आश्रित रहती है, क्योकि राजा के समय तो पुरोहित लोक-कल्याण के लिए यज्ञ कराता था और उसमे जनशक्ति का पूर्णरूपेण आवाहन करता था। हमारे यहा ऐसे अनेक उदाहरण है कि यज्ञ-काल मे नवजात शिशु से भी हव्य सामग्री स्पर्श कराकर आहुति दी गई है। और जब इस प्रकार के लोक-कल्याणकारी यज्ञ मे ताडका-जैसी विध्वसकारी शक्ति पैदा होती थी, तभी राजा दशरथ के पास राम को मागा जाता था। अर्थात् दडशक्ति का उपयोग होता था। इसलिए हम कहते है कि आज जो राजनैतिक परिवर्तन हमारे देश मे हुआ है वह क्राति नही है। वह तो सचालन-परिवर्तन है। गाधीजी दड-निरपेक्ष समाज कायम करना चाहते थे।

आज की समाज-व्यवस्था दड पर आधारित है। अर्थात् चारो ओर दड-सापेक्ष राज्य चल रहा है। इस स्थिति में दड-निरपेक्ष समाज की ओर जाने के लिए हमें एक-एक कदम समझ-बूझकर रखना होगा। जिसमें पहला कदम यह होना चाहिए कि जो राज्यसत्ता तानाशाही की ओर बढ रही है, उसकी प्रवृत्ति पर अकुश रखा जाय। कुछ लोग कहते है कि भूदान का काम कानून से क्यो नही करा लेते ? जो लोग ऐसा कहते है उन्हें भूमि-दान के पीछे जो विचारधारा खडी है, उसका दर्शन नही होता। वे यह भूल जाते है कि भूदान-यज्ञ के पीछे दड-निरपेक्ष समाज स्थापित करने की भावना है। तब भूदान में राजसत्ता-कानून, या दड का सहारा कैसे लिया जा सकता है। आज इस प्रकार के सवाल उठने का कुछ कारण भी है, क्योकि सारी दुनिया मे आज कल्याणकारी राज्य का नारा लगाया जाता है। इस-लिए उस ओर आकर्षण आवश्यक है, लेकिन उसके पीछे सर्वाधिकारी राज्य की जो भावना है वह तानाशाही की ओर ले जानेवाली है। हममे से ही कुछ लोग भी तो भूमि पुनर्विभाजन, अनिवार्य सहकारी खेती, और उद्योगो

के राष्ट्रीयकरण की वात कहते है। वे भी जाने-अनजाने मे सर्वाधिकार राज्य-वाद'की ओर ले जाने का रास्ता वताते है। सरकार "माई-बाप" की हवा जो चारो ओर चल रही है उसमे हमारे कार्यकर्ताओ के भी भूल जाने की सम्भावना है। इसलिये हमारी दृष्टि स्पष्ट होनी चाहिए।

ऐसी स्थिति मे सर्वोदय-समाज की रचना करनेवालो का काम आज जो जनतन्त्र के नाम पर राज्यतत्र चल रहा है, उसका मुख्य दोप दूर करना है। गाधीजी से पूछा गया था कि आखिर आपके स्वराज्य की परिभापा क्या होगी और उसके लिए आप चाहते क्या है ? तब गाधीजी ने कहा था कि मै कुछ लोगो द्वारा अधिकार-प्राप्ति को स्वराज्य नही कहता। वल्कि जनता के प्रत्येक व्यक्ति मे अधिकार के दुरुपयोग होने पर विद्रोह करने की शक्ति पैदा हो उसे सही स्वराज्य मानता हू। इसके लिए आज की स्थिति मे जहा चुनाव द्वारा जनतत्र कायम किया जाता है, वहा ताना-शाही की वृत्ति पर रोक लगाना पहला काम होगा।

आज के जनतन्त्र मे मुख्य दो दल होते है। एक सत्ताधारी दल होता है और दूसरा विरोधी दल। हमे राज्य-सत्ताधारी दल की तानाशाही रोकने के लिए एक तीसरी शक्ति पैदा करनी होगी। और वह होगी विद्रोही-शक्ति, जिसे जनता मे निरन्तर कायम रखना होगा। इस तीसरी शक्ति का काम होगा कि जव सत्ताधारी दल अधिकार का दुरुपयोग करने लगे तो उसे रोक दे और कठिन विरोध मे भी इस वृत्ति पर अकुश रखे। बहुधा होता यह है कि जो दल अधिकार मे आता है उसकी दृष्टि हो जाती है अधिकार न छोडने की, इसलिए वह उसका ही दुरुपयोग करने लगता है। जहा जन-तत्र मे राज्यसत्ता अधिकार का दुरुपयोग करने लगती है, वहा लोकशाही समाप्त हो जाती है और तानाशाही बढने लगती है।

इस प्रकार की तानाशाही रोकने के लिए जनशक्ति सगठित करनी होगी अर्थात् इन्द्र के अधिकार-दुरुपयोग करने की स्थिति मे शिव का होना आवश्यक है, जिसे आज की भापा मे तीसरी शक्ति अर्थात जन-नायक के रूप मे कहना चाहिए। जैसा कि मैने ऊपर बताया है

कि जन-प्रतिनिधियों द्वारा सत्ताधारी-दल और विरोधी-दल होता है वैसे ही जनता के मार्ग-दर्शन के लिए जन-नायक की आवश्यकता होगी। क्योंकि जन-प्रतिनिधि तो जनता का एजेंट होता है, वह तो जनता की कही हुई ही कह सकता है। अर्थात् वह जनता की इच्छा के वशीभूत होता है। इसलिए आवश्यक हुआ कि जन-नेतृत्व के लिए एक तीसरी शक्ति पैदा हो। जनशक्ति पैदा करने के लिए शिव की तपस्या अधिकार के लिए नहीं अपितु लोक-सेवा के लिए होगी। वैसे तो जबतक जन-प्रतिनिधि अधिकार में नहीं आता तबतक वह भी जन-नायक ही है। अधिकार-भावना अर्थात् इन्द्र-वृत्तिवाली शक्ति शिव की तपस्या भंग करने के लिए खड़ी हो सकती है। किन्तु शिव की तपस्या की यह विशेषता होगी कि उनके ताण्डव के साथ गण नर्तन करे। और उसके भय से इन्द्र अपने अधिकारों का दुरुपयोग न करे। जब इन्द्र का अधिकार-दुरुपयोग आरम्भ हो तो शिव का ताडव गण साथ हो यह आवश्यक है। किन्तु जनता इस प्रकार की क्रांति तभी कर सकती है जब शिव जैसे सेवक के साथ-साथ परिस्थिति भी अनुकूल हो। अर्थात् प्रकृति और पुरुष दोनों का सहयोग आवश्यक है। क्योंकि यदि प्रकृति अनुकूल नहीं है अर्थात अन्न-वस्त्र, आश्रय आदि नित्य-प्रति की जीवनोपयोगी वस्तुओं पर राज्य-सत्ताधिकारी का अधिकार रहा तो बड़ी-से-बड़ी शक्ति के साथ भी जनता ताण्डव नहीं कर सकती। इसलिए आवश्यक होगा कि जीवनोपयोगी वस्तुओं पर जनता का अपना अधिकार हो। इसके लिए आर्थिक ढांचा बदलना होगा। आज तो सारा उत्पादन पूंजी पर निहित है।

केन्द्रित उद्योग चाहे व्यक्ति के हाथ मे हो या राष्ट्र के हाथ मे, कायम रहा तो श्रमिक के कब्जे मे दी गई भूमि भी पूजीपति अथवा सत्ताधारी दल के हाथ में चली जायगी। इसीलिए विनोबाजी केवल राम ही नही कहते, सीताराम कहते है। अर्थात् भूदान-यज्ञ के साथ-साथ केन्द्रित मिल-वस्तु-बहिष्कार की भी बात कहते है।

गाधीजी भी चरखे को अहिंसक क्राति का प्रतीक, स्वराज्य की प्राप्ति का साधन कहा करते थे। उनका कहना था कि जो कच्चा माल हमारे गाव में पैदा होता है उसका पक्का माल हमारे गावो मे ही बनेगा और बनाने के साधनो पर भी उत्पादक का सीधा अधिकार होगा। इसके लिए आर्थिक क्राति करनी होगी।

आज राजनैतिक या सामाजिक क्राति अथवा किसी प्रकार की क्राति का आधार अर्थशास्त्र पर निर्भर होता है। इसलिए किसी प्रकार की भी क्राति करने के लिए आर्थिक ढाचा बदलना होगा। यहा तक कि धार्मिक क्राति भी बहुत कुछ अर्थ-व्यवस्था पर निर्भर है। आप यदि समाज का नैतिक स्तर ऊचा करना चाहते है, तो भी आर्थिक दिशा मे ही स्वावलम्बी सहयोगी-पद्धति अपनानी पडेगी। आप देखेगे कि हमारे जितने पर्व-त्योहार आदि पडते है और जिन्हे सामाजिक ढग से मनाते है, वे सारे-के-सारे फसल तैयार होने पर अथवा उसके विशेष अवसरो पर मनाते है। उसी प्रकार जब स्वावलम्बी व्यवस्था खडी करनी होगी तो सारी-की-सारी चीज एक व्यक्ति या परिवार तैयार नही कर पायगा। बल्कि अपने पडो-सियो पर भरोसा करना होगा। यह भरोसा धीरे-धीरे गाव की इकाई से उठकर क्षेत्र, और चीजो के लिए जिले तक जाना होगा। कुछ ही विषय ऐसे रहेगे जिनके लिए प्रात और रेल, तार तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के लिए ही केन्द्रिय व्यवस्था रहेगी। अब आप यदि पडोसी पर निर्भर होना चाहते है तो जरूरी होगा कि एक-दूसरे के साथ ईमानदारी बरते। यह तभी सभव है जब हमारी विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था होगी।

इसके प्रतिकूल यदि हमारी अर्थ-व्यवस्था का केन्द्रीकरण रहा तो

फिर आज जो गति सिविल-सप्लाई की है, वही गति हमारी व्यवस्था की होगी। हम और हमारे पड़ोसी दोनों अपने सामानों को बेचने-खरीदने में प्रतियोगिता करेंगे। और प्रतियोगिता की स्थिति में बेईमानी लाजिमी है। जब एक मुल्क दूसरे मुल्क के साथ इस प्रकार का समझौता करता है तो उसे आधुनिक सभ्य-भाषा में भी, डिप्लोमेसी ही कहते हैं। आपने समझ लिया होगा कि अर्थ-व्यवस्था पर किसी मुल्क का नैतिक स्तर कितना अधिक निर्भर करता है। यही कारण है कि राजनैतिक क्रांति होने पर भी सामाजिक संकट दूर करने के लिए आर्थिक-उत्पादन के तरीके में ही परिवर्तन करना होगा। आज का सामाजिक ढांचा जिन विभिन्न विषम वर्गों से बना है उनके चार स्तम्भ हैं—सामंत, पूंजीपति, बाबू और मजदूर-वर्ग। यह वर्ग-संघर्ष आज से नहीं, अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। इसकी उत्पत्ति भी राजा की सृष्टि के साथ हुई।

यह वर्ग-विषमता इतनी बढ़ती जा रही है कि आज सारी सृष्टि ही इसमें नष्ट होना चाहती है। इस बढ़ाव को रोकने के लिए कोशिश नहीं हुई ऐसी बात नहीं। इसके लिए रूसो, वाल्टेयर के जमाने में भी कोशिश होती रही। फ्रांस की राज्य-क्रांति इसका नमूना है। इसके समझने के लिए आप रेलगाड़ी के श्रेणीबद्ध डिब्बों की मिसाल लें। इन चारों वर्गों के लिए ट्रेन में भी फर्स्ट, सेकेन्ड, इण्टर और थर्ड के डिब्बे बने हैं। जब सामन्त-शाही समाप्त करने की क्रांति की गई, तो समझा गया कि अब मजदूर-वर्ग के ऊपर से बोझा कम होगा, लेकिन देखा गया यह कि फर्स्ट क्लास तो खत्म हुआ लेकिन सेकेण्ड और इण्टर क्लास वालों की संख्या और अधिक हो गई और मजदूर-वर्ग पर बोझा पहले से बढ़ता ही गया। यह बोझा किस प्रकार बढ़ा इसका स्पष्टीकरण थोड़ा और कर लेना चाहिए। हमने मान लिया कि फ्रांस के संघर्ष से राजा का अन्त हुआ, लेकिन उसके द्वारा जो संचालन होता था वह बन्द हुआ नहीं। क्योंकि पहले एक राजा का शासन था और अब पार्लियामेंट पद्धति से ५०० आदमियों का शासन चालू हुआ। एक मजेदार घटना यह हुई कि जब राजाओं को हटाने की कोशिश चल रही

थी तभी जेम्स वाट ने स्टीम इजिन का आविष्कार करके आर्थिक उत्पादन को पूजी पर केन्द्रित करने का सूत्रपात किया । अब दिनो-दिन केन्द्रीकरण बढता जा रहा है । इस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र मे व्यवस्थावाद और आर्थिक-क्षेत्र मे वितरणवाद का आधिपत्य छा गया। इस प्रकार मजदूर-वर्ग पर भार अत्यधिक बढ जाने से प्रत्यक्ष शारीरिक शोषण की समस्या विकट हो गई और ऐसी असहनीय हो गई कि वर्ग-विषमता को समूल नष्ट करके एक वर्गहीन समाज कायम करने की क्राति किये बिना सृष्टि-रक्षा असम्भव हो गई है। लेकिन ऐसी समाज-क्राति के लिए ऊपर बताई हुई राजनैतिक और आर्थिक क्राति करने की आवश्यकता है।

राजनैतिक क्राति के लिए शासन को ही समाप्त करके जन-तत्र कायम करना होगा । केवल सचालन-मात्र के परिवर्तन से यह स्थिति बदलनेवाली नही है। शासनहीन समाज कायम करने के लिए दो रास्ते कहे जाते है। एक रास्ता तो कम्युनिस्ट भाइयो का है। उनका कहना है कि शासन को धीरे-धीरे बढाते चलना चाहिए। इसी प्रकार आर्थिक पूजी-वाद को भी केन्द्रित करते जाना चाहिए। इससे एक वक्त ऐसा आता है जब शासन और व्यवस्था शून्य हो जायगी। दरअसल उनकी यह कल्पना कोरा आदर्शवाद है, जो असम्भव है। दूसरा तरीका गाधीजी का है जिसमे समाज को शासन और व्यवस्था की आवश्यकता ही न हो, ऐसी परिस्थिति पैदा करना। क्योकि हम आवश्यकता बढाते चले जाय और अन्त मे आवश्यकता का अन्त हो जाय यह काल्पनिक आदर्श तो हो सकता है, किन्तु व्यवहार मे अस्पष्ट और असम्भव जान पडता है। यदि दड-निरपेक्ष राज्य और पूजी-निरपेक्ष उत्पादन के कार्यक्रम को क्रमश विकसित किया जाय, तो अवश्य ही एक ऐसी स्थिति आ सकती है जब मजदूर-वर्ग पर भार नही रह जायगा अर्थात् शेष सभी वर्ग मजदूर-वर्ग मे परिवर्तित हो जायगे।

थी तभी जेम्स वाट ने स्टीम इजिन का आविष्कार करके आर्थिक उत्पादन को पूजी पर केन्द्रित करने का सूत्रपात किया । अब दिनो-दिन केन्द्रीकरण बढता जा रहा है । इस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र मे व्यवस्थावाद और आर्थिक-क्षेत्र मे वितरणवाद का आधिपत्य छा गया। इस प्रकार मजदूर-वर्ग पर भार अत्यधिक बढ जाने से प्रत्यक्ष शारीरिक शोषण की समस्या विकट हो गई और ऐसी असहनीय हो गई कि वर्ग-विषमता को समूल नष्ट करके एक वर्गहीन समाज कायम करने की क्राति किये बिना सृष्टि-रक्षा असम्भव हो गई है । लेकिन ऐसी समाज-क्राति के लिए ऊपर बताई हुई राजनैतिक और आर्थिक क्राति करने की आवश्यकता है ।

राजनैतिक क्राति के लिए शासन को ही समाप्त करके जन-तत्र कायम करना होगा । केवल सचालन-मात्र के परिवर्तन से यह स्थिति बदलनेवाली नही है। शासनहीन समाज कायम करने के लिए दो रास्ते कहे जाते है। एक रास्ता तो कम्युनिस्ट भाइयो का है। उनका कहना है कि शासन को धीरे-धीरे बढाते चलना चाहिए । इसी प्रकार आर्थिक पूजी-वाद को भी केन्द्रित करते जाना चाहिए। इससे एक वक्त ऐसा आता है जब शासन और व्यवस्था शून्य हो जायगी । दरअसल उनकी यह कल्पना कोरा आदर्शवाद है, जो असम्भव है। दूसरा तरीका गाधीजी का है जिसमे समाज को शासन और व्यवस्था की आवश्यकता ही न हो, ऐसी परिस्थिति पैदा करना। क्योकि हम आवश्यकता बढाते चले जाय और अन्त मे आवश्यकता का अन्त हो जाय यह काल्पनिक आदर्श तो हो सकता है, किन्तु व्यवहार मे अस्पष्ट और असम्भव जान पडता है । यदि दड-निरपेक्ष राज्य और पूजी-निरपेक्ष उत्पादन के कार्यक्रम को क्रमश विकसित किया जाय, तो अवश्य ही एक ऐसी स्थिति आ सकती है जब मजदूर-वर्ग पर भार नही रह जायगा अर्थात् शेष सभी वर्ग मजदूर-वर्ग मे परिवर्तित हो जायगे ।

इसके लिए हमे उसी ढग का कार्यक्रम बताना होगा । जो क्राति-कारी होता है, उसे क्राति की शुरुआत अपने से करनी होती है । आप भूमि-दान-यज्ञ मे काम कर रहे है, या करना चाहते है तो उसकी शुरुआत भी

स्वय से ही करनी होगी। विनोबाजी कहते हैं कि भूमि मागनेवाले को सिद्धात स्वीकार करने की दिशा में कुछ-न-कुछ भूमि देनी चाहिए। इसलिए यदि आप श्रमिक की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं और सभी वर्गों को मजदूर बनाना चाहते हैं तो स्वय शरीर-श्रम का व्रत ले। जहा-तहा भी हो दो तीन घटे उत्पादक शरीर-श्रम करना ही चाहिए। साथ ही आपकी दृष्टि विकेन्द्रीकरण से एक कदम आगे स्वावलम्बन की दिशा मे होनी चाहिए। इसके लिए प्रत्येक काम मे आपको ऐसी धारणा पैदा करनी होगी और गाव की इकाई को स्वय पूर्ण बनाना होगा। गाववालो मे स्वावलम्बन की धारणा, स्थानीय नेतृत्व कायम करना, साधन के पक्ष मे स्वावलम्बी बनाना और व्यवस्था स्वय कर लेने का अवसर और शिक्षा देनी चाहिए। इस प्रकार की क्राति के लिए जरूरी नही है कि आप अपने जीवन को पूर्ण क्रान्तिकारी बनाने के बाद ही क्राति का आह्वान करे। उसके लिए क्रान्तिकारी दिशा और कार्य मे गति जरूरी है। इस कार्य के लिए अपना सर्वस्व निछावर करके और खतरा उठाकर भी स्वावलम्बन की दिशा मे काम करना होगा।

: १३ :

जीवन-शुद्धि का नया मार्ग

[केदारनाथ]

मानते थे। राष्ट्र की वागडोर आज अनेक स्वार्थत्यागी और महान् नेताओ के हाथ मे है। लेकिन सर्वमाधारण जनता की स्थिति में कोई वडा सुवार दृष्टिगोचर नही होता। हमारे ध्यान मे यह वात भी अभी आ चुकी है कि स्वराज्य और सुराज्य मे भेद है। आखिर ऐमा क्यो हो रहा है ? मुझे लगता है कि स्वतत्रता के सग्राम मे हममे मे कुछ ही लोगो ने अपना खून वहाया या त्याग किया। लेकिन हर व्यक्ति ने या वहुमख्य व्यक्तियो ने अपना पूरा हविर्भाग नही दिया और इमी कारण स्वराज्य का मुराज्य मे रूपातर होना रह गया। सिर्फ व्यक्ति के महान् वनने से काम नही चलता। सारे ममाज का महान् वनना अनिवार्य है। वास्तव मे हमारे देश मे महापुरुषो की जो महान् परम्परा चली आ रही है, वैसी अन्यत्र कही भी देखने को नही मिलेगी। लेकिन इन महापुरुषो ने जो ज्ञान दिया, वह सावारणत व्यक्ति की उन्नति के लिए दिया था। धर्म, अर्थ, मोक्ष सव 'मुझे' प्राप्त हो, ऐसी शिक्षा थी। सक्षेप मे, हममे सामाजिक वर्म का अभाव था।

काग्रेस को राजसत्ता प्राप्त हुई और उसके अनेक कार्यकर्ताओ में स्वार्थ का प्रवेश हुआ। इसका भी कारण यही है। अन्य देश स्वतत्र हुए और सुवरे भी। हर एक व्यक्ति सामुदायिक ध्येय से प्रेरित हो, तभी यहा वैमा होगा एव हमारे देश मे भी स्वराज्य के वाद का सुराज्य प्राप्त हो सकेगा।

व्यक्तिगत स्वार्थ का झझावात आज हमारे देश मे सर्वत्र छा गया है। यहा विना पानी का दूध या विना मिलावट का घी नही मिलता। इन्कम टैक्स की चोरी यहा होती है। गाडी से सफर करते समय वच्चे की उम्र कम हो जाती है, तो राशनिंग के ममय उसी वच्चे की उम्र वढ जाती है। तीर्थ-यात्रा करने जानेवाले लोग भी आवा टिकट वचाने की ख्वाहिश से वच्चे को झोली या गोद मे दवा लेते है। कानून की इज्जत करने की वृत्ति ही नही रही। गाव-गाव में दुर्जनो का अधिराज्य है और सज्जनो का सगठन नही रहा। दुर्जनो के डर से अलग रहनेवाले सज्जनो को सज्जन भी कैमे कहा जाय ? झूठा व्यापार और व्यवहार करके धनपति वने, करोड-

पति बने। हमारी किसी सस्था को फिर वे ही दान देते है। और उनका यह व्यवहार हमे ज्ञात होने पर भी हम उन्हे "कर्ण का अवतार" बताकर उनका सम्मान करते हैं। आपत्ति मे मदद करना मानव का धर्म है, लेकिन हम उसे ही भूल रहे हैं। उल्टे, दूसरो की मुश्किलो से अपना फायदा उठाने की ही हमारी वृत्ति बढ रही है। स्टेशन के कुली से लेकर ऊपर तक के सब लोग दूसरे की मुश्किलो से फायदा उठाने के लिए तैयार बैठे है। शराबबन्दी का आदोलन हमारे ही कारण असफल हुआ है। अत हमारी शुद्धि हुए बिना जीवन-शुद्धि नही होगी। और हमारे शुद्ध कार्य भी सफल नही होगे।

आज हमारा पूरा जीवन ही अशुद्ध बना हुआ है। बीमार दुरुस्त न हुआ तो भी डाक्टर पूरा बिल वसूल कर ही लेता है। क्या यह पैसा उनके ज्ञान या अज्ञान के लिए माना जाय ? शील और चारित्र्य पैसे मे श्रेष्ठ है यह हम कब समझेगे ? आगामी पीढी को सच्चा नागरिक-शास्त्र कौन पढायगा। गाव के झगडे क्या गाव मे ही नही मिट सकेंगे ? अदालतो मे जानेवाले जजो को भी सही स्थिति का ज्ञान होता है, लेकिन वहा सही न्याय नही मिलता। अन्यायी यह जानता है, परन्तु वह इनके लिए अदालत में पहुचता ही है।

मनुष्य का जीवन खाने, पीने और मर जाने के लिए ही तो नही है। मनुष्य के सिवा और कोई ऐसा प्राणी नही, जिसमे दया की भावना हो। ऐसा महान् बुद्धिवादी मनुष्य रोजी की ही केवल चिन्ता करे, यह द्रोह है। वस्तुत अपने नगर के लिए जो कष्ट सहन करेगा, वही नागरिक है। पर जब अपने पर ही आफत आई तो बोरिया-बिस्तर लेकर भाग खडे होनेवाले लोग कैसे सच्चे नागरिक कहलायगे, जैसे कि पिछले महायुद्ध के समय बम्बई मे हुआ था ? मैं उस वक्त उनसे कहता था कि अरे भाई, भागने की जो शक्ति आपके पैरो मे आई है, उसे हाथो मे लाओगे तो भागने की जररत ही नही रहेगी।

अत यह सारा जीवन यदि शुद्ध बनाना है, स्वराज्य का सुराज्य बनाना है, तो उसके लिए हममे जो कुछ अच्छाई है, वह दूसरो को देनी

चाहिए। भगवान् ने जो दिया, वह उसीको अर्पण करना चाहिए। राष्ट्र मे कही भी दरिद्रता रहे, तो हमारे दिलो मे उसके लिए बेचैनी पैदा होनी चाहिए। आज की दरिद्रता और अशान्ति शोषण मे से पैदा हुई है। शोषण पर आधारित पूरे समाज को ही अगर ऊपर उठाना है, तो मैंने जो 'मेरा' कहा है, वह 'समाज' का कहने की नई प्रवृत्ति निर्माण करनी चाहिए। अपने जीवन की यही महान् क्राति हम भूदान द्वारा सिद्ध करने वाले है। भूदान केवल 'भूदान' नही, पूरे देश के लिए वह 'जीवनदान' है।

: १४ :

सत्याग्रही शक्ति का आविष्कार

[शं द जावडेकर]

काग्रेस-जैसी क्रातिकारी राजनीतिक सस्था के द्वारा सामाजिक सुधारो को मान्यता प्राप्त कराने का कार्य महात्मा गाधी की जिन्दगी में काफी हद तक पूरा हो चुका था। लेकिन उसी युग मे समाजवादी विचारो के द्वारा जो आर्थिक क्राति के नये विचार उदित हुए, उनको भी काग्रेस की अधिकृत मान्यता प्राप्त कराने का प्रयत्न यद्यपि गाधीजी ने किया था, लेकिन वह पूरा नही हो पाया। इसलिए उनके देहान्त के बाद शका हो रही थी कि क्या गाधीवादी वर्गहीन समाज, आर्थिक समानता, सपत्ति का सामाजिक स्वामित्व आदि नव विचारो को राष्ट्रीय मान्यता दिला देने के काम मे बाधक तो नही होता है? वह स्वय सफल होता है या असफल, इसके बारे मे भी कुछ सदेह पैदा हो गया था। यह सन्देह विनोबाजी ने दूर किया और सत्याग्रही तत्वज्ञान के उदर मे समाजवाद को आत्मसात् कर लेना पूर्ण सभव है। और वैसा करना आवश्यक भी है, इसकी प्रतीति वह आज करा रहे है। उनके सर्वोदय-सम्बन्धी विचारो मे समाजवाद की 'आर्थिक समता' और 'आर्थिक क्राति' के विचार समाविष्ट ही है, यह उनके निम्न उद्गारो से स्पष्ट होता है

"अन्नवस्त्रादि नित्य की वस्तुए गावो मे ही निर्माण होनी चाहिए। छोटे-छोटे ग्राम-उद्योगो के द्वारा लोग स्वावलम्बी बने। रसोई, कताई, बुनाई आदि जो काम घर मे हो सकते है, वे घर मे ही हो और तेल, गुड, मोची-काम आदि जो गाव मे हो सकते है, वे गाव मे ही हो। लोहा, कोयला, अभ्रक आदि जो बडे-बडे धधे है और जिनका सबध सिर्फ देश के ही नही, बल्कि सारी दुनिया के साथ है, वे निजी स्वामित्व के नही, सामाजिक स्वामित्व के होने चाहिए। लाखो मजदूर, जहा काम करते हो, ऐसे ये बडे धधे चन्द लोगो के हाथ मे ही सौंपे रहना ठीक नही।

"निजी मालकियत रहने से मालिको को प्रेरणा (इसेटिव) होती है, क्योकि मनुष्य अपने ही लिए काम करता है, ऐसा मानना अत्यन्त अधर्म है। दुनिया मे आज यह विचार चल रहा है, इसलिए कि दुनिया में आज अधर्म चल रहा है। पर जमीन का न्याय्य वितरण हो और बडे व्यवसाय देश की मालकियत के हो, इसीको हम धर्म-व्यवस्था मानते है।"

समाज मे सम्पत्ति की वृद्धि तो होनी चाहिए, लेकिन उसपर समाज की ही मालिकी होनी चाहिए और अगर ऐसा हुआ तो उत्पादन-कार्य भी ठीक से चलेगा और सबका हित भी होगा, ऐसा वे एक प्रवचन में स्पष्ट करते हुए कहते है

तैयार होगा, पर विचार तो मान्य कीजिए। उसके पीछे से आचार आवेगा ही।"

इससे यह स्पष्ट दीख पडता है कि भूदान-यज्ञ की प्रचार-यात्रा मे विनोवाजी जो विचार फैला रहे है, उनमे समाजवाद के विचार किस प्रकार आत्मसात् किये जा चुके हैं। वस्तुत समाजवाद भारत के लिए परदेसी विचार नही है। वह भारतीय मस्कृति के लिए अधिष्ठानभूत मानव की धर्म-भावना मे से ही निर्मित और आज के युग के लिए शोभादायी मानव-धर्म है। इस वात को भारत के जन-जन के हृदय में अकित कराने का कार्य विनोवा ने हाथ मे लिया है। सन् १९५७ के पहले सामाजिक और आर्थिक क्राति की यह प्रेरणा सफल करके उसको भारत भर मे मान्यता प्राप्त कराने की प्रतिज्ञा के साथ विनोवा ने यह महान् काम उठाया है। भूदान-यज्ञ से भारतीय जनता के हृदय मे क्राति की ज्योति आज प्रज्वलित हो रही है। इस आदोलन का जो विरोध करते है, वे क्राति-कार्य का रहस्य ही ध्यान में नही लेते है, ऐसा सखेद कहना पडता है।

भारत में आज राजनीतिक क्राति की परिणति सर्वागीण सामाजिक क्राति मे हो रही है। उसके पीछे भारत का तपोवल और आत्म-वल खडा हुआ है। इसलिए अव इस क्रातिकार्य में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक धार्मिक आदि भेदाभेद नही हो सकते। गाधी-युग मे इन भिन्न-भिन्न क्रातिकारी कार्यों के भेद पूर्ण नष्ट हो गए है। इस कार्य की सफलता, उसके पीछे तपश्चर्या और त्याग की शक्ति कितने प्रमाण में खडी है, इसपर अवलवित है। गाधीजी ने स्वराज्य-मन्दिर मे सामाजिक क्राति की प्राण-प्रतिष्ठा की, उसका यह प्रभाव है और वही सत्याग्रही शक्ति आज धार्मिक क्राति के रूप मे प्रकट हो रही है।

: १५ :

भूदान-यज्ञ और ग्रामोद्योग

[अशोक मेहता]

देश मे हाल ही में पैदा हुई हलचलो मे सबसे अधिक क्रातिकारी और बडी घटना भूदान-यज्ञ है। राष्ट्रपिता के स्वर्गवास के बाद उनकी अहिंसात्मक क्राति की यह महत्त्वपूर्ण कडी है। भूदान-यज्ञ मे कितनी महान् सभावनाएँ भरी है, यह नीचे के कारणो से स्पष्ट होता है

(१) भूदान से जमीन के न्याय्य बटवारे के अनुकूल वातावरण तेजी से बन रहा है।

(२) चूकि छोटे-छोटे किसान भी जमीन दे रहे है, इसलिए जमीन और सपत्ति की मालकियत के बारे मे नया दृष्टिकोण पैदा हो रहा है।

(३) जमीन की कीमतें गिर रही है और इस तरह मुआवजे का प्रश्न आसान होता जा रहा है।

(४) बेजमीन वालो को जमीन मिल रही है, इसलिए उनको आसानी से भूमि की सहकारी समितियो से खीचा जा सकता है।

(५) जमीन का बटवारा ग्राम-सभाओ तथा बे-जमीन वालो की सूचना के ही अनुसार किये जाने के कारण भ्रष्टाचार और पक्षपात का डर नही रहता।

(६) बे-जमीन वालो को कम-से-कम पाच एकड सूखी या एक एकड हरी जमीन देकर जमीन का बटवारा किये जाने के कारण 'सीलिग' का प्रश्न अपने आप हल हो जाता है।

जहा कानून से जमीन का बटवारा किया जाता है, वहा मालकियत बनाये रखने के लिए सीलिग की मर्यादा में ही जमीन रिश्तेदारो के नाम कर देने का सकट बना रहता है। भूदान-यज्ञ आज जमीन का मसला बे-जमीन वालो की दृष्टि से हल करना चाहता है,इसलिए ये सब पेचीदगिया दूर हो जाती है।

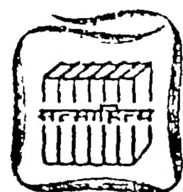
भूदान मे केवल परती जमीन ही मिलती है, यह गया आदि जिलो मे किये गए कामो से गलत साबित होता है। जमीन के बटवारे का मसला भूदान-यज्ञ द्वारा पूर्ण और अन्तिम रूप से हल होगा या नही, यह आज कहना कठिन है, किन्तु यह सच है कि इसके द्वारा बहुत बडे पैमाने पर जनसपर्क स्थापित किया जा सकता है और भूमि के पुनर्वितरण के पक्ष मे एक विशाल और व्यापक जन-मत निस्सदिग्ध रूप मे पैदा होता है।

ग्राम-उद्योगो को बढावा देना, उनमे लगे लोगो को सगठित करना, सशोधन करना और सहकारी ढग पर माल बेचना, ये हमारे लिए महत्त्व के काम है। खदानो और बडे उद्योगो में अडतीस लाख मजदूर काम करते हैं और वर्ष भर में छ सौ चालीस करोड का उत्पादन होता है, जबकि गृह-उद्योगो मे और छोटे उद्योगो में एक सौ उनचास लाख मजदूर लगे है और आठ सौ साठ करोड का माल पैदा होता है। यह सख्या पहली सख्या से चौगुनी है। इसका सगठन करना राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।



नई क्रांतिमाला
की
पुस्तकें

१ सर्वोदय का घोषणापत्र
२ सर्वोदय के सेवकों से
३. मानवीय क्रान्ति
४. धर्मचक्र प्रवर्तन
५ हमारी भूमि समस्या का हल
६. संपत्तिदान यज्ञ
७ शासन-निरपेक्ष समाज
८ नई क्रांति
९ नई क्रांति के गीत
१० भूदान दीपिका
११ सामाजिक क्रान्ति और भूदान
१२ व्यवहार शुद्धि
१३ सर्वोदय की ओर
१४. सामाजिक क्रांति के दस कार्यक्रम
१५ नई तालीम के विचार (प्रेस में)
१६ नई तालीम और समाज का नव निर्माण



चार आना